

Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

Supported by:

Ksaan
Helpline
+91-7415538151



ISSN-2582-5976

मध्य भारत

कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

READ FOR ONLINE EDITION

Website: www.krishakbharti.in

E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

वर्ष-21 अंक-7

ग्वालियर, अक्टूबर -2026

मूल्य 30 रुपए



छिंदवाड़ा पीएमएफएमई योजना से मिली नई उड़ान

बेकरी उद्योग से आत्मनिर्भर बनीं रेखा

ग्वालियर : नर्सरी ने उषा रावत को बनाया आत्मनिर्भर

मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के भितरवार विकासखंड के ग्राम निकोड़ी की उषा रावत ने सही प्रशिक्षण और मेहनत की बदौलत सीमित भूमि से समृद्धि की नई राह बनाई है। आधुनिक नर्सरी प्रबंधन अपनाकर उषा अब सालाना लगभग 6 लाख रुपये का शुद्ध लाभ अर्जित कर रही हैं। आत्मा योजना के अंतर्गत नर्सरी प्रबंधन का प्रशिक्षण लेकर उन्होंने बीज उपचार, सुनियोजित खेती की तैयारी, सही बुवाई, सिंचाई, पोषक तत्व प्रबंधन तथा कीट-रोग नियंत्रण की वैज्ञानिक विधियां सीखीं





मध्य भारत कृषक भारती

COMING SOON



मध्य भारत कृषक भारती

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

- नये रंग-रूप, आकर्षक कलेवर और खेती बाड़ी की तकनीकी जानकारीयों से परिपूर्ण
- अपनी प्रति आज ही बुक करायें।
- दर प्रति कॉपी ₹ 200/-
- कृषक कैलेंडर 2027
- दर प्रति कॉपी 100/-

कृषि, उद्यानिकी एवं पशुपालन विभाग के लिये बेहद उपयोगी

डायरी क्रय करने पर रंगीन आकर्षक कैलेंडर मुफ्त

अपना आदेश आज ही निम्न पते पर प्रेषित करें-

ऑफिस : ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

सम्पर्क करें : 94251-01132, 91791-85002, 94251-48365 • ई-मेल : editorkrb@gmail.com



AN EXHIBITION ON FARMING TECHNOLOGY

Event Dates: 09 - 12 October 2026

Venue: Fertilizer Play Ground, Opp. Sainik School, Gorakhpur (U.P.)

KisanTech
EXHIBITION | WORKSHOP | NETWORKING INDIA

Event Dates: 16-18 January 2027

Venue: Chittorgarh, Rajasthan

15th Edition
AgroTech 2026

Expo | Business Meets | Seminars | Farmers' Events

17th - 19th December 2026 | ICAR-Indian Sugarcane Research Institute, Lucknow



Conference | Exhibition | Shopping

नव कृषि तकनीकी, डेयरी, हॉर्टिकल्चर, जैविक खेती एवं फूड प्रोसेसिंग

8-9-10-11 JAN
2027

इंदौर

Venue: College of Agriculture, Indore (M.P.)



Event Dates: 06-08 January 2027

Venue: Yashobhoomi (IICC)
Dwarka, New Delhi

7th India
AGRI EXPO

Event Dates: 29 - 31 January 2027

Venue: Ludhiana Exhibition Centre (LEC),
Sahnewal, G.T. Road, Ludhiana, Punjab

अक्टूबर-2026



एआई के सूत्रधार रहे शोधकर्ता लगातार धारदार होती एआई को लेकर जो गंभीर चिंता जता रहे हैं, उसमें मानव सभ्यता के लिए आसन्न संकट की आहट सुनायी देती है। पहले भी दबी-खुली जुबान में एआई के संस्थापक सूत्रधार ऐसी चिंता गाहे-बगाहे जाहिर कर चुके हैं। इसी कड़ी में अब एथ्रोपिक के रिसर्चर जैकब कॉक्सन के इस्तीफे और उनकी

इस बात पर व्यक्त की गई गंभीर चिंताओं ने इस बहस को और तेज कर दिया है। जब कोई ऐसा व्यक्ति जो एथ्रोपिक व ओपन एआई जैसे महत्वपूर्ण संस्थानों में अहम भूमिका निभा चुका हो, यह दावा करता है कि एआई की बड़ी कंपनियों इंसानी जिंदगी के साथ जुआ खेल रही हैं, तो मामला गंभीर हो जाता है। ऐसे में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही उठता है कि एआई से जुड़े शोध-अनुसंधान के कार्य को क्या जिम्मेदारी से आगे बढ़ाया जा रहा है? दरअसल, कॉक्सन की असली चिंता खुद को बेहतर बनाने वाली सुपरइंटेलिजेंस की तरफ बढ़ती अंधी होड़ है। जिसके बारे में आशंका जतायी जा रही है कि ऐसा सिस्टम तैयार किया जा रहा है जो आगे चलकर कई क्षेत्रों में इंसानी क्षमताओं से भी आगे निकल सकता है। सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर, संसाधनों और संस्थानों को शिकार बनाने की क्षमता भी हासिल कर सकता है। इससे भी अधिक चिंता की बात यह है कि एथ्रोपिक के अपने अलाइनमेंट साइंस प्रमुख, इवान हुबिंगर ने भी माना है कि कंपनी के पास अभी तक सुपरइंटेलिजेंट सिस्टम को इंसानी हितों के अनुकूल बनाने का कोई समाधान मौजूद नहीं है। निश्चित रूप से ऐसी बातें एआई उद्योग के मूल में विद्यमान खतरनाक विरोधाभास को ही उजागर करती हैं।

दरअसल, एआई के क्षेत्र में जारी विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा उन्हें लगातार उन्नत सिस्टम बनाने को मजबूर कर रही है। उनकी आशंका

एआई का स्याह सच



कंपनियां तेजी से यह मानकर चल रही हैं कि एडवांस्ड एआई से बहुत बड़े जोखिम मानवता के समक्ष उत्पन्न हो सकते हैं। लेकिन इस हकीकत को जानते-बूझते हुए भी इस क्षेत्र में जारी मारक स्पर्धा उन्हें ज्यादा सक्षम सिस्टम बनाने को बाध्य कर रही है।

है कि यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो दूसरी कंपनी ऐसी पहल करके विश्व के एआई बाजार पर वर्चस्व बना लेगी। निश्चित रूप से यह अंधी होड़ एक दिन मानवता को एक भयावह तबाही के दरवाजे पर खड़ा कर सकती है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आज दुनिया में एआई के प्रयोग से चिकित्सा, विज्ञान और उत्पादन के क्षेत्र में आशातीत लाभ मिले

हैं। लेकिन इसके बावजूद तकनीकी प्रगति को सिर्फ इस आधार पर नहीं मापा जा सकता है कि उससे क्षमताएं कितनी बेहतर स्थिति में आ पहुंची हैं। एआई के क्षेत्र में की जा रही तरक्की के साथ सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके साथ ही सुरक्षा और जवाबदेही भी उसी रफ्तार से आगे बढ़नी चाहिए। सही मायने में लगातार शोध-अनुसंधान के जरिये बड़े पैमाने पर उन्नत एआई क्षमताएं हासिल करने के गंभीर आक्षेप चिंता की बात है। यदि अमेरिका और चीन के बीच जारी गला-काट स्पर्धा शक्तिशाली एआई के विस्तार को तेज कर रही है और वहीं दूसरी ओर कंपनियां अपने सिस्टम को सुरक्षित रखने के लिये संघर्ष कर रही हैं तो इसके जोखिम कॉरपोरेट प्रतिस्पर्धा से कहीं अधिक बढ़ जाते हैं। निश्चित रूप से ऐसी स्थिति में सरकारें इंसानियत के भविष्य से जुड़े फैसले टेक कंपनियों के भरोसे नहीं छोड़ सकती हैं। बड़ी एआई लैब्स के लिये लागू करने योग्य सुरक्षा मानक, स्वतंत्र निगरानी व जोखिम का पारदर्शी आकलन करना जरूरी है। इसके अलावा एआई की सबसे खतरनाक क्षमताओं के विकास पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सीमाएं तय करनी बेहद जरूरी हैं। एआई के खिलाफ दुनिया में उठ रही आवाजों को गंभीरता से सुना जाना चाहिए। निश्चित रूप से जब मानवता सभ्यता पर संकट हो और बात उसके भविष्य की हो, तो कोई भी लापरवाही भरा कदम घातक साबित हो सकता है।

छत्तीसगढ़ में धान की खेती के सटीक एवं तकनीकी सत्यापन के लिए हुआ एमओयू

छत्तीसगढ़ शासन द्वारा प्रदेश में धान की खेती के क्षेत्रफल का सटीक, पारदर्शी और तकनीक-आधारित आकलन करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है। आज यहाँ मंत्रालय महानदी भवन में खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण



संचालनालय तथा छत्तीसगढ़ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद के मध्य एक महत्वपूर्ण समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। यह समझौता सेटेलाइट-आधारित मैपिंग, डिजिटल क्रॉप सर्वे और भू-स्थानिक डेटा के बेहतर समन्वय से राज्य की धान उपार्जन व्यवस्था को और अधिक पारदर्शी एवं सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से किया गया है। गैर-जियो-रेफरेंस्ड क्षेत्रों की मैपिंग विशेष रूप से वन अधिकार अधिनियम के तहत आबंटित भू-भागों और डुबान क्षेत्रों में स्थित ऐसे कृषि क्षेत्रों की पहचान कर उनकी जीआईएस आधारित पॉलीगॉन लेयर तैयार की जाएगी, जो वर्तमान में डिजिटल रूप से मैप नहीं हैं। खरीफ विपणन वर्ष 2026-27 के लिए आकलन तैयार पॉलीगॉन लेयर और भू-स्थानिक डेटा के आधार पर आगामी खरीफ विपणन वर्ष 2026-27 में धान की फसल के वास्तविक रकबे का सटीक आकलन किया जाएगा। सेटेलाइट इमेजरी से सत्यापन अन्य जियो-रेफरेंस्ड क्षेत्रों में भूमि खंडों (खसरो) के अक्षांश-देशांतर का सेटेलाइट इमेजरी से मिलान कर धान की फसल की डिजिटल उपस्थिति की पुष्टि की जाएगी।

इस तकनीकी पहल से दूरस्थ और दुर्गम क्षेत्रों एफआरए एवं डुबान क्षेत्र की कृषि भूमि की डिजिटल पहचान मजबूत होगी तथा डिजिटल क्रॉप सर्वे के लिए एक मजबूत आधार ढांचा तैयार होगा।

इस दौरान विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के प्रमुख सचिव श्री सोनमणि बोरा, खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग की सचिव सुश्री रीना बाबा साहेब कंगाले, खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग की संचालक डॉ. फरिहा आलम एवं संचालक, छत्तीसगढ़ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद श्री कवीश्वर उपस्थित रहे।

सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

छिंदवाड़ा (म.प्र.)	मुंगावली (म.प्र.)	उड़ीसा
रामप्रकाश रघुवंशी	भगवानदास चौबे	समीर रंजन नायक
98272-78063	96854-88453	70422-31678
***	बलिया (उ.प्र.)	***
नरसिंहपुर (म.प्र.)	आर.एन. चौबे-94535-77732	हापड़ (उ.प्र.)
नवीन शुक्ला: 89894-36330	पश्चिम बंगाल	मयंक गौड़: 83848-66823
	राजेश नायक-98831-57482	



■ वर्ष 21 ■ अंक 07

ग्वालियर, अक्टूबर 2026

मूल्य ₹ 30/-

: सम्पादक मण्डल :

प्रधान सम्पादक

राजू गुर्जर (MJC)

94251-01132

94245-22090



प्रसार/मार्केटिंग टीम

डी.के. बरार

91791-85002, 70247-93010

महेश अहिरवार: 94251-48365

: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय

डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव (Assistant Professor)

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

डॉ. आर.के.एस. तोमर

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि. वि. ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)

कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण),

डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि., पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य

पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं

महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)

डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक) पादप

प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय,

नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि. वि., सबौर, भागलपुर

डॉ. भागचन्द जैन

प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी, कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी

कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना कृषि वैज्ञानिक

(कृषि प्रसार), कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन

विभाग AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प.)

तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी

मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद

कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

बसंत कुमार दादरवाल

इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

वाराणसी (उ.प्र.)

श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)

कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

मोबाइल: 9907279542

डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर) पशु

चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महु, (म.प्र.)

डॉ. जितेन्द्र सिंह राजौरिया असिस्टेंट प्रोफेसर,

पशु चिकित्सा स्त्री रोग और प्रसूति विभाग, पशु चिकित्सा

विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा-486001 (म.प्र.)

डॉ. अनिल कुमार सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, पशु

चिकित्सा शरीर विज्ञान और जैव रसायन विभाग, पशु

चिकित्सा विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा,

NDVSU, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. माधुरी धुर्वे असिस्टेंट प्रोफेसर,

पशु चिकित्सा स्त्री रोग और प्रसूति विभाग, पशु चिकित्सा

विज्ञान और पशुपालन महाविद्यालय, रीवा, NDVSU (म.प्र.)

डॉ. राखी गांगिल एसोसिएट प्रोफेसर,

पशु चिकित्सा सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा विज्ञान

महाविद्यालय एवं पशु चिकित्सा केन्द्र, नानाजी देशमुख पशु

चिकित्सा विश्वविद्यालय, जबलपुर

मध्य भारत कृषक भारती GeM Government e Marketplace

अब सरकारी पोर्टल GeM पर उपलब्ध

मध्य भारत कृषक भारती अब सरकारी ई-मार्केटप्लेस (GeM) पोर्टल पर उपलब्ध है।

शासकीय विभागों, संस्थानों एवं प्राइवेट सेक्टर के लिए ऑनलाइन कृषि साहित्य, कृषि प्रकाशन एवं उपयोगी कृषि सामग्री उपलब्ध है।

कृषि साहित्य **कृषि प्रकाशन** **कृषि योजनाएं** **कृषि संज्ञ** **कृषि संज्ञ** **कृषि संज्ञ**

उपयोगी कृषि सामग्री **ऑनलाइन उपलब्ध**

मध्य भारत कृषक भारती की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

ऑनलाइन कृषि साहित्य हेतु संपर्क करें!

मध्य भारत कृषक भारती

web: www.krishakbharti.in
email: bharti.krishak75@gmail.com
Mob: 94251-01132, 94245-22090

Online मंगाएं साहित्य

मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका मध्य भारत कृषक भारती द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट www.krishakbharti.in पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।

वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजिटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

-संपादक

मध्य भारत कृषक भारती में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।



मध्यप्रदेश में श्वेत क्रांति 2.0 की शुरुआत, दूध उत्पादन 50 लाख लीटर प्रतिदिन करने का लक्ष्य

भोपाल। केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री अमित शाह ने भोपाल के भेल दशहरा मैदान में गौपालक सम्मेलन और न्याय संहिता पर राज्य स्तरीय प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। उन्होंने प्रदर्शनी के खंड क्रमांक 1 से 10 तक का अवलोकन किया।

शाह ने उज्जैन में 255 करोड़ रुपये की लागत से बनने वाले प्रतिदिन 3 लाख लीटर क्षमता के दुग्ध प्रोसेसिंग प्लांट का वर्चुअल भूमिपूजन किया। भोपाल में 16.5 करोड़ रुपये के प्रोडक्ट डेयरी प्लांट, 12.42 करोड़ रुपये की अत्याधुनिक केंद्रीय प्रयोगशाला और शिवपुरी में 6.5 करोड़ रुपये के मिनी डेयरी प्लांट के सुदृढीकरण कार्य का लोकार्पण किया गया। उन्होंने कहा कि गांवों में 75 हजार नई डेयरी सहकारी समितियां बनाने और 46 हजार मौजूदा डेयरियों को मजबूत करने का लक्ष्य है। मुख्यमंत्री मोहन यादव ने बताया कि प्रदेश में प्रतिदिन दो करोड़ लीटर से अधिक दूध का उत्पादन होता है और 12 लाख लीटर दूध समितियों के माध्यम से खरीदा जा रहा है। कार्यक्रम के दौरान केंद्रीय मंत्री शाह ने 5 गौपालक दीदियों का सम्मान भी किया। उन्होंने डॉ. भीमराव अम्बेडकर कामधेनु योजना के हितग्राहियों को स्वीकृति पत्र भी प्रदान किए। कार्यक्रम में केंद्रीय मंत्री अमित शाह ने प्रदेश को दुग्ध क्षेत्र के लिए कई सौगातें प्रदान कीं।

दुग्ध प्रोसेसिंग प्लांट का वर्चुअल भूमि-पूजन किया

उन्होंने रिमोट का बटन दबाकर हितलाभ का वितरण किया। उन्होंने उज्जैन में 255 करोड़ की लागत से प्रतिदिन 3 लाख लीटर क्षमता वाले दुग्ध प्रोसेसिंग प्लांट का वर्चुअल भूमि-पूजन किया। उन्होंने भोपाल में 16.5 करोड़ की लागत के प्रतिदिन 40 हजार लीटर क्षमता वाले प्रोडक्ट डेयरी प्लांट, भोपाल में ही 12.42 करोड़ की लागत से बनी अत्याधुनिक राज्य स्तरीय केंद्रीय प्रयोगशाला, शिवपुरी में 6.5 करोड़ की लागत के मिनी डेयरी प्लांट के सुदृढीकरण कार्य का लोकार्पण किया। इन परियोजनाओं से प्रदेश में दुग्ध प्रसंस्करण और डेयरी अधोसंरचना को विस्तार मिलेगा। साथ ही, रोजगार व स्व-रोजगार के अवसरों का भी सृजन होगा। कार्यक्रम में कृषि पर आधारित लघु फिल्म का भी प्रदर्शन किया गया।

नगर वन विकास और मध्यप्रदेश के लिए नए लक्ष्य

गौरतलब है कि केंद्रीय मंत्री अमित शाह और मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव की उपस्थिति में मोरवन प्रोजेक्ट के तहत भोपाल में नगर वन विकसित करने के लिए KRIBHCO और मध्य प्रदेश राज्य जैवविविधता बोर्ड के बीच एमओयू हुआ। इस पहल का उद्देश्य भोपाल में हरित क्षेत्र का विस्तार

करने के साथ जैव विविधता संरक्षण, पर्यावरण संवर्धन और नागरिकों के लिए बेहतर प्राकृतिक वातावरण विकसित करना है।

नगर वन के विकास से स्थानीय जैव विविधता को संरक्षण मिलेगा और शहर में हरित आवरण को बढ़ावा मिलेगा। केंद्रीय मंत्री शाह ने मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव की तारीफ की और उन्हें व टीम को बधाई दी। उन्होंने गौपालकों



के हितों के लिए किए गए कार्यों के लिए सीएम डॉ. मोहन यादव को साधुवाद भी दिया। कार्यक्रम में मध्य प्रदेश के लिए 50 लाख लीटर प्रतिदिन दूध उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इस दौरान केंद्रीय मंत्री शाह ने यह भी कहा कि 31 दिसंबर 2029 से पहले मध्य प्रदेश को नशा मुक्त करने का लक्ष्य तय किया गया है। कार्यक्रम में केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री अमित शाह ने कहा कि गौपालकों के इस सम्मेलन में आए भाई-बहनों की संख्या मध्य प्रदेश में श्वेत क्रांति के लिए शुभांकर है। आज यहां न्याय संहिता प्रदर्शनी का भी शुभारंभ हुआ है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत सरकार ने अंग्रेजी दौर के कई कानूनों को समाप्त कर अपनी न्याय संहिता लागू की है। हमारी न्याय व्यवस्था की पहचान कभी तारीख-पे-तारीख से होती थी। लेकिन, अब भारतीय न्याय संहिता में एफआईआर के बाद तीन वर्ष में दोषी को सजा दिलवाने का प्रावधान है। अंग्रेजों ने अपनी सरकार को बचाने के लिए कानून बनाए थे। नई न्याय संहिता का मूलमंत्र न्याय है, दंड सिर्फ अपराध रोकने के लिए है। इससे हर भारतीय के सम्मान की रक्षा होगी। शीघ्र ही भारतीय न्याय संहिता दुनिया में सबसे आधुनिक न्याय तंत्र बन जाएगी। इसमें ऑनलाइन एफआईआर, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, एफएसएल के प्रावधान और कई आधुनिक वैज्ञानिक प्रावधान जोड़े गए हैं। महिला सुरक्षा, आतंकवाद, लिचिंग तक से प्रोटेक्शन की व्यवस्था है।

एमपी हासिल करेगा बड़ा लक्ष्य

केंद्रीय मंत्री शाह ने कहा कि देश में सहकारिता से जुड़े लोग 75 साल से सहकारिता मंत्रालय बनाने की मांग कर रहे थे, लेकिन कांग्रेस सरकारों ने कभी इस पर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद प्रधानमंत्री मोदी ने पहली बार देश में सहकारिता मंत्रालय की शुरुआत की। इसका सबसे बड़ा फायदा गौपालक

भाई-बहनों को होने वाला है।

बिचौलियों को दूध बेचने से दुग्ध उत्पादकों को केवल 35 रुपए लीटर दाम मिलता है, लेकिन सहकारी समितियों को दूध बेचने पर पहले दिन से 55 रुपए लीटर कीमत मिलेगी। हमारी सरकार मिल्क प्रोसेसिंग कर दही, मक्खन, पनीर जैसे उत्पाद तैयार करने के लिए इकोसिस्टम तैयार कर रही है। आज उज्जैन में 255 करोड़ लागत के दुग्ध प्रसंस्करण संयंत्र का भूमि-पूजन हुआ है। भोपाल में 17 करोड़ की लागत से सांची दुग्ध संघ का संयंत्र बनकर तैयार हो गया है। उन्होंने कहा कि भोपाल में 12 करोड़ की लागत से

अत्याधुनिक राज्य स्तरीय प्रयोगशाला बनाई गई है। वहीं, शिवपुरी में साढ़े 6 करोड़ की लागत से मिनी डेयरी यूनिट को भी बनाया जाएगा। भोपाल और इंदौर दुग्ध संघ से जुड़े पशुपालकों को 12 करोड़ रुपए बोनस की सौगात दी गई है। गौपालक दीदियों का सम्मान भी हुआ है। प्रदेश में 50 एकड़ भूमि पर गाय और भैंस की नस्ल सुधार का कार्यक्रम शुरू किया जाएगा, जिससे गोमाता बीमार नहीं होगी और दूध उत्पादन बढ़ेगा। उन्होंने कहा कि नई प्रजनन तकनीक से गाय केवल बछिया ही जनेगी। अगले तीन साल में मध्य प्रदेश सरकार दूध उत्पादन क्षमता को 10 लाख लीटर से बढ़ाकर 50 लाख लीटर तक लेकर जाने के लिए कार्य करेगी। यह बड़ा लक्ष्य है। गुजरात ने इसे कर दिखाया है। केंद्रीय मंत्री शाह ने कहा कि देश की आजादी के बाद वर्ष 2013-14 तक देश में कुल दूध उत्पादन 14 करोड़ 7 लाख टन था। लेकिन, प्रधानमंत्री मोदी के सत्ता संभालने के बाद 10 साल में ही यह 25 करोड़ टन से अधिक हो गया है। केंद्र और हमारी राज्य सरकारों की गौपालकों के लिए प्रतिबद्धता से यह लक्ष्य हासिल होता है। प्रति व्यक्ति दूध उत्पादन में 58 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है, जो अब 485 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन हो गया है। भारत अब दुनिया में सबसे अधिक दूध उत्पादन कर रहा है। देश के दूध उत्पादक अग्रणी 5 राज्यों में उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र शामिल हैं, ये सभी राज्य बीजेपी शासित राज्य हैं। कांग्रेसी राज्यों में यह काम नहीं होता, क्योंकि उनका काम केवल रैलियां निकालना, विरोध करना और नकारात्मकता फैलाना है।

किसानों को सौगात, बिना ब्याज मिलेगा 3 लाख तक लोन, 10 घंटे दिन में बिजली

घर बैठे किसानों को मिलेगा 'केसीसी', ऑनलाइन पोर्टल लांच

ग्वालियर। प्रदेश के ग्वालियर में किसानों के सम्मान में बलराम जयंती महोत्सव का आयोजन हुआ। जिसमें शामिल हुए मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने किसानों के लिए सौगातों की झड़ी लगा दी। एक ओर किसानों के लिए कवच योजना लांच की। वहीं आने वाले समय किसानों को दिन में 10 घंटे बिजली देने की घोषणा की है। साथ ही अगले ढाई साल में खेत सिंचाई का रकबा 100 लाख हेक्टेयर तक पहुंचाने की बात सीएम ने मंच से कही है। कार्यक्रम में केंद्रीय मंत्री ज्योतिरादित्य सिंधिया, विधानसभा अध्यक्ष नरेंद्र सिंह तोमर, मंत्री विश्वास सारंग, मंत्री नारायण सिंह कुशवाहा, एदल सिंह कंसाना, सांसद भारत सिंह कुशवाहा समेत कई नेता मौजूद रहे। कार्यक्रम की शुरुआत स्वागत सत्कार के साथ हुई। लेकिन इसके बाद मुख्यमंत्री ने प्रदेश के किसानों के लिये सौगातों का पिटारा खोलते हुए सबसे पहले ऑनलाइन केसीसी पोर्टल का शुभारंभ किया। ये ऐसा पोर्टल है जिसके जरिए किसान क्रेडिट कार्ड घर बैठे ही ले सकेंगे। क्योंकि अब तक अपैक्स के माध्यम से दिया जाने वाले किसान क्रेडिट कार्ड में महीनों लग जाते थे। इसके लिए कई दस्तावेज चाहिए होते थे, लेकिन अब इस ऑनलाइन पोर्टल के जरिए किसानों को सिर्फ अपनी समग्र आईडी और आधार कार्ड से ऑनलाइन केसीसी पोर्टल पर किसान की पूरी जानकारी उपलब्ध होगी।

कलेक्टर की अध्यक्षता में जिला स्तरीय बैंकर्स समिति की त्रैमासिक बैठक

जबलपुर। कलेक्टर राघवेंद्र सिंह की अध्यक्षता में कलेक्टर कार्यालय में जिला स्तरीय समन्वय समिति एवं जिला स्तरीय समीक्षा समिति की त्रैमासिक बैठक आयोजित की गई। बैठक में जिले में संचालित विभिन्न हितग्राहीमूलक शासकीय योजनाओं की प्रगति, निर्धारित लक्ष्यों के विरुद्ध उपलब्धियों तथा ऋण वितरण की स्थिति की समीक्षा की गई। कलेक्टर श्री राघवेंद्र सिंह ने बैंकर्स को निर्देशित किया कि हितग्राहीमूलक योजनाओं के अंतर्गत प्राप्त ऋण प्रकरणों का त्वरित परीक्षण एवं स्वीकृति सुनिश्चित करते हुए पात्र हितग्राहियों को समय पर ऋण उपलब्ध कराया जाए। उन्होंने जिले में ऋण वितरण की गति बढ़ाने तथा विभिन्न शासकीय योजनाओं के निर्धारित लक्ष्यों को समय-सीमा में पूर्ण करने के निर्देश दिए। बैठक में विभिन्न विभागों द्वारा संचालित हितग्राहीमूलक योजनाओं की विभागवार समीक्षा की गई।



कम समय में किसानों को केसीसी की फसल स्वीकृति सिर्फ 7 दिन में मिल सकेगी। वहीं, किसानों को पूर्व से सहकारी संस्थाओं अपैक्स के द्वारा जारी शून्य प्रतिशत फसल ऋण योजना के तहत मिलने वाला लोन और आसान हो गया है। इस योजना का सरलीकरण करते हुए सरकार ने अब 3 लाख रुपये तक का फसल ऋण

किसानों के लिए 12 महीने तक ब्याज मुक्त कर दिया है। साथ ही खरीफ और रबी फसल के लिए किसानों को अलग लोन नहीं लेना होगा और नहीं अलग अलग ब्याज भरना होगा। इसके साथ ही जो किसान समय पर लोन की पेमेंट करेंगे उन्हें ब्याज अनुदान और प्रोत्साहन का लाभ भी मिलेगा।

!! जय बालाजी सरकार !!

श्री बालाजी बीज भण्डार एवं कृषि सेवा केन्द्र

प्रो. राघवेंद्र गुर्जर लखिया वाले

मो. 7828263234

हमारे यहाँ बीज एवं सभी प्रकार के कीटनाशक दवाइयाँ उचित दर पर मिलती हैं

पता : रिलायंस पेट्रोल पम्प के सामने, डबरा (म.प्र.)

कृषि सेवा • बीज • कीटनाशक • खाद • कृषि उपकरण



केवीके धार में प्राकृतिक खेती पर कृषक प्रशिक्षण

धार। कृषि विज्ञान केंद्र (KVK), धार में "प्राकृतिक खेती (Natural Farming)" विषय पर दो दिवसीय गहन कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण में जिले के विभिन्न क्षेत्रों से आए 35 कृषकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया और पर्यावरण-अनुकूल खेती की आधुनिक तकनीकों को सीखा। दो दिवसीय प्रशिक्षण के दौरान कृषि वैज्ञानिकों एवं मुख्य प्रशिक्षकों द्वारा किसानों को प्राकृतिक खेती के सिद्धांतों, व्यावहारिक घटकों एवं जीवत प्रदर्शन के माध्यम से विस्तृत मार्गदर्शन प्रदान किया गया। कृषि विज्ञान केंद्र, धार के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख डॉ. एस.एस. चौहान ने प्रशिक्षण के शुभारंभ अवसर



पर किसानों को संबोधित करते हुए कहा कि प्राकृतिक खेती वर्तमान समय की मुख्य आवश्यकता है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। डॉ. चौहान ने कृषकों को प्राकृतिक संसाधनों के सही उपयोग और लागत कम करके टिकाऊ कृषि अपनाने के लिए प्रेरित किया। डॉ. अंकिता पांडेय, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, (कृषि प्रसार) ने कृषकों को प्राकृतिक खेती के प्रमुख स्तंभों-बीजामृत, जीवामृत, घनजीवामृत, आच्छादन (मल्लिंग) और वाफसा तकनीक के बारे में विस्तार से समझाया। उन्होंने देशी गाय के गोबर और गोमूत्र से तैयार होने वाले जैविक घटकों को बनाने तथा फसलों में उनके उपयोग की व्यावहारिक विधियों का प्रदर्शन कर किसानों को प्रशिक्षित किया। डॉ. पांडे ने कीट व रोग नियंत्रण हेतु नीम अर्क, ब्रह्मास्त्र जैसे प्राकृतिक विकल्पों को तैयार करने की तकनीक भी साझा की। प्रशिक्षण सत्र के पश्चात सभी सहभागियों को कृषि विज्ञान केंद्र, धार के प्रक्षेत्र (Farm) पर विकसित किए गए 'मॉडल नेचुरल फार्म' (Model Natural Farm) का भ्रमण कराया गया। भ्रमण के दौरान किसानों को प्रक्षेत्र पर उगाई जा रही विभिन्न फसलों में प्राकृतिक खेती के व्यावहारिक प्रयोगों, जीवामृत यूनिट तथा मल्लिंग प्रबंधन को प्रत्यक्ष रूप से दिखाया गया, जिससे किसान प्राकृतिक खेती के मॉडल को अपने खेतों में आसानी से लागू कर सकें। प्रशिक्षण के समापन सत्र में कृषकों की प्राकृतिक खेती से जुड़ी विभिन्न जिज्ञासाओं एवं शंकाओं का समाधान किया गया तथा उन्हें अपने खेतों में छोटे स्तर से प्राकृतिक खेती की शुरुआत करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इस अवसर पर श्री रितेश जैन, डॉ. डीएस मंडलोई, गौरव सारस्वत, भूपेंद्र कुमार कुर्मी, गणेश निगवाल, जितेंद्र नायक, जीवन निगवाल की सक्रिय उपस्थिति एवं सराहनीय योगदान रहा।

भाटखेड़ी में ज्ञान के नए केंद्र की शुरुआत

राजगढ़। ग्राम पंचायत भाटखेड़ी जनपद पंचायत ब्यावरा में शिक्षा एवं ज्ञान को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल करते हुए "भारत रत्न डॉ. बी.आर. आंबेडकर पुस्तकालय" का शुभारंभ मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत डॉ. इच्छित गढ़पाले द्वारा किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता ग्राम पंचायत भाटखेड़ी की सरपंच श्रीमती बसंती बाई ने की। पुस्तकालय के उद्घाटन अवसर पर बड़ी संख्या में ग्रामीण, बच्चे एवं युवा उपस्थित रहे। पुस्तकालय का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों एवं युवाओं को अध्ययन के लिए बेहतर वातावरण, पुस्तकें एवं आवश्यक शैक्षणिक सुविधाएं उपलब्ध कराना है। पंचायत द्वारा पुस्तकालय को प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी एवं नियमित अध्ययन के उपयोगी केंद्र के रूप में विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस अवसर पर मुख्य कार्यपालन अधिकारी जिला पंचायत डॉ. गढ़पाले ने ग्राम भाटखेड़ी स्थित आंगनवाड़ी केंद्र क्रमांक-2 का निरीक्षण भी किया। केंद्र में बच्चों के अनुकूल वातावरण, आकर्षक चित्रकारी एवं शैक्षणिक गतिविधियों के लिए की गई व्यवस्थाओं का जायजा लिया गया। कार्यक्रम में बच्चों की सक्रिय सहभागिता विशेष आकर्षण का केंद्र रही। ग्रामीणों ने गांव में पुस्तकालय की शुरुआत को बच्चों एवं युवाओं के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण पहल बताते हुए प्रसन्नता व्यक्त की। ग्राम पंचायत भाटखेड़ी द्वारा शिक्षा, बाल हित एवं सामाजिक जागरूकता की दिशा में किए जा रहे प्रयासों के क्रम में पुस्तकालय की स्थापना को ज्ञान, शिक्षा और बेहतर भविष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

प्रतिबंधित प्लास्टिक के उपयोग पर नगर पालिका करेली की कार्रवाई

नरसिंहपुर। स्वच्छता एवं पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नगर पालिका परिषद करेली द्वारा प्रतिबंधित सिंगल यूज प्लास्टिक के उपयोग के विरुद्ध कार्रवाई की गई। नगर पालिका के अमले द्वारा शहर के विभिन्न क्षेत्रों में निरीक्षण कर प्रतिबंधित प्लास्टिक के उपयोग एवं विक्रय की जांच की गई। कार्रवाई के दौरान प्रतिबंधित प्लास्टिक का उपयोग पाए जाने पर संबंधित व्यक्तियों एवं प्रतिष्ठानों के विरुद्ध नियमानुसार कार्रवाई करते हुए कुल 4 हजार 350 रुपये की चालानी राशि वसूल की गई। नगर पालिका परिषद करेली द्वारा नागरिकों एवं व्यापारियों से अपील की गई है कि वे प्रतिबंधित सिंगल यूज प्लास्टिक का उपयोग न करें और पर्यावरण संरक्षण में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करें। इसके स्थान पर कपड़े, जूट अथवा अन्य पर्यावरण अनुकूल थैलों एवं सामग्री का उपयोग करें।



नरेन्द्र रावत
(राजपुर वाले)

9977847628

हरियाणा
कृषि सेवा केन्द्र

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाईयों के विक्रेता



पता :- पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)



✍ **योगेश कुमार** (शोध छात्र) पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

✍ **अनीता कुमारी पांडे** (शोध छात्रा) पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

✍ **डॉ. रजनी सिंह ससोडे** (विभाग प्रमुख एवं वैज्ञानिक) कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

परिचय

ग्वार एक महत्वपूर्ण दलहन एवं औद्योगिक फसल है। इसमें विभिन्न फफूंदजनित, जीवाणुजनित तथा मृदाजनित रोग पाए जाते हैं, जो पौधों की वृद्धि, उत्पादन तथा बीज की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। ग्वार में रोगों का प्रभावी प्रबंधन करने के लिए एकीकृत रोग प्रबंधन अपनाया अधिक उपयोगी होता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है।

1. स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग

बुवाई के लिए स्वस्थ, साफ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए। रोगग्रस्त पौधों से प्राप्त बीजों का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि कई रोग बीज के माध्यम से अगली फसल तक पहुँच सकते हैं।

2. बीज उपचार

बुवाई से पहले बीजों को उपयुक्त जैविक या रासायनिक फफूंदनाशी से उपचारित करना चाहिए। ट्राइकोडर्मा जैसे जैव-एजेंटों का प्रयोग मृदाजनित रोगों के प्रबंधन में उपयोगी हो सकता है। बीज उपचार से प्रारंभिक अवस्था में रोगजनकों से होने वाले संक्रमण को कम किया जा सकता है।

3. फसल चक्र अपनाना

ग्वार की लगातार खेती करने से मृदा में रोगजनकों का प्राथमिक इनोकुलम बढ़ सकता है। इसलिए ग्वार के साथ अनाज वाली फसलों का फसल चक्र अपनाना चाहिए। इससे मृदा में उपस्थित रोगजनकों की संख्या कम करने में सहायता मिलती है।

4. खेत की स्वच्छता

रोगग्रस्त पौधों, पत्तियों एवं फसल अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट करना चाहिए। संक्रमित अवशेषों को खेत में छोड़ने से रोगजनक अगले

ग्वार में रोगों के प्रबंधन की प्रमुख तकनीकें



मौसम में पुनः संक्रमण कर सकते हैं। खेत एवं सिंचाई नालियों को भी खरपतवार एवं संक्रमित अवशेषों से मुक्त रखना चाहिए।

5. उचित जल निकास

जलभराव एवं अत्यधिक नमी कई मृदाजनित रोगों के विकास को बढ़ावा देती है। इसलिए खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। अत्यधिक सिंचाई से बचना चाहिए तथा आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करनी चाहिए।

6. रोगरोधी किस्मों का प्रयोग

जहाँ उपलब्ध हों, वहाँ रोगरोधी या रोग-सहिष्णु ग्वार किस्मों का चयन करना चाहिए। रोगरोधी किस्मों का उपयोग रोग प्रबंधन की सबसे प्रभावी एवं पर्यावरण-अनुकूल विधियों में से एक है।

7. संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन

फसल में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता के अनुसार संतुलित मात्रा में उपयोग करना चाहिए। अत्यधिक नाइट्रोजन का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पौधे का कोमल एवं अत्यधिक वानस्पतिक विकास हो सकता है तथा कुछ रोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ सकती है।

8. जैविक नियंत्रण

ट्राइकोडर्मा जैसे जैव-नियंत्रण एजेंटों का उपयोग मृदाजनित रोगों के प्रबंधन में किया जा सकता है। जैव-एजेंट रोगजनकों के साथ प्रतिस्पर्धा, परजीवीकरण तथा विभिन्न जैव-रासायनिक क्रियाओं के माध्यम से रोगजनकों की वृद्धि को कम करते हैं। जैविक उत्पादों का प्रयोग पर्यावरण की दृष्टि से भी उपयोगी है।

9. रोगग्रस्त पौधों को हटाना

खेत में रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने पर रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर खेत से बाहर नष्ट कर देना चाहिए। इससे रोग के एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलने की संभावना कम होती है।

10. रोग की नियमित निगरानी

फसल की नियमित रूप से निगरानी करनी चाहिए तथा पत्तियों, तने, जड़ एवं कॉलर क्षेत्र पर दिखाई देने वाले प्रारंभिक लक्षणों की पहचान करनी चाहिए। रोग की प्रारंभिक अवस्था में प्रबंधन उपाय अपनाने से रोग के अधिक फैलाव को रोका जा सकता है।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार

मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510



☞ सुनित भदरगे पिएच.डी. शोध छात्र

(फल विज्ञान) बागवानी विभाग, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर,
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर-475001 (म.प्र.)

भूमिका: भारत में फल उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन इसके साथ ही किसानों के सामने कई नई चुनौतियाँ भी खड़ी हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन, श्रमिकों की कमी, कीट एवं रोगों का बढ़ता प्रकोप, जल संसाधनों की कमी और उत्पादन लागत में वृद्धि ने पारंपरिक बाग प्रबंधन को अधिक कठिन बना दिया है। ऐसे समय में आधुनिक तकनीकों का उपयोग फल उत्पादन को अधिक लाभकारी, टिकाऊ और वैज्ञानिक बना रहा है। इन्हीं तकनीकों में ड्रोन आधारित निगरानी (Drone-Based Monitoring) सबसे प्रभावशाली नवाचारों में से एक है। ड्रोन, जिसे मानवरहित हवाई यान (Unmanned Aerial Vehicle—UAV) भी कहा जाता है, एक ऐसा उपकरण है जो बिना पायलट के उड़कर बाग का निरीक्षण कर सकता है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाले कैमरे, मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर, थर्मल कैमरे, जीपीएस तथा अन्य सेंसर लगे होते हैं। इनकी सहायता से बाग की वास्तविक स्थिति का त्वरित और सटीक आकलन किया जा सकता है। पहले जिन कार्यों में कई दिन लगते थे, उन्हें अब कुछ घंटों या मिनटों में पूरा किया जा सकता है।

ड्रोन आधारित निगरानी क्या है?

ड्रोन आधारित निगरानी का अर्थ है कि फल बागों की नियमित देखभाल और विश्लेषण के लिए ड्रोन का उपयोग किया जाए। ड्रोन बाग के ऊपर उड़कर पौधों की तस्वीरें और वीडियो रिकॉर्ड करता है तथा विभिन्न सेंसरों से जानकारी एकत्र करता है। यह जानकारी विशेष सॉफ्टवेयर के माध्यम से विश्लेषित की जाती है, जिससे किसान या बाग प्रबंधक समय रहते आवश्यक निर्णय ले सकते हैं। ड्रोन केवल दृश्य निरीक्षण तक सीमित नहीं हैं। आधुनिक ड्रोन पौधों के स्वास्थ्य, मिट्टी की नमी, तापमान, पोषक तत्वों की कमी और रोगों के प्रारंभिक लक्षणों का भी पता लगाने में सक्षम हैं।

फल बागों में ड्रोन की आवश्यकता

बड़े फल बागों का प्रत्येक पौधा नियमित रूप से देखना कठिन और समय लेने वाला कार्य है। कई बार रोग या कीट का प्रकोप प्रारंभिक अवस्था में दिखाई नहीं देता और नुकसान बढ़ने के बाद ही उसकी जानकारी मिलती है। ड्रोन इस समस्या का समाधान प्रदान करते हैं। वे पूरे बाग का एक साथ निरीक्षण कर उन स्थानों की पहचान कर सकते हैं जहाँ पौधे तनाव में हैं, रोगग्रस्त हैं या पोषण की कमी से प्रभावित हैं। इस तकनीक से समय, श्रम और लागत की बचत होती है तथा उत्पादन में सुधार होता है।

ड्रोन कैसे कार्य करता है?

ड्रोन में उड़ान नियंत्रक (Flight Controller), जीपीएस, कैमरे, सेंसर, बैटरी और संचार प्रणाली होती है। उड़ान से पहले बाग का डिजिटल नक्शा तैयार किया जाता है और ड्रोन के लिए उड़ान मार्ग निर्धारित किया जाता है। इसके बाद ड्रोन निर्धारित ऊँचाई पर उड़ते हुए पूरे क्षेत्र की तस्वीरें और आँकड़े एकत्र करता है।

संग्रहित जानकारी का विश्लेषण कर निम्नलिखित जानकारी प्राप्त की जा सकती है— ■ पौधों की वृद्धि की

ड्रोन आधारित निगरानी: फल बागों के वैज्ञानिक प्रबंधन की नई दिशा



स्थिति ■ रोग और कीट का प्रकोप ■ जल तनाव (Water Stress) ■ पोषक तत्वों की कमी ■ क्षतिग्रस्त पौधों की पहचान ■ बाग का डिजिटल मानचित्र

फल विज्ञान में ड्रोन के प्रमुख उपयोग

1. पौधों के स्वास्थ्य की निगरानी

ड्रोन द्वारा ली गई मल्टीस्पेक्ट्रल तस्वीरों से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन-से पौधे स्वस्थ हैं और किन पौधों में वृद्धि रुक गई है। पत्तियों के रंग और प्रकाश परावर्तन (Reflectance) के आधार पर पौधों की स्थिति का आकलन किया जाता है।

2. कीट एवं रोग की प्रारंभिक पहचान

फल मक्खी, मिलीबग, एफिड, फफूंदजनित रोग तथा अन्य समस्याओं के प्रारंभिक लक्षणों की पहचान ड्रोन से संभव है। समय पर पहचान होने से उपचार जल्दी किया जा सकता है और नुकसान कम होता है।

3. जल प्रबंधन थर्मल कैमरों की सहायता से उन क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है जहाँ पौधों को पर्याप्त पानी नहीं मिल रहा है। इससे केवल आवश्यक स्थानों पर सिंचाई की जा सकती है, जिससे जल की बचत होती है।

4. पोषण प्रबंधन

यदि किसी भाग में नाइट्रोजन, जंक या अन्य पोषक तत्वों की कमी हो, तो ड्रोन द्वारा प्राप्त चित्रों के विश्लेषण से उसका संकेत मिल सकता है। इससे उर्वरकों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है।

5. उत्पादन का अनुमान

फूलों और फलों की संख्या तथा पौधों की वृद्धि के आधार पर ड्रोन की सहायता से संभावित उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे कटाई, भंडारण और विपणन की बेहतर योजना बनती है।

6. डिजिटल मानचित्रण

ड्रोन बाग का उच्च-रिज़ॉल्यूशन डिजिटल मानचित्र तैयार करते हैं। इससे पौधों की संख्या, दूरी, खाली स्थान और बाग की समग्र स्थिति का रिकॉर्ड तैयार करना आसान हो जाता है।

ड्रोन आधारित निगरानी के लाभ

■ पूरे बाग का कम समय में निरीक्षण। ■ श्रम और समय की बचत। ■ कीट एवं रोगों की प्रारंभिक पहचान। ■ जल एवं उर्वरकों का कुशल उपयोग। ■ उत्पादन लागत में कमी। ■ फलों की गुणवत्ता में सुधार। ■ सटीक और डेटा-आधारित निर्णय। ■ पर्यावरण पर कम प्रभाव। ■ बड़े बागों का प्रभावी प्रबंधन।

सटीक कृषि (Precision Agriculture) में योगदान

ड्रोन तकनीक सटीक कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उद्देश्य प्रत्येक पौधे या बाग के प्रत्येक हिस्से की आवश्यकता के अनुसार प्रबंधन करना है। इससे संसाधनों का अनावश्यक उपयोग कम होता है और उत्पादन दक्षता बढ़ती है। उदाहरण के लिए, यदि ड्रोन से पता चलता है कि केवल बाग का 15% भाग रोग से प्रभावित है, तो उपचार केवल उसी क्षेत्र में किया जा सकता है। इससे रसायनों की बचत होती है और पर्यावरण पर दबाव कम पड़ता है।

चुनौतियाँ

ड्रोन तकनीक के अनेक लाभ होने के बावजूद कुछ चुनौतियाँ भी हैं— ■ ड्रोन और सेंसर की प्रारंभिक लागत। ■ प्रशिक्षित ऑपरेटरों की आवश्यकता। ■ बैटरी की सीमित उड़ान अवधि। ■ खराब मौसम में उड़ान की कठिनाई। ■ डेटा विश्लेषण के लिए तकनीकी विशेषज्ञता। ■ नियामकीय और सुरक्षा संबंधी नियमों का पालन। इन चुनौतियों के बावजूद तकनीक के विकास और लागत में कमी के साथ ड्रोन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है।

भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन लर्निंग और ड्रोन का संयोजन फल बागों के प्रबंधन को और अधिक प्रभावी बनाएगा। स्वचालित उड़ान, वास्तविक समय में रोग पहचान, सटीक छिड़काव और डिजिटल निर्णय प्रणाली जैसी सुविधाएँ किसानों को तेज़, वैज्ञानिक और किफायती समाधान उपलब्ध कराएँगी। ड्रोन से प्राप्त आँकड़ों को मौसम पूर्वानुमान, मिट्टी परीक्षण और कृषि सलाह सेवाओं से जोड़कर एक समग्र स्मार्ट बागवानी प्रणाली विकसित की जा सकती है।

निष्कर्ष

ड्रोन आधारित निगरानी फल विज्ञान में आधुनिक तकनीक का एक महत्वपूर्ण कदम है। यह किसानों और बाग प्रबंधकों को कम समय में अधिक सटीक जानकारी उपलब्ध कराती है, जिससे सिंचाई, पोषण, कीट एवं रोग प्रबंधन तथा उत्पादन योजना बेहतर ढंग से की जा सकती है। इससे लागत कम होती है, उत्पादन और गुणवत्ता बढ़ती है तथा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी होता है। आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे ड्रोन तकनीक अधिक सुलभ और किफायती होगी, यह फल बागों के वैज्ञानिक प्रबंधन का अभिन्न अंग बन जाएगी। आधुनिक कृषि की दिशा स्पष्ट है—"सटीक जानकारी, सही समय पर निर्णय और अधिक लाभकारी बागवानी।"



डॉ. पी.पी. सिंह, डॉ. सुखवीर सिंह, श्रीमती रीना शर्मा

डॉ. स्वाती सिंह तोमर, डॉ. जे.सी. गुप्ता, राजमाता विजयाराजे

सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय-कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना (म.प्र.)

ग्रामीण परिस्थितियों में अंडे के उत्पादन के लिए विकसित की गई उन्नत किस्में

नस्ल का नाम	नर का वजन (किलोग्राम)	मादा का वजन (किलोग्राम)	एकले अंडे देने की उम्र	वार्षिक अंडा उत्पादन	विकसित करने वाली संस्था
ग्रामप्रिया	15-18	15-18	173 दिन	180	आईसीएआर-कैपेआर, हैदराबाद, तेलंगाना
सीएआरआई, सोनाली	18-35	12-25	18 से 19 सप्ताह	280	आईसीएआर-सीएआरआई, इज्जतनगर, बरेली (यूपी)
अधुना	15	-	123 दिन	290	आईसीएआर-कैपेआर, मनुषी, केरल
कैरिब्रो, विशाल	24	22	122 दिन	270	कैरिब्रो, रंगपुर, कर्नाटक
कावेरी	22	20	183 दिन	130	कैरिब्रो, रंगपुर, कर्नाटक

1.ग्रामप्रिया- ग्रामप्रिया एक अंडा देने वाली मुर्गी है जिसे हैदराबाद स्थित आईसीएआर-कुक्कुट अनुसंधान निदेशालय में ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में खुले में पाली जाने वाली मुर्गियों के लिए विकसित किया गया है। ग्रामप्रिया मुर्गियों के पंख मुख्य रूप से भूरे रंग के होते हैं और ये भूरे अंडे देती हैं। ग्रामप्रिया मुर्गियां अपने अधिक अंडे के वजन और अधिक अंडा उत्पादन के लिए जानी जाती हैं, जिनका औसत अंडा वजन 55-60 ग्राम होता है। ग्रामप्रिया वजन में हल्की होती है और इनकी जीवित रहने की दर अधिक होती है। 15 सप्ताह (बाजार में बिकने की उम्र) में नर मुर्गियों का वजन 1.5 से 1.8 किलोग्राम तक होता है। नर मुर्गी का मांस कोमल होता है और विशेष रूप से तंदूरी व्यंजनों के लिए उपयुक्त होता है। किसानों के घर के आसपास में खेत की परिस्थितियों में वार्षिक अंडा उत्पादन लगभग 150-160 अंडे होता है। 20 ग्रामप्रिया मुर्गियों वाली इकाई वाला एक छोटा किसान 11000 रुपये तक का शुद्ध लाभ कमा सकता है।

2.सीएआरआई, सोनाली- यह एक उच्च प्रदर्शन वाली व्यावसायिक भूरे रंग की अंडा देने वाली मुर्गी की नस्ल है जिसे 1992 में व्हाइट लेगहॉर्न नर और रोड आइलैंड रेड मादा के संकरण द्वारा विकसित किया गया था। भारत में इसे विशेष रूप से उच्च अंडा उत्पादन (लगभग 180-220 अंडे/वर्ष) और बेहतर फीड रूपांतरण के लिए पाला जाता है, और इसके पंख सुनहरे-भूरे रंग के होते हैं। मुख्य रूप से व्यावसायिक अंडा उत्पादन के लिए, हालांकि यह अच्छी गुणवत्ता वाला मांस भी प्रदान करती है। इसके सुनहरे भूरे रंग के पंख, मजबूत बनावट वाले होते हैं। ये मुर्गियां तेजी से परिपक्व होती हैं, मुर्गियां 4.5 महीने में अंडे देना शुरू कर देती हैं। विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों के लिए अत्यधिक उपयुक्त नस्ल है।

3.अथुल्या मुर्गी- केरल पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय (केवीएएसयू), मनुषी में अखिल भारतीय समन्वित मुर्गी पालन अनुसंधान परियोजना (एआईसीआरपी) द्वारा विकसित अथुल्या मुर्गी की नस्ल, उच्च उपज देने वाली, अंडे देने वाली सफेद लेगहॉर्न नस्ल की संकर मुर्गी है। अपनी उच्च अनुकूलन क्षमता और उत्पादन के कारण यह व्यावसायिक और घरेलू खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। 40 सप्ताह की आयु में मुर्गियों का वजन लगभग 1.58-1.75 किलोग्राम होता है। अंडे देने के चक्र के अंत तक (72 सप्ताह), इनका शारीरिक भार लगभग 1.5 किलोग्राम हो जाता है। हालांकि मादाएं मुख्य रूप से अंडे देने वाली नस्ल हैं, नर अक्सर खाने के लिए बेचे जाते हैं, जिनका औसत वजन वयस्क मुर्गी के वजन के समान या थोड़ा कम होता है, मुर्गी 16 सप्ताह की आयु तक औसतन 1.17 किलोग्राम और 40 सप्ताह की आयु तक 1.58 किलोग्राम के शारीरिक भार तक पहुंच जाती है।

4.कलिंगा ब्राउन- एक उच्च उपज देने वाली, वाली मुर्गी की नस्ल है जिसे सीपीडीओ भुवनेश्वर द्वारा विकसित किया गया है और इसे ग्रामीण क्षेत्रों में कम निवेश वाली घरेलू खेती के लिए डिजाइन किया गया है। यह एक मजबूत, संकर नस्ल (व्हाइट लेगहॉर्न इ रोड आइलैंड रेड) है जो स्थानीय नस्लों की तुलना में तेजी से विकास, अधिक अंडा उत्पादन (लगभग 265-275 अंडे प्रति वर्ष) और गर्मधार्द्र जलवायु के लिए बेहतर अनुकूलन क्षमता प्रदान करती है। जल्दी अंडे देना शुरू कर देती है (लगभग 150-155 दिन) और 52 सप्ताह में अंडों का औसत वजन 56 ग्राम होता है। उत्कृष्ट दाना खोजने वाली मुर्गी, जो खुले में दाना ढूँढ़कर खाने की स्थिति में भी उच्च उत्तरजीविता दर (लगभग 3: मृत्यु दर) रखती है। 100-110 दिनों में लगभग 900 ग्राम तक पहुंच जाती है, और 6-7 सप्ताह में इसका वजन 1300 ग्राम से 1800 ग्राम तक होता है। भूरे रंग के पंख, जो उपभोक्ताओं को पसंद आते हैं। खुले में दाने खोजकर खाने की स्थिति में भी, इसे प्रतिदिन 50-80 ग्राम पूरक आहार की आवश्यकता होती है।

5.कावेरी- भारत में लोकप्रिय, उन्नत देसी मुर्गी की नस्ल है, जिसे उच्च अंडा उत्पादन (लगभग 270 अंडे प्रति वर्ष) और तेजी से मांस उत्पादन (2 महीने में 1 किलो) के लिए विकसित किया गया है। बहुरंगी पंखों, एकल कलगी, पीली त्वचा और घरेलू ग्रामीण परिस्थितियों के लिए उच्च अनुकूलन क्षमता के लिए जानी जाने वाली ये मजबूत मुर्गियां रोग प्रतिरोधी होती हैं। अंडा उत्पादन और मांस दोनों के लिए उत्कृष्ट, इसे अक्सर 'उन्नत कोन्येजी' या 'देसी' किस्म कहा जाता है। 2

ग्राम मुर्गी पालन हेतु विकसित नस्लें

महीने में 1 किलो और 70 दिनों में 1.2 किलो तक वजन प्राप्त कर लेती है। उच्च अंडा देने की क्षमता, लगभग 250-270 भूरे अंडे प्रति वर्ष देती है। चूजों की शुरुआती मृत्यु दर कम, रोग प्रतिरोधी और खुले में घरों के आसपास पालने के लिए उपयुक्त। झुंड की उच्च एकरूपता और तीव्र विकास दर, जो इन्हें ग्रामीण मुर्गी पालन के लिए लाभदायक विकल्प बनाती है।

ग्रामीण परिस्थितियों में मांस उत्पादन के लिए विकसित की गई उन्नत किस्में

क्र.	नस्ल का नाम	फीड रूपांतरण अनुपात (एफसीआर)	विकसित करने वाली संस्था
1	कृषिभो	2.0	आईसीएआर-डीपीआर, हैदराबाद, तेलंगाना
2	कैरिब्रो, विशाल	1.9-2.1	आईसीएआर-सीएआरआई, इज्जतनगर, बरेली (यूपी)
3	कैरिब्रो-ट्रॉपिकाना	2.11	आईसीएआर-सीएआरआई, इज्जतनगर, बरेली (यूपी)
4	कैरिब्रो-मृत्युंजय	2.1	आईसीएआर-सीएआरआई, इज्जतनगर, बरेली (यूपी)
5	कैरिब्रो-धनराज	1.92	आईसीएआर-सीएआरआई, इज्जतनगर, बरेली (यूपी)

1.कृषिभो-कृषिभो एक बहुरंगी मांस उत्पादक पक्षी है जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में मांस उत्पादन के लिए छोटे पैमाने पर सघन कृषि पद्धतियों से विकसित किया गया है। ये पक्षी अपने मांस की उत्कृष्ट स्वाद गुणवत्ता के लिए जाने जाते हैं। ये पक्षी कठोर जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल ढल जाते हैं और कम पोषण स्तर पर भी अच्छे प्रदर्शन करते हैं। 6 सप्ताह की आयु में इनका वजन लगभग 1.5 किलोग्राम और 7 सप्ताह की आयु में 2.0 किलोग्राम होता है, जिनका फीड रूपांतरण अनुपात 'FCR' 2.0 होता है। अपने पंखों के रंग के कारण इन पक्षियों की उच्च कीमत मिलती है।

2.कैरिब्रो-विशाल (या कैरिब्रो-91) - एक उच्च उपज देने वाली, सफेद पंखों वाली ब्रॉयलर मुर्गी है जिसे केंद्रीय एवियन रिसर्च इंस्टीट्यूट 'CARI', इज्जतनगर द्वारा विकसित किया गया है और विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए डिजाइन किया गया है। वजनरूप लगभग 6 सप्ताह में 1.5 किलोग्राम तक पहुंच जाता है। इसमें उत्कृष्ट वृद्धि, उच्च गुणवत्ता वाला मांस, मजबूत उत्तरजीविता दर और 1.8 से कम का FCR (फीड कन्वर्जन रेशियो) है, जो इसे भारतीय परिस्थितियों के लिए आदर्श बनाता है।

3.कैरिब्रो ट्रॉपिकाना- एक विशेष ब्रॉयलर चिकन नस्ल है जिसे सेंट्रल एवियन रिसर्च इंस्टीट्यूट 'CARI' द्वारा विकसित किया गया है और इसे विशेष रूप से गर्म और आर्द्र उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए डिजाइन किया गया है। इसमें नमन गर्दन और फ्रिजल जीन दोनों मौजूद हैं, जो इसे अत्यधिक गर्मी सहनशील, रोग-प्रतिरोधी और ग्रामीण या कम लागत वाले मुर्गी पालन के लिए कुशल बनाते हैं। इसका शरीर भार लगभग 2 किलोग्राम है। गर्म और आर्द्र परिस्थितियों के लिए विकसित, उष्णकटिबंधीय वातावरण में बेहतर अनुकूलन क्षमता प्रदान करती है। देशी मुर्गी से प्राप्त नमन गर्दन और घुंघराले बालों के जीनों का संयोजन करके संकरण किया गया है बेहतर ड्रेसिंग प्रतिशत, अच्छी फीड दक्षता () और उच्च उत्तरजीविता प्रदर्शित करती है। अपनी कठोरता के कारण छोटे पैमाने पर या ग्रामीण पिछवाड़े में मुर्गी पालन के लिए आदर्श।

4.कैरिब्रो मृत्युंजय- एक विशेष ब्रॉयलर चिकन नस्ल है जिसे केंद्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान (आईसीएआर-केआरआई) द्वारा विकसित किया गया है। इसे विशेष रूप से उच्च तापमान, गर्म और शुष्क या उष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए डिजाइन किया गया है। इसमें 'नमन गर्दन' जीन होता है, जो गर्मी सहनशीलता को बढ़ाता है, जिससे कठोर वातावरण में बेहतर प्रदर्शन संभव होता है। गर्दन पर पंख न होने के कारण गर्मी के तनाव के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता। 7 सप्ताह में औसतन 2.5 किलोग्राम वजन प्राप्त कर लेता है। लगभग 2.5 किलोग्राम का चारा रूपांतरण अनुपात 'FCR' प्राप्त करता है। रंगीन और सफेद दोनों प्रकार के पंखों में उपलब्ध है, व्यावसायिक ब्रॉयलर उत्पादन के लिए उपयुक्त।

5.कैरिब्रो धनराज- एक विशेष, बहुरंगी व्यावसायिक ब्रॉयलर चिकन किस्म है जिसे भारत में घरों के आसपास और खुले में पालने हेतु विकसित किया गया है। उत्तरप्रदेश के इज्जतनगर स्थित आईसीएआर-केंद्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान (सीएआरआई) द्वारा विकसित यह किस्म अपने आकर्षक, रंगीन पंखों और देशी पक्षियों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन के कारण किसानों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है। यह एक मांसाहारी पक्षी है, जिसे अक्सर इसके उच्च गुणवत्ता वाले, स्वादिष्ट मांस हेतु पाला जाता है। इस पक्षी की विकास दर बहुत तेज होती है। अध्ययनों से पता चलता है कि यह 6 सप्ताह में लगभग 1.43 किलोग्राम से 1.58 किलोग्राम और 7 सप्ताह में 1.88 किलोग्राम तक वजन प्राप्त कर सकता है। अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अर्धसघन प्रबंधन में यह मुर्गी मजबूत होती है और खुले वातावरण में आसानी से पलती-बढ़ती है। यह अपने विविध, आकर्षक पंखों के लिए जाना जाता है।



डॉ. अमित कुमार झा, डॉ. राजेश कु. वांदे
डॉ. शेख. टी. जे., डॉ. बालेश्वरी दीक्षित,
डॉ. मानसी शुक्ला, डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान
विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. राजेश कुमार केवीके बागपत (उ.प्र.)

डॉ. पी. के. राम सहायक प्राध्यापक सह वैज्ञानिक,
डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि वि.वि., पूसा, समस्तीपुर

बकरी को अक्सर “गरीब की गाय” कहा जाता है, लेकिन आज के बदलते ग्रामीण अर्थतंत्र में बकरी पालन केवल छोटे किसानों की आजीविका का साधन नहीं, बल्कि एक संभावनाशील व्यावसायिक पशुपालन उद्यम बन चुका है। कम प्रारंभिक निवेश, सीमित स्थान में पालन, विभिन्न प्रकार के चारे एवं झाड़ियों का उपयोग करने की क्षमता, प्रतिकूल जलवायु में अनुकूलन तथा मांस, दूध, खाल और खाद के रूप में उपयोगिता के कारण बकरी पालन का महत्व लगातार बढ़ रहा है। हालांकि, केवल बकरियों की संख्या बढ़ा लेना लाभदायक बकरी पालन की गारंटी नहीं है। वास्तविक सफलता के लिए उत्तम आनुवंशिक क्षमता, कुशल प्रजनन प्रबंधन, पोषण, स्वास्थ्य देखभाल और सही रिकॉर्ड-रखरखाव का समन्वय आवश्यक है। बकरी पालन में प्रजनन प्रबंधन का मूल उद्देश्य ऐसी संतानों का उत्पादन करना है जो अपने माता-पिता की तुलना में बेहतर वृद्धि, प्रजनन क्षमता, जीवित रहने की क्षमता, रोग प्रतिरोधकता और उत्पादन क्षमता रखती हों। यदि प्रजनन बिना योजना के किया जाए, कमजोर नर लंबे समय तक झुंड में रखा जाए अथवा निकट संबंधी पशुओं के बीच बार-बार संकरण हो, तो कुछ पीढ़ियों के बाद झुंड की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है। इसलिए वैज्ञानिक प्रजनन प्रबंधन को सफल बकरी पालन की आधारशिला माना जाना चाहिए।

अच्छे प्रजनक नर का चयन: बकरी के प्रजनन कार्यक्रम में नर का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि एक अच्छा बकरा अपने जीवनकाल में अनेक संतानों का पिता बन सकता है और इस प्रकार उसका आनुवंशिक प्रभाव पूरे झुंड में तेजी से फैलता है। प्रजनन हेतु चुना गया बकरा स्वस्थ, सक्रिय और अच्छी शारीरिक संरचना वाला होना चाहिए। उसके पैर एवं खुर मजबूत होने चाहिए तथा शरीर में नस्ल के विशिष्ट गुण स्पष्ट रूप से दिखाई देने चाहिए। दोनों अंडकोष सामान्य आकार, संरचना और स्थिति में होने चाहिए। प्रजनन अंगों में किसी प्रकार की विकृति नहीं होनी चाहिए। जहाँ संभव हो, केवल बाहरी रूप-रंग के आधार पर बकरे का चयन नहीं करना चाहिए। उसके जन्म एवं वृद्धि का रिकॉर्ड, शरीर भार, माता-पिता की उत्पादकता, प्रजनन क्षमता तथा पूर्व संतानों के प्रदर्शन को भी ध्यान में रखना चाहिए। आकर्षक दिखने वाला बकरा आवश्यक नहीं कि आनुवंशिक रूप से भी श्रेष्ठ हो।

मादा बकरियों का चयन: अच्छी मादा बकरी झुंड की उत्पादन क्षमता को लंबे समय तक बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रजनन के लिए ऐसी बकरियों का चयन किया जाना चाहिए जिनकी वृद्धि अच्छी हो, वे समय पर यौवन प्राप्त करें, नियमित मदकृष्ट प्रदर्शित करें, आसानी से गर्भधारण करें और स्वस्थ बच्चों को जन्म दें। मादा में अच्छी मातृत्व क्षमता, पर्याप्त दुध उत्पादन, स्वस्थ थन और सामान्य रूप से विकसित एवं कार्यशील होना भी आवश्यक है। जिन बकरियों में बार-बार गर्भधारण में असफलता, कमजोर बच्चों का जन्म, खराब मातृत्व व्यवहार या गंभीर प्रजनन संबंधी समस्याएँ दिखाई दें, उन्हें प्रजनन समूह से हटाने पर विचार करना चाहिए।

बकरी पालन में प्रजनन प्रबंधन: अधिक उत्पादन और बेहतर लाभ की वैज्ञानिक कुंजी

पहली बार प्रजनन: उम्र से अधिक महत्वपूर्ण है शारीरिक विकास: बकरी को केवल उम्र के आधार पर पहली बार गर्भित नहीं कराना चाहिए। उसका शरीर पर्याप्त रूप से विकसित और प्रजनन के लिए सक्षम होना चाहिए। बहुत कम उम्र या कम शरीर भार वाली बकरी को गर्भित कराने से उसके स्वयं के शारीरिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है तथा कमजोर बच्चे पैदा होने की संभावना बढ़ सकती है। इसलिए पहली बार प्रजनन का निर्णय नस्ल, शरीर भार, शारीरिक परिपक्वता, पोषण स्थिति और स्थानीय उत्पादन प्रणाली को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

मद या हीट की पहचान: सफल प्रजनन के लिए मद की सही पहचान अत्यंत आवश्यक है। बकरी का मदचक्र सामान्यतः लगभग 21 दिनों का होता है, हालांकि व्यक्तिगत एवं नस्लीय अंतर पाए जा सकते हैं। मद के दौरान बकरी में बेचैनी, बार-बार पूँछ हिलाना, अधिक आवाज करना, दूसरे पशुओं पर चढ़ने या बकरे के पास जाने की प्रवृत्ति, भ्रम या सूजी हुई योनि तथा पारदर्शी श्लेष्मा का स्राव जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। किसी भी झुंड में मद की पहचान के लिए सुबह और शाम नियमित निरीक्षण करना उपयोगी होता है। संगठित फार्मों में टीजर बकरे का भी उपयोग किया जा सकता है।

अनियंत्रित नहीं, नियोजित प्रजनन: कई छोटे फार्मों में बकरे को पूरे वर्ष मादा बकरियों के साथ खुला छोड़ दिया जाता है। इससे गर्भधारण तो हो सकता है, लेकिन वैज्ञानिक प्रजनन प्रबंधन संभव नहीं हो पाता। किस बकरे से कौन-सा बच्चा पैदा हुआ, यह पता नहीं चलता और निकट संबंधी पशुओं के बीच अनजाने में संकरण की संभावना भी बढ़ जाती है। इसके स्थान पर नियंत्रित प्राकृतिक प्रजनन अपनाया अधिक उपयोगी है। चयनित बकरे को निर्धारित अवधि के लिए चुनी हुई मादाओं के समूह के साथ रखा जा सकता है और प्रजनन की तिथियों का रिकॉर्ड बनाया जा सकता है। इससे बच्चों की वंशवली, जन्म का समय और भविष्य के चयन संबंधी निर्णय अधिक सटीक हो जाते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान की भूमिका: कृत्रिम गर्भाधान आधुनिक आनुवंशिक सुधार का एक उपयोगी साधन है। इसके माध्यम से उत्कृष्ट आनुवंशिक क्षमता वाले बकरों के वीर्य का उपयोग बड़ी संख्या में मादा बकरियों में किया जा सकता है, जिससे श्रेष्ठ आनुवंशिकी का तेजी से प्रसार संभव होता है। हालांकि, कृत्रिम गर्भाधान के लिए मद की सही पहचान, वीर्य का उचित संरक्षण एवं प्रबंधन, सही समय पर गर्भाधान तथा प्रशिक्षित तकनीकी विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। इसलिए इसका उपयोग विशेष रूप से संगठित प्रजनन कार्यक्रमों और उन्नत बकरी फार्मों में अधिक प्रभावी हो सकता है।

अंतःप्रजनन से बचाव: छोटे झुंडों में अंतःप्रजनन (Inbreeding) एक गंभीर लेकिन अक्सर उपेक्षित समस्या है। जब निकट संबंधी पशुओं के बीच बार-बार प्रजनन होता है, तो हानिकारक अप्रभावी जीनों के एक साथ आने की संभावना बढ़ती है। इसके परिणामस्वरूप प्रजनन क्षमता, वृद्धि, बच्चों के जीवित रहने और समग्र उत्पादकता में कमी आ सकती है। इस समस्या से बचने हेतु प्रत्येक पशु की पहचान संख्या, माता-पिता तथा प्रजनन संबंधी जानकारी दर्ज करनी चाहिए। समय-समय पर प्रजनन बकरे को बदलना और बाहरी श्रेष्ठ बकरे का उपयोग करना व्यावहारिक उपाय हो सकते हैं।

पोषण और प्रजनन का गहरा संबंध: उत्तम आनुवंशिकी तभी अभिव्यक्त होगी जब पशु को पर्याप्त पोषण मिले। कम पोषण वाली मादा

में मद की तीव्रता कम हो सकती है, गर्भधारण प्रभावित हो सकता है तथा भ्रूण और नवजात बच्चे के विकास पर असर पड़ सकता है। प्रजनन से पहले मादा बकरियों को उनकी आवश्यकता के अनुसार अतिरिक्त पोषण देना, जिसे फ्लशिंग (Flushing) कहा जाता है, विशेषकर कमजोर पोषण वाली परिस्थितियों में प्रजनन प्रदर्शन सुधारने में सहायक हो सकता है। इसके साथ पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन और स्वच्छ पानी की उपलब्धता आवश्यक है।

गर्भावस्था और प्रसव प्रबंधन: गर्भधारण के बाद मादा की विशेष देखभाल आवश्यक है। गर्भावस्था के अंतिम चरण में भ्रूण की वृद्धि तेजी से होती है, इसलिए इस अवधि में पोषण की आवश्यकता बढ़ जाती है। गर्भवती बकरी को संतुलित आहार, स्वच्छ पानी, पर्याप्त विश्राम तथा उपयुक्त स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करनी चाहिए। प्रसव से पहले स्वच्छ, सूखा और हवादार स्थान उपलब्ध कराना चाहिए। बच्चे के जन्म के तुरंत बाद पर्याप्त मात्रा में खीस (Colostrum) मिलना उसके जीवन और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। नवजात बच्चे को जन्म के बाद शीघ्र खीस पिलाना चाहिए और उसकी सक्रियता, दूध पीने की क्षमता तथा नाभि की स्थिति पर निगरानी रखनी चाहिए।

रिकॉर्ड-रखरखाव: आनुवंशिक सुधार की रीढ़: वैज्ञानिक बकरी पालन में रिकॉर्ड रखना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अच्छा पशु रखना। प्रत्येक बकरी और बकरे को एक विशिष्ट पहचान संख्या दी जानी चाहिए। रिकॉर्ड में जन्म तिथि, माता-पिता, जन्म के समय बच्चों की संख्या, शरीर भार, प्रजनन तिथि, गर्भधारण, प्रसव तिथि, बच्चों की संख्या, बच्चों की मृत्यु या जीवित रहने की जानकारी तथा प्रमुख रोगों का विवरण रखा जा सकता है। इन रिकॉर्डों के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि कौन-सी बकरी वास्तव में बेहतर संतान पैदा कर रही है और कौन-सा बकरा आनुवंशिक सुधार में उपयोगी है।

बेहतर बच्चों का चयन: हर पैदा हुए बच्चे को भविष्य का प्रजनक बनाए रखना उचित नहीं है। भविष्य के लिए उन्हीं नर और मादा बच्चों का चयन किया जाना चाहिए जिनमें बेहतर वृद्धि, स्वस्थ शरीर संरचना, अच्छी प्रजनन क्षमता, उच्च जीवित रहने की क्षमता और वांछित उत्पादन गुण दिखाई देते हों। आधुनिक पशु आनुवंशिकी में पर्याप्त रिकॉर्ड उपलब्ध होने पर Estimated Breeding Value (EBV), Selection Index और अन्य आनुवंशिक मूल्यांकन विधियों का उपयोग करके अधिक सटीक चयन किया जा सकता है। भविष्य में जीनोमिक तकनीकें भी बकरी के आनुवंशिक सुधार को और अधिक गति दे सकती हैं।

निष्कर्ष: बकरी पालन में सफलता केवल अधिक बकरियाँ पालने में नहीं, बल्कि बेहतर बकरियाँ तैयार करने में है। श्रेष्ठ प्रजनक नर एवं मादा का चयन, सही समय पर मद की पहचान, नियंत्रित प्रजनन, अंतःप्रजनन से बचाव, संतुलित पोषण, गर्भावस्था एवं प्रसव की उचित देखभाल तथा वैज्ञानिक रिकॉर्ड-रखरखाव मिलकर एक मजबूत प्रजनन कार्यक्रम तैयार करते हैं। आज के समय में बकरी पालन को पारंपरिक पशुपालन से लाभदायक व्यावसायिक उद्यम में बदलने के लिए “संख्या बढ़ाने” के बजाय “गुणवत्ता सुधारने” पर ध्यान देना आवश्यक है। श्रेष्ठ आनुवंशिकी + बेहतर पोषण + अच्छा स्वास्थ्य + नियोजित प्रजनन + सही रिकॉर्ड = अधिक उत्पादक और लाभदायक बकरी पालन। अतः प्रत्येक बकरी पालक का लक्ष्य होना चाहिए—आज सही प्रजनन निर्णय लेकर आने वाली पीढ़ी को बेहतर बनाना।



शैलेन्द्र सिंह, डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा,
डॉ. नवलसिंह रावत, डॉ. निर्मला जमरा
पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा
एवं पशुपालन महाविद्यालय महु (म.प्र.)

भारत में मुर्गीपालन एक तेजी से बढ़ता हुआ

व्यवसाय है और इससे

लोगों को काफी मुनाफा भी मिलता है। एक व्यक्ति ब्रॉयलर चूजे पालकर शीघ्र अतिशीघ्र मुनाफा कमाना शुरू कर सकता है, किन्तु ब्रॉयलर के पालन में मुख्य: वैज्ञानिक तरह से देखभाल, आहार, टिकाकरण व जैव विविध आदि का ध्यान देना

अति आवश्यक है, परंतु, लोग ब्रॉयलर आहार पर कुछ विशेष ध्यान नहीं देते जिससे कि उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ जाता है।

ब्रॉयलर पालन में आहार प्रबंधन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि मुर्गियों पालन में कुल लागत का 70 प्रतिशत से अधिक हिस्सा दाने पर खर्च होता है। ब्रॉयलर मुर्गियों में तेज वृद्धि, अच्छा शारीरिक विकास और कम खर्च में अधिक मांस उत्पादन के लिए संतुलित आहार का महत्वपूर्ण योगदान है। ब्रॉयलर फार्मिंग में मुर्गियों को केवल अधिक मात्रा में दाना देना पर्याप्त नहीं होता, बल्कि मुर्गियों की उम्र, आनुवांशिक क्षमता और बाजार की मांग के अनुसार सही पोषक तत्वों वाला आहार देना भी आवश्यक होता है। ब्रॉयलर के आहार में उपलब्ध पोषक तत्वों का संतुलन और उनकी पाचनशीलता भी महत्वपूर्ण है। सही और संतुलित आहार से चूजों का वजन तेजी से बढ़ता है और बीमारियां कम होती हैं।

उम्र के अनुसार आहार देना

ब्रॉयलर की पोषण संबंधी आवश्यकताएँ उम्र के साथ बदलती रहती हैं, जैसे जैसे उम्र बढ़ती है। वैसे वैसे दाने का प्रकार, दाने की मात्रा और दाने में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा बदलती है, इसलिए पूरे समय एक ही प्रकार का आहार देने से ब्रॉयलर्स की वृद्धि दर और मांसपेशियों के विकास में कमी देखने को मिल सकती है। इसी कारण ब्रॉयलर्स में उम्र और विकास के आधार पर अलग-अलग चरणों के अनुसार आहार दिया जाता है। सामान्य रूप से ब्रॉयलर्स में प्री स्टार्टर, स्टार्टर और फिनिशर आहार कार्यक्रम का उपयोग किया जाता है।

ब्रॉयलर फार्मिंग में आहार प्रबंधन

प्री स्टार्टर आहार

प्री स्टार्टर को शुरूआती 07 दिनों तक दिया जाता है। छोटे चूजों को शुरू के तीन दिन अखबार को बिछाकर उसपर आहार दिया जाना चाहिए



जिससे वह दाने को पहचान सके, साथ ही दाने के बर्तन में भी आहार देने की शुरूवात करना चाहिए। दाने के बर्तन को 2/3 हिस्सा भरना चाहिए। छोटे चूजों में पाचन तंत्र पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता, इसलिए यह आहार आसानी से पचने वाले और उचित पोषक तत्वों से युक्त होता है। यह चूजों के शुरूआती विकास और प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए जरूरी है इसमें लगभग 22-24 प्रतिशत प्रोटीन होना चाहिए।

स्टार्टर आहार

स्टार्टर आहार का मुख्य उद्देश्य चूजों में अच्छी खाने की मात्रा, अंगों का उचित विकास और शुरूआत में होने वाली तेजी से वृद्धि को समर्थन देना है। इसमें

लगभग 20-22 प्रतिशत प्रोटीन होना चाहिए और यह 08-21 वें दिन तक दिया जाना चाहिए। यहां किसानों को विशेष ध्यान रखना होगा कि सभी चूजे दाने तक आसानी से पहुंच पा रहे हैं या नहीं, और दाना ताजा और अच्छी गुणवत्ता का हो।

फिनिशर आहार

यह आहार 22 वें दिन से बाजार में बेचने तक दिया जाता है। इस चरण में ब्रॉयलर्स की शारीरिक संरचना में तेजी से बदलाव होते हैं और इस अवस्था में ब्रॉयलर्स सबसे ज्यादा आहार खाते हैं। यह आहार मुर्गियों का वजन तेजी से बढ़ाने में उपयोगी है। इस आहार में 18-20 प्रतिशत प्रोटीन होना चाहिए।

आहार घटक	प्री स्टार्टर	स्टार्टर	फिनिशर
मक्का	50-55	58-62	60-65
सोयाबीन खली	28-32	22-26	18-22
गेहू के चोकर	3-5	5-8	8-12
सोयाबीन तेल	3-4	4-5	3-4
मछली तेल	3-5	-	-
डुना पत्थर	1.2-1.4	1.0-1.2	1
खनिज	0.5	0.5	0.5
अमीनों अम्ल	0.25-0.35	0.2-0.3	0.15-0.25

आहार की गुणवत्ता पर ध्यान दें

ब्रॉयलर्स में तेजी से वृद्धि एवं विकास के लिए उचित खाद्य प्रणाली के साथ-साथ दाने की अच्छी गुणवत्ता का भी ध्यान रखना चाहिए। अगर दाने को सही तरीके से सूखी, साफ और हवादार जगह पर नहीं रखा गया तो दाने में अत्यधिक नमी और फफूंद से दाने की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

दिनेश शिवहरे

Mob. : 98263-55396

मध्य प्रदेश का पहला

श्री दयाल बन्धु केन्द्र

(हिनौतिया वालों की दुकान)

सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता

गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)

E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66@yahoo.com



मोबाइल आधारित कृषि सेवाओं के उपयोग से आत्मनिर्भर होता किसान

रक्षा तिवारी एम एससी (कृषि विस्तार शिक्षा)
एम.जी.सी.जी.वी., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

प्रमति मिश्रा एम एससी (कृषि विस्तार शिक्षा)
एम.जी.सी.जी.वी., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

डॉ. गोविंद सिंह भदौरिया विशेषज्ञ (नेटवर्क, वेब) एवं फैंकल्टी मेंबर, इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी संकाय, एम.जी.सी.जी.वी., चित्रकूट सतना (म.प्र.)

डॉ. योगेंद्र कुमार सिंह विभागाध्यक्ष, डिपार्टमेंट ऑफ टेक्नोलॉजी ट्रांसफर, कृषि संकाय, एम.जी.सी.जी.वी., चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

सारांश: मोबाइल एवं डिजिटल तकनीक के विस्तार ने कृषि क्षेत्र में सूचना, सलाह, बाजार और वित्तीय सेवाओं तक किसानों की पहुंच को पहले की अपेक्षा अधिक सरल एवं त्वरित बनाया है। मोबाइल आधारित कृषि सेवाओं के माध्यम से किसान मौसम की जानकारी, फसल उत्पादन संबंधी सलाह, कीट एवं रोग प्रबंधन, बाजार भाव, कृषि योजनाओं तथा वित्तीय सेवाओं से जुड़ी जानकारी समय पर प्राप्त कर सकते हैं। इससे किसानों की निर्णय लेने की क्षमता मजबूत होती है और वे कृषि संबंधी निर्णयों के लिए केवल पारंपरिक सूचना स्रोतों पर निर्भर नहीं रहते। बाजार संबंधी डिजिटल सेवाएँ किसानों को विभिन्न मंडियों एवं बाजारों के मूल्य की जानकारी देकर बेहतर विपणन निर्णय लेने में सहायता करती हैं, जबकि सरकारी डिजिटल सेवाएँ योजनाओं, सब्सिडी, ऋण एवं अन्य सुविधाओं तक पहुंच को आसान बनाती हैं। परिणामस्वरूप कृषि संसाधनों के अधिक प्रभावी उपयोग, उत्पादन एवं आय में सुधार तथा जोखिम प्रबंधन की संभावनाएं बढ़ती हैं। हालांकि, डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी, भाषा संबंधी बाधाएँ, तकनीकी जानकारी की कमी और विश्वसनीय डिजिटल सामग्री जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। इन चुनौतियों को दूर कर मोबाइल कृषि सेवाओं को स्थानीय भाषा, सरल तकनीक और किसान-केंद्रित दृष्टिकोण से विकसित किया जाए तो यह किसानों को अधिक सक्षम, सूचना संपन्न और आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

प्रस्तावना: पारंपरिक कृषि से डिजिटल कृषि की ओर बदलाव भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक ऐतिहासिक मोड़ है। चतुर्थ औद्योगिक क्रांति के दौर में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, स्मार्टफोन क्रांति और डिजिटल नेटवर्किंग ने कृषि क्षेत्र को एक नया वैज्ञानिक और व्यावसायिक आयाम प्रदान किया है। भारत में कृषि अब केवल पारंपरिक पद्धतियों तक सीमित न होकर एक डेटा संचालित और बहु-माध्यमिक तकनीक पर आधारित व्यवसाय में परिवर्तित हो रही है। इस तकनीकी रूपांतरण के मूल में मोबाइल आधारित कृषि सलाहकारी सेवाएँ हैं, जिन्होंने ज्ञान विषयगत को समाप्त कर छोटे एवं सीमांत किसानों को सीधे देश के वैज्ञानिक ज्ञान और राष्ट्रीय बाजार से जोड़ दिया है।

मोबाइल कृषि सेवाओं का अर्थ एवं विविध माध्यम: मोबाइल कृषि सेवाएँ उन सभी तकनीकी अवसर-संरचनाओं, डिजिटल एप्लिकेशंस, वेब पोर्टल्स, एसएमएस, आईवीआरएस और टेली-परामर्श तंत्रों का एक एकीकृत ढांचा हैं, जो किसानों को कृषि चक्र के प्रत्येक चरण में सटीक, समयबद्ध और वैज्ञानिक जानकारी प्रदान करती हैं। इसमें बुआई-पूर्व मृदा विश्लेषण से लेकर फसल सुरक्षा, सिंचाई प्रबंधन, मौसम अलर्ट, डिजिटल साख और कटाई के बाद मूल्य श्रृंखला तक की सुविधाएँ शामिल हैं। डिजिटल कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में

सूचना प्रसार हेतु विभिन्न तकनीकी माध्यमों का बहुस्तरीय उपयोग किया जा रहा है—

मोबाइल ऐप्स: किसान सुविधा, प्लांटिक्स, पूसा कृषि, मेघदूत, दामिनी-जीपीएस व इमेज एनालिटिक्स द्वारा कीट-रोग निदान, सटीक मौसम अलर्ट एवं मृदा स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी मिलती है।

वेब पोर्टल: Agmarknet, e-NAM, मृदा स्वास्थ्य कार्ड पोर्टल, किसान पोर्टल-देशभर की मंडियों के पारदर्शी भाव, राष्ट्रीय स्तर का डेटाबेस, वैज्ञानिक शोध पत्र एवं सरकारी दिशानिर्देश प्राप्त होते हैं।

एसएमएस / आईवीआरएस: mKisan पोर्टल, टेक्स्ट अलर्ट, वॉइस मैसेज सेवा- साधारण फीचर फोनधारकों हेतु स्थानीय भाषाओं में मौसम-अनुकूल बुआई, सिंचाई एवं आपातकालीन अलर्ट आदि जानकारी मिलती है।

टेली-कॉलिंग: किसान कॉल सेंटर भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित ग्रामीण भारत में तकनीकी परामर्श का एक सशक्त आधार स्तंभ है। जिसका टोल फ्री नंबर-1800-180-1551 है, जो 22 से अधिक क्षेत्रीय भाषाओं में सीधे कृषि विशेषज्ञों द्वारा रियल-टाइम मौखिक समस्या समाधान हेतु सलाह के सातों दिन 24 घंटे उपलब्ध है, जो रियल टाइम समस्या के समाधान हेतु किफायती है।

किसानों की उंगलियों पर वैज्ञानिक सूचना: कृषि जोखिम प्रबंधन में सटीक जानकारी प्राथमिक आधार है। मोबाइल सेवाओं ने किसानों को पारंपरिक अनिश्चितता से निकालकर वैज्ञानिक निर्णय लेने में सक्षम बनाया है—

सटीक मौसम पूर्वानुमान एवं प्राकृतिक आपदा अलर्ट: 'मेघदूत' एवं 'दामिनी' जैसे एप्लिकेशंस और तात्कालिक एसएमएस अलर्ट्स के माध्यम से किसान चक्रवात, ओलावृष्टि या बिजली गिरने जैसी आपदाओं से फसलों व पशुधन का बचाव कर पाते हैं। जिससे आर्थिक छाती को काम किया जा सकता है।

इमेज एनालिटिक्स से फसल संरक्षण: 'प्लांटिक्स' जैसे ऐप्स पर किसान अपनी रोगग्रस्त फसल की फोटो अपलोड करते हैं, जहाँ AI एल्गोरिदम तुरंत रोग की पहचान कर उपयुक्त जैविक व रासायनिक उपचार सुझाता है।

सटीक कृषि तकनीक: 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' पोर्टल से मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म पोषक तत्वों की रिपोर्ट मिलती है, जिससे उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग रुकता है और लागत घटती है।

बाजार तक सीधी पहुंच: पारंपरिक कृषि विपणन में बिचौलियों की मौजूदगी और सूचना के अभाव में किसानों को सही मूल्य नहीं मिल पाता था। डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने इस स्थिति को पूरी तरह बदल दिया है—

e-NAM एवं Agmarknet पोर्टल: राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-नेम) ऐप के माध्यम से किसान देश की सैकड़ों मंडियों के वास्तविक समय के भाव ऑनलाइन देख सकते हैं और अपनी उपज को प्रतिस्पर्धी बोलियों पर बेच सकते हैं।

डायरेक्ट-टू-कंज्यूमर एग्री-स्टार्टअप्स: निजी एग्री-टेक एप्लिकेशंस किसानों को सीधे प्रसंस्करण उद्योगों, निर्यातकों और शहरी उपभोक्ताओं से जोड़ते हैं, जिससे मूल्य श्रृंखला सुदृढ़ होती है।

लॉजिस्टिक्स एकीकरण: 'किसान रथ' जैसे मोबाइल ऐप से किसान फसल परिवहन हेतु ट्रैक्टर, ट्रक व कंबाइन हार्वेस्टर की ऑनलाइन बुकिंग आसानी से कर सकते हैं। सरकारी योजनाओं एवं कृषि वित्तीय सेवाओं तक आसान पहुंच-साख तक सीधी पहुंच और पारदर्शी सरकारी सहायता किसान की वित्तीय स्वतंत्रता की पहली शर्त है—

डिजिटल किसान क्रेडिट कार्ड: 'जन समर्थ पोर्टल' और बैंक ऐप्स के माध्यम से किसान अब किसान क्रेडिट कार्ड (केसीसी) हेतु ऑनलाइन आवेदन, नवीनीकरण और क्रेडिट सीमा की जांच बिना बैंक के चक्र काटे कर सकते हैं।

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण: पीएम-किसान सम्मान निधि की किस्तें सीधे

किसानों के बैंक खातों में पहुंचती हैं, जिसकी स्थिति मोबाइल ऐप पर आसानी से ट्रैक की जा सकती है।

डिजिटल फसल बीमा: प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' ऐप के जरिए किसान फसल नुकसान की सूचना 72 घंटे के भीतर भू-टैग फोटो के साथ दर्ज कराकर पारदर्शी बीमा क्लेम प्राप्त कर सकते हैं। कृषि उत्पादकता, आय एवं किसान आत्मनिर्भरता—जब सूचना, बाजार और वित्तीय सुविधाएं किसान के मोबाइल में एकीकृत होती हैं, तो इसके दूरगामी आर्थिक परिणाम देखने को मिलते हैं—

उत्पादन लागत में 15-20% की कमी: सटीक उर्वरक, बीज एवं सिंचाई सलाह से संसाधनों की बर्बादी रुकती है।

सकल आय में 20-30% का सुधार: पारदर्शी मूल्य खोज और ई-नेम के उपयोग से किसानों को अपनी उपज के लिए बेहतर बाजार एवं प्रतिफल प्राप्त होता है। साहूकारों के शोषण चक्र का अंत: समय पर डिजिटल केसीसी और मोबाइल बैंकिंग द्वारा संस्थागत ऋण मिलने से किसान अनौपचारिक ब्याज के जाल से मुक्त हो रहे हैं। जो ग्रामीण क्षेत्रों में औपचारिक ऋण तक पहुंच को सरल बनाता है।

मोबाइल कृषि सेवाओं की प्रमुख चुनौतियाँ— इस डिजिटल क्रांति की असम संभावनाओं के बावजूद धरातल पर कुछ चुनौतियाँ विद्यमान हैं—

डिजिटल विभाजन: सुदूर ग्रामीण व जनजातीय क्षेत्रों में हार्ड-स्पीड 4जी/5जी इंटरनेट कनेक्टिविटी एवं नेटवर्क कवरेज की असमानता। जो ई-कृषि सेवाओं तक पहुंच को बाधित करता है।

स्मार्टफोन बनाम कीपैड फोन: देश के कई छोटे एवं वृद्ध किसानों के पास आज भी केवल साधारण कीपैड फोन हैं, जो समृद्ध विजुअल डेटा के उपयोग को सीमित करते हैं।

डिजिटल एवं तकनीकी साक्षरता: जटिल डिजिटल इंटरफेस, ऑनलाइन भुगतान प्रणालियों और साइबर सुरक्षा संबंधी जागरूकता की कमी, उपयोगी जानकारी तक पहुंच के अंतर को बढ़ाता है।

क्षेत्रीय भाषाई सामग्री का अभाव: कई उन्नत शोध और पोर्टल्स केवल अंग्रेजी या मानक हिंदी में उपलब्ध हैं, जबकि स्थानीय बोलियों में उच्च गुणवत्ता वाली सामग्री की आवश्यकता है।

भविष्य के अवसर—आगामी वर्षों में डिजिटल कृषि अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और स्वचालित रूप धारण करेगी—

कृत्रिम बुद्धिमत्ता व भाषिक मॉडल: भारत सरकार के 'भाषिणी' प्रोजेक्ट एवं एग्री-आई चैटबॉट्स के माध्यम से किसान अपनी स्थानीय बोली में बोलकर कृषि संबंधी समस्याओं के तुरंत समाधान पा सकेंगे।

ड्रोन एवं IOT का मोबाइल एकीकरण: किसान अपने मोबाइल ऐप्स से एग्री ड्रोन को नियंत्रित कर पोषक तत्वों के सटीक छिड़काव और भूमि मैपिंग जैसे आवश्यक कार्य कर सकते हैं। ब्लॉकचेन एवं ट्रेसिबिलिटी: खेत से थाली तक उत्पाद की गुणवत्ता और जैविक प्रमाणन का डिजिटल रिकॉर्ड रखकर निर्यात के नए अवसर सृजित होंगे।

निष्कर्ष: मोबाइल आधारित कृषि सेवाएं, किसान क्रेडिट कार्ड, एप्लिकेशंस, पोर्टल्स और किसान कॉल सेंटर केवल तकनीकी माध्यम मात्र नहीं हैं; ये भारतीय कृषि के पुनर्जागरण के मुख्य संवाहक हैं। डिजिटल तकनीक ने किसान को अनिश्चितता के दौर से निकालकर ज्ञान, बाजार और वित्त के केंद्र में स्थापित किया है। इन सेवाओं की पूर्ण सफलता हेतु ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियानों, स्थानीय भाषाई सामग्री और सुदृढ़ टेलीकॉम इंफ्रास्ट्रक्चर में निरंतर निवेश अनिवार्य है। जब देश का प्रत्येक किसान अपने मोबाइल के माध्यम से आत्मनिर्भर निर्णय लेने में सक्षम होगा, तभी 'आत्मनिर्भर कृषि' एवं 'आत्मनिर्भर भारत' का सपना पूर्ण रूप से साकार होगा।



ज्योति कहार (पीएचडी रिसर्च स्कॉलर)

हर्षिता मिश्रा (पीएचडी रिसर्च स्कॉलर)

एनआरएम विभाग/शस्य विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी
चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म.प्र.)

परिचय- मक्का (Zea mays L.) भारत एवं विश्व की सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसलों में से एक है। इसका उपयोग मानव भोजन, पशु आहार, स्टार्च उद्योग, एथेनॉल उत्पादन तथा विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। भारत में मक्का की उत्पादकता बढ़ाने के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन आवश्यक है। विशेष रूप से फॉस्फोरस की उपलब्धता अधिकांश भारतीय मिट्टियों में सीमित होती है क्योंकि यह मिट्टी में स्थिरीकृत (Fixed) हो जाता है। माइकोराइजा पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध स्थापित करने वाला लाभकारी कवक है। यह जड़ों के प्रभावी क्षेत्र (Root Surface Area) को कई गुना बढ़ा देता है, जिससे पौधे अधिक मात्रा में पोषक तत्व एवं जल ग्रहण कर पाते हैं। मक्का जैसी फसलों में Arbuscular Mycorrhizal Fungi (AMF) विशेष महत्व है क्योंकि यह फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने के साथ-साथ पौधों को जैविक एवं अजैविक तनावों से भी सुरक्षा प्रदान करता है।

माइकोराइजा क्या है?

माइकोराइजा दो शब्दों से मिलकर बना है-

1. Myco = Fungus (कवक), 2. Rhiza = Root (जड़)

अर्थात् यह पौधों की जड़ों और लाभकारी कवकों के बीच सहजीवी संबंध है जिसमें पौधे कवक को कार्बोहाइड्रेट प्रदान करते हैं तथा कवक पौधे को जल एवं पोषक तत्व उपलब्ध कराता है।

A. मक्का में माइकोराइजा का महत्व

1. **फॉस्फोरस अवशोषण में वृद्धि-** फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ाता है। स्थिरीकृत फॉस्फोरस को घुलनशील रूप में परिवर्तित करने में सहायता करता है। रासायनिक फॉस्फेट उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है।

2. **सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता-** माइकोराइजा निम्न पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ाता है- जिंक (Zn), कॉपर (Cu), आयरन (Fe), मैंगनीज (Mn)

3. **जल अवशोषण क्षमता में वृद्धि-** माइकोराइजा की हाइफा (Hyphae) मिट्टी में दूर तक फैलकर जल का अवशोषण करती हैं जिससे- * सूखे की स्थिति में पौधे अधिक समय तक जीवित रहते हैं। * सिंचाई जल उपयोग दक्षता बढ़ती है।

4. **जड़ों का बेहतर विकास** * जड़ों की लंबाई बढ़ती है। * जड़ों की शाखाएँ अधिक बनती हैं। * पौधे मजबूत बनते हैं।

5. **पौध वृद्धि में सुधार** - माइकोराइजा जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाकर पोषक तत्वों, विशेषकर फॉस्फोरस (P), का अवशोषण बढ़ाता है, जिससे जड़ एवं पौध वृद्धि बेहतर होती है। माइकोराइजा के कारण- पौध ऊँचाई बढ़ती है। * पत्तियों का क्षेत्रफल बढ़ता है। * क्लोरोफिल की मात्रा अधिक होती है। * प्रकाश संश्लेषण की दर बढ़ती है।

6. **मृदा स्वास्थ्य में सुधार-** माइकोराइजा मृदा संरचना, पोषक तत्वों की उपलब्धता और जैविक गतिविधि को बढ़ाकर मृदा स्वास्थ्य में सुधार करता है।

माइकोराइजा- * मृदा संरचना को बेहतर बनाता है। * ग्लोमालिन (Glomalin) का उत्पादन करता है। * मृदा कार्बन संचयन में सहायता

मक्का की उन्नत खेती में माइकोराइजा का महत्व एवं लाभ

करता है। * मृदा अपरदन कम करता है।

7. **रोग प्रतिरोधक क्षमता-** माइकोराइजा कई मृदाजनित रोगों के प्रभाव को कम करने में सहायक पाया गया है।

8. **उर्वरक उपयोग दक्षता-** माइकोराइजा पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाकर उर्वरकों की उपयोग दक्षता (NUE/PUE) में सुधार करता है, जिससे कम उर्वरक में बेहतर पौध वृद्धि और उपज प्राप्त होती है।

* फॉस्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ती है। * उर्वरकों की बर्बादी कम होती है। * उत्पादन लागत घटती है।

9. **पर्यावरण संरक्षण-** माइकोराइजा रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम करके, मृदा जैव-विविधता बढ़ाकर और पोषक तत्वों के बेहतर उपयोग में मदद करता है।

* रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम होता है। * जल प्रदूषण घटता है। * ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करने में अप्रत्यक्ष योगदान देता है।

लाभ	प्रभाव
फॉस्फोरस अवशोषण	20-60% तक वृद्धि (मृदा एवं सूक्ष्म प्रजाति पर निर्भर)
जड़ वृद्धि	बेहतर जड़ विकास
पौध वृद्धि	अधिक ऊँचाई एवं जैवभार
सूखा सहनशीलता	जल उपयोग दक्षता में सुधार
पोषक तत्व	Zn, Cu, Fe का बेहतर अवशोषण
उपज	सामान्यतः 10-25% तक वृद्धि (परिस्थितियों के अनुसार)
उर्वरक दक्षता	P उर्वरक की आवश्यकता में कमी
मृदा स्वास्थ्य	ग्लोमालिन उत्पादन एवं संरचना में सुधार

नोट- उपज एवं पोषक तत्वों में वृद्धि का स्तर मृदा प्रकार, जलवायु, AMF प्रजाति, फसल प्रबंधन तथा उर्वरक प्रबंधन पर निर्भर करता है।

B. मक्का में माइकोराइजा के उपयोग की विधि

1. **बीज उपचार** * 8-10 g माइकोराइजा कल्चर प्रति किलोग्राम बीज।



2. **मृदा प्रयोग** * 4-5 kg माइकोराइजा कल्चर को 100-200 kg अच्छी सड़ी गोबर की खाद/वर्मी कम्पोस्ट में मिलाकर प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय दें।

3. **जड़ उपचार** * पौधरोपण वाली परिस्थितियों में जड़ों को माइकोराइजा घोल में डुबोकर रोपण किया जा सकता है।

6. **माइकोराइजा के उपयोग में सावधानियाँ**

* उच्च मात्रा में फॉस्फोरस उर्वरक का प्रयोग न करें।

* रासायनिक फफूंदनाशकों का प्रयोग माइकोराइजा के साथ एक साथ न करें।

* जैव उर्वरक को धूप से बचाकर रखें।

* समाप्ति तिथि (Expiry Date) अवश्य देखें।

* नमीयुक्त मिट्टी में उपयोग अधिक प्रभावी रहता है।

निष्कर्ष- माइकोराइजा मक्का की उन्नत एवं टिकाऊ खेती के लिए एक प्रभावी जैविक तकनीक है। यह पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध स्थापित कर फॉस्फोरस तथा अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है, जल उपयोग दक्षता में सुधार करता है तथा पौधों को सूखा एवं मृदा जनित तनावों से उबरने में सहायता करता है। इसके उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, उत्पादन लागत घटती है और मृदा स्वास्थ्य में दीर्घकालिक सुधार होता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (INM) के साथ माइकोराइजा का समुचित उपयोग मक्का की उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और सतत कृषि को भी बढ़ावा देता है।



शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर बानी)

99267-31867, 83055-69923

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता



हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।

पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, उबरा ग्वालियर (म.प्र.)



स्वस्थ बकरी, समृद्ध किसान : बेहतर रखरखाव एवं रोगों से बचाव

डॉ. संध्या आनंद, डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, डॉ. अमिता तिवारी

डॉ. बृजेश सिंह, डॉ. शिल्पा गज्जभिये, डॉ. शशि प्रधान

डॉ. अर्पणा रैकवार, डॉ. रणवीर जाटव, डॉ. शिवांगी शर्मा, डॉ. तनु शर्मा

पशु चिकित्सा विभाग, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूमिका: बकरियों को स्वस्थ रखने हेतु केवल रोग होने के बाद उपचार करना पर्याप्त नहीं है। स्वच्छ आवास, संतुलित आहार, स्वच्छ पेयजल, नियमित टीकाकरण, समय-समय पर कृमिनाशन तथा बीमार पशुओं को अलग रखना रोगों की रोकथाम के महत्वपूर्ण आधार हैं। उचित प्रबंधन से न केवल संक्रामक रोगों का खतरा कम होता है, बल्कि बकरियों की वृद्धि, प्रजनन क्षमता और उत्पादन में भी सुधार होता है।

सूखा, साफ और हवादार हो बकरी का आवास: बकरियों का आवास हमेशा साफ, सूखा और पर्याप्त हवादार होना चाहिए। फर्श पर पानी या मूत्र जमा नहीं होने देना चाहिए और गीली बिछावन को नियमित रूप से हटाकर सूखी बिछावन डालनी चाहिए। विशेषकर बारिश के समय बाड़े में नमी और कीचड़ जमा होने से खुर संबंधी समस्याओं तथा संक्रमण का खतरा बढ़ सकता है। बकरियों को लगातार गीली जमीन पर रखने के बजाय ऐसा स्थान उपलब्ध कराना चाहिए जहां वे आराम से सूखी जगह पर बैठ और खड़ी हो सकें। बाड़े में पर्याप्त प्रकाश और वायु का आवागमन होना चाहिए, लेकिन पशुओं को सीधे तेज ठंडी हवा या बारिश से बचाना भी आवश्यक है। अत्यधिक भीड़भाड़ से बचना चाहिए, क्योंकि अधिक पशु एक ही स्थान पर रखने से संक्रमण के फैलने की संभावना बढ़ सकती है।

स्वच्छता से कम होगा संक्रमण का खतरा: बकरी के बाड़े, फीड और पानी के बर्तनों की नियमित सफाई करना आवश्यक है। चारा जमीन पर डालने के बजाय साफ पात्र में देना अधिक उचित है। सड़ा हुआ, फफूंद लगा या दूषित चारा पशुओं को नहीं देना चाहिए। पीने का पानी स्वच्छ एवं ताजा होना चाहिए तथा पानी के बर्तनों में गंदगी और शैवाल जमा नहीं होने देना चाहिए। बाड़े से गोबर और गंदगी को नियमित रूप से हटाना चाहिए। बारिश के समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बाड़े के आसपास पानी जमा न हो। स्वच्छ वातावरण पशुओं को अनेक संक्रामक रोगों से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संतुलित आहार और अचानक आहार परिवर्तन से बचाव: बकरियों को उनकी आयु, शरीर की स्थिति, गर्भावस्था तथा दुग्ध उत्पादन के अनुसार संतुलित आहार देना चाहिए। हरा चारा, सूखा चारा तथा आवश्यकतानुसार दाना संतुलित मात्रा में दिया जाना चाहिए। आहार में अचानक बहुत अधिक मात्रा में दाना या आसानी से पचने वाला चारा शामिल करने से पाचन संबंधी समस्याओं और एंटेरोटॉक्सिमिया का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए किसी भी नए आहार को धीरे-धीरे पुराने आहार में शामिल करना बेहतर होता है। खनिज मिश्रण और आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता भी पशु के सामान्य स्वास्थ्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए महत्वपूर्ण है।

स्वच्छ पानी हर समय उपलब्ध रहे: बकरियों के लिए स्वच्छ एवं पर्याप्त मात्रा में पेयजल हर समय उपलब्ध होना चाहिए। गर्मी या अधिक सक्रियता के समय पानी की आवश्यकता बढ़ सकती है। दूषित या लंबे समय से जमा पानी विभिन्न संक्रमणों का स्रोत बन सकता है। इसलिए पानी के पात्रों की नियमित सफाई और ताजा पानी उपलब्ध कराना आवश्यक है।

टीकाकरण- रोगों से बचाव की मजबूत ढाल: संक्रामक रोगों की रोकथाम में नियमित टीकाकरण का महत्वपूर्ण स्थान है। बकरियों में क्षेत्र एवं स्थानीय रोग-प्रचलन के अनुसार पशु चिकित्सक द्वारा टीकाकरण कार्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए। सामान्यतः बकरी पालन में PPR, FMD, Goat Pox, Enterotoxaemia तथा Haemorrhagic Septicaemia जैसे महत्वपूर्ण रोगों के विरुद्ध टीकाकरण पर ध्यान दिया जाता है।

बकरियों के लिए सामान्य टीकाकरण कार्यक्रम

रोग	सामान्यतः पहला टीकाकरण	पुनः टीकाकरण
PPR	लगभग 3-4 माह की आयु पर	स्थानीय/राष्ट्रीय कार्यक्रम के अनुसार बूस्टर या पुनः टीकाकरण (प्रत्येक 3 वर्ष)
FMD	लगभग 3-4 माह की आयु पर	सामान्यतः निर्धारित अंतराल पर पुनः टीकाकरण (प्रत्येक 6 माह)
Goat Pox	लगभग 3-4 माह की आयु पर	क्षेत्रीय कार्यक्रम के अनुसार वार्षिक/निर्धारित पुनः टीकाकरण
Enterotoxaemia	लगभग 3-4 माह की आयु पर	प्रारंभिक ब्रूखला के बाद नियमित बूस्टर वर्ष में एक बार (मानसून से पहले)
Haemorrhagic Septicaemia	लगभग 3-6 माह की आयु पर	सामान्यतः वार्षिक पुनः टीकाकरण वर्ष में एक बार (मानसून से पहले)

नोट- टीके की कंपनी, क्षेत्र में रोग की स्थिति, पशु की आयु तथा स्थानीय पशु-स्वास्थ्य कार्यक्रम के अनुसार समय-सारणी में अंतर हो सकता है। इसलिए अंतिम टीकाकरण कार्यक्रम स्थानीय पशु चिकित्सक/पशुपालन विभाग की सलाह के अनुसार निर्धारित करना चाहिए।

समय पर कृमिनाशन भी है जरूरी: बकरियों में आंतरिक परजीवी, विशेषकर जठरांत्र संबंधी कृमि, वृद्धि, वजन, रक्त की स्थिति और उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए केवल कैलेंडर के आधार पर बार-बार कृमिनाशक देना उचित नहीं है। क्षेत्र में प्रचलित परजीवी, पशु की उम्र, चराई की व्यवस्था और आवश्यकता के अनुसार पशु चिकित्सक की सलाह से fecal examination तथा targeted deworming करना अधिक प्रभावी तरीका है।

कृमिनाशन का सामान्य प्रबंधन: बच्चों और बढ़ती उम्र की बकरियों में परजीवी संक्रमण की निगरानी अधिक ध्यान से करनी चाहिए। जिन पशुओं में वजन कम होना, दस्त, कमजोरी, खुरदरा बाल, आंखों की श्लेष्मा का अत्यधिक पीला या सफेद होना अथवा शरीर की स्थिति में गिरावट जैसे संकेत दिखाई दें, उनमें परजीवी संक्रमण की जांच करानी चाहिए। दवा का चुनाव और मात्रा पशु के वजन तथा संबंधित परजीवी के अनुसार पशु चिकित्सक द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए।

पशु	कृमिनाशन
बच्चे	पहली बार 6-8 सप्ताह की आयु, फिर प्रत्येक 2-3 माह
वयस्क	प्रत्येक 3-4 माह
गर्भित बकरी	प्रसव से 2-4 सप्ताह पूर्व (पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार)
विशेष सलाह	मानसून शुरू होने से पहले एवं समाप्त होने के बाद कृमिनाशन करें

बार-बार एक ही कृमिनाशक का अनावश्यक उपयोग करने से दवा-प्रतिरोध की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसलिए सिर्फ आवश्यकता के अनुसार और उचित दवा का उपयोग करना अधिक वैज्ञानिक तरीका है।

नए पशु को सीधे झुंड में न मिलाएं: झुंड में नया पशु लाने पर उसे तुरंत अन्य बकरियों के साथ नहीं रखना चाहिए। नए पशु को कुछ समय अलग रखकर उसके स्वास्थ्य की निगरानी करना उचित है। इस दौरान उसके शरीर की स्थिति, भूख, मल, त्वचा, श्वसन तथा अन्य असामान्य लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए। आवश्यकता के अनुसार पशु चिकित्सक से जांच एवं आवश्यक परीक्षण कराए जा सकते हैं। यह कदम झुंड में पहले से मौजूद पशुओं तक किसी संक्रामक रोग के पहुंचने की संभावना को कम करने में मदद करता है।

बीमार पशु को तुरंत अलग करें: किसी बकरी में तेज बुखार, लगातार खांसी, दस्त, नाक या आंख से असामान्य स्राव, मुंह में घाव, त्वचा पर असामान्य घाव, लंगड़ापन या अचानक कमजोरी दिखाई देने पर उसे स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। बीमार पशु के लिए अलग पानी और चारा देने की व्यवस्था करना बेहतर होता है। एक ही झुंड में कई पशुओं के एक साथ बीमार होने पर स्वयं उपचार करने के बजाय तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए, क्योंकि कई संक्रामक रोग शुरुआती अवस्था में एक जैसे दिखाई दे सकते हैं।

खुरों की नियमित देखभाल: बकरियों के खुरों की नियमित जांच विशेष रूप से नम और कीचड़युक्त परिस्थितियों में करनी चाहिए। खुरों में फंसी गंदगी को साफ रखना और अत्यधिक बढ़े हुए खुरों की उचित trimming करना आवश्यक है। यदि पशु लंगड़ाकर चले, खुर के आसपास सूजन हो या दुर्गंधयुक्त स्राव दिखाई दे तो उसे सामान्य समस्या समझकर नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

धन और दुग्ध स्वच्छता पर दें विशेष ध्यान: दूध देने वाली बकरियों में धन की स्वच्छता का विशेष महत्व है। दुहने से पहले और बाद में धन की स्वच्छता बनाए रखनी चाहिए तथा गंदे हाथों या दूषित कपड़े से दुहाई नहीं करनी चाहिए। धन में सूजन, गर्माहट, दर्द या दूध के रंग एवं स्वरूप में बदलाव दिखाई देने पर पशु को तुरंत जांच के लिए पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए।

बारिश के मौसम में अतिरिक्त सावधानी: बारिश के समय बकरियों के आवास में नमी, पानी का जमाव और कीचड़ विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पशुओं को लंबे समय तक भीगने से बचना चाहिए और बाड़े में सूखी जगह उपलब्ध करानी चाहिए। हालांकि सभी रोग केवल बारिश के कारण नहीं होते, लेकिन नमी, गीली जमीन, तापमान में अचानक बदलाव और खराब स्वच्छता कुछ संक्रमणों तथा खुर संबंधी समस्याओं के जोखिम को बढ़ा सकते हैं। इसलिए इस मौसम में आवास की सफाई और सूखेपन पर विशेष ध्यान देना उपयोगी है।

नियमित स्वास्थ्य निगरानी बनाए रखें: हर दिन कुछ समय बकरियों के सामान्य व्यवहार और स्वास्थ्य को देखने में लगाना चाहिए। पशु का चारा खाना, पानी पीना, चलना, बैठना, जुगाली करना, मल-मूत्र त्याग तथा समूह के साथ सामान्य व्यवहार करना उसके स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण संकेत हैं। किसी पशु के व्यवहार में अचानक परिवर्तन दिखाई दे तो उसे नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।



डॉ. राखी गांगिल, डॉ. दीपक गांगिल
डॉ. जोयसी जोगी, डॉ. दलजीत छबरा
डॉ. रवि सिकरोडिया, डॉ. राकेश शारदा
पशु सूक्ष्मजीव विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु
विज्ञान महाविद्यालय महु- 453446 (म.प्र.)

दूधारु पशुओं में खुरपका- मुंहपका रोग: कारण एवं बचाव

खुरपका-मुंहपका रोग, जिसे अंग्रेजी में Foot-and-Mouth Disease (FMD) कहा जाता है, पशुओं में होने वाला अत्यंत संक्रामक विषाणुजनित रोग है। यह मुख्य रूप से गाय, भैंस, बैल, भेड़, बकरी और सूअर को प्रभावित करता है। रोग के कारण दूध उत्पादन, पशु की कार्यक्षमता, वजन बढ़ना और प्रजनन क्षमता प्रभावित होती है। वयस्क पशुओं में मृत्यु-दर सामान्यतः कम होती है, लेकिन छोटे बछड़ों, मेमनों और पाड़ों में हृदय की मांसपेशियों पर प्रभाव पड़ने से मृत्यु हो सकती है।

रोग का कारक- खुरपका-मुंहपका रोग का कारण फुट एंड माउथ डिजीज वायरस (FMDV) है। यह Picornaviridae कुल के Aphthovirus वंश का विषाणु है। इसके प्रमुख प्रतिजन प्रकार हैं—O, A, C, Asia1, SAT1, SAT2 और SAT3। इन प्रकारों के विरुद्ध प्रतिरक्षा एक-दूसरे से पूरी तरह सुरक्षा नहीं देती; इसलिए टीका उसी क्षेत्र में प्रचलित विषाणु प्रकारों के अनुरूप होना चाहिए। भारत में पशुओं के लिए टीकाकरण कार्यक्रम में प्रचलित विषाणु प्रकारों के विरुद्ध टीके का उपयोग किया जाता है। किसान को केवल पशु चिकित्सालय या अधिकृत पशु चिकित्सा कर्मी द्वारा लगाए गए टीके पर ही भरोसा करना चाहिए।

किन पशुओं में होता है?— यह रोग खुर वाले पालतू तथा जंगली पशुओं में फैल सकता है। विशेष रूप से निम्न पशु संवेदनशील होते हैं— * गाय, भैंस और बैल। * भेड़ और बकरी। * सूअर। * हिरण तथा अन्य जंगली खुरदार पशु। भेड़ और बकरियों में रोग के लक्षण कई बार हल्के दिखाई देते हैं, लेकिन वे संक्रमण फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संक्रमित पशु के संपर्क में आने वाले स्वस्थ पशु भी शीघ्र संक्रमित हो सकते हैं।

संक्रमण कैसे फैलता है?— रोग का विषाणु संक्रमित पशु के लार, नाक के स्राव, दूध, फफोलों के द्रव, गोबर और मूत्र में पाया जा सकता है। संक्रमण निम्न माध्यमों से फैलता है— * संक्रमित पशु के सीधे संपर्क से। * संक्रमित पशु के लार या स्राव से दूधित चारा, पानी और बर्तनों से। * पशु हाट, मेले, बाजार और सामूहिक चराई स्थलों से। * संक्रमित पशु के दूध, मांस, चमड़े, जूते, कपड़े या उपकरणों से। * पशु मालिक, व्यापारी, वाहन, रस्सी और दूध के बर्तनों के माध्यम से। * हवा के साथ, विशेषकर घनी पशु आबादी वाले क्षेत्रों में। * संक्रमित पशु को एक गांव से दूसरे गांव ले जाने पर। इसलिए किसी नए पशु को झुंड में शामिल करने से पहले उसे अलग रखना और उसका स्वास्थ्य परीक्षण कराना आवश्यक है।

रोग के प्रमुख लक्षण- रोग की उष्मायन अवधि सामान्यतः 2 से 14 दिन हो सकती है। प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं— 1. अचानक तेज बुखार आना। 2. पशु का चारा खाना और जुगाली करना कम कर देना। 3. अत्यधिक लार आना तथा मुंह से झाग निकलना। 4. जीभ, मसूढ़ों, होठों और मुंह के अंदर फफोले बनना। 5. खुरों के बीच तथा खुरों के ऊपर फफोले और घाव बनना। 6. चलने में कठिनाई तथा लंगड़ापन। 7. पशु का बार-बार पैर पटकना। 8. थनों और थनाओं पर फफोले बनना। 9. दूध उत्पादन में अचानक कमी।

10. छोटे बच्चों में कमजोरी, तेज सांस, गिरना और कभी-कभी अचानक मृत्यु।

फफोले फूटने के बाद लाल, कच्चे और दर्दनाक घाव बन जाते हैं। इन घावों में द्वितीयक जीवाणु संक्रमण होने पर पशु की स्थिति और खराब हो सकती है।

दूध और उत्पादन पर प्रभाव- खुरपका-मुंहपका रोग का सबसे बड़ा आर्थिक प्रभाव दूध उत्पादन में कमी के रूप में दिखाई देता है। प्रभावित पशु कई दिनों तक ठीक से खा नहीं पाता, जिससे शरीर कमजोर हो जाता है। पशु का वजन घट सकता है बैल की कार्यक्षमता कम हो सकती है और गर्भित पशुओं में गर्भपात या प्रजनन संबंधी समस्या हो सकती है। छोटे पशुओं में हृदय की मांसपेशियों में सूजन के कारण मृत्यु का खतरा अधिक रहता है। रोग से ठीक होने के बाद भी कुछ पशुओं में लंबे समय तक कमजोरी, खुरों की विकृति, दूध उत्पादन में स्थायी कमी या बांझपन जैसी समस्याएं रह सकती हैं।

रोग की पहचान- किसान निम्न लक्षणों के आधार पर रोग का संदेह कर सकते हैं— * बुखार के साथ मुंह और खुरों में फफोले। * एक से अधिक पशुओं में एक साथ लार आना और लंगड़ापन। * दूध उत्पादन में अचानक कमी। * पशु का चारा छोड़ देना। * थनों या खुरों में घाव बनना। हालांकि मुंह और खुरों में घाव अन्य रोगों में भी हो सकते हैं। इसलिए केवल देखकर निश्चित निदान नहीं करना चाहिए। रोग की पुष्टि के लिए पशु चिकित्सक द्वारा जांच और आवश्यकता पड़ने पर प्रयोगशाला परीक्षण कराया जाना चाहिए।

बचाव का सबसे प्रभावी उपाय- टीकाकरण खुरपका-मुंहपका रोग से बचाव के लिए समय पर टीकाकरण सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। भारत में राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत गाय, भैंस, भेड़, बकरी और सूअर जैसे संवेदनशील पशुओं का छह-छह महीने के अंतराल पर टीकाकरण किया जाता है।

किसान इन बातों का ध्यान रखें- * अपने क्षेत्र में चल रहे सरकारी टीकाकरण अभियान में सभी पात्र पशुओं को टीका लगावाएं। * टीकाकरण की तारीख पशु स्वास्थ्य कार्ड या रजिस्टर में दर्ज कराएं। * पहली बार टीका लगने वाले छोटे पशुओं में पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार प्रारंभिक टीकाकरण और बूस्टर डोज पूरी कराएं। * बीमार, अत्यधिक कमजोर या तेज बुखार वाले पशु को टीका लगाने से पहले पशु चिकित्सक से परामर्श लें। * टीका लगने के बाद पशु को अनावश्यक यात्रा, अत्यधिक श्रम और तनाव से बचाएं। * टीके को स्वयं खरीदकर या बिना प्रशिक्षित व्यक्ति से न लगवाएं। केंद्र सरकार के कार्यक्रमों में FMD टीकाकरण को राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों के लिए केंद्रीय सहायता के अंतर्गत रखा गया है।

जैव-सुरक्षा के उपाय- टीकाकरण के साथ-साथ पशुशाला में साफ-सफाई और जैव-सुरक्षा भी आवश्यक है।

- * नए खरीदे गए पशु को कम से कम 21 दिन अलग रखें।
- * नए पशु को झुंड में मिलाने से पहले पशु चिकित्सक से स्वास्थ्य परीक्षण कराएं।
- * पशु हाट, मेले या दूसरे गांव से लौटे पशु को तुरंत झुंड में न मिलाएं।

- * पशुशाला में बाहरी व्यक्तियों और वाहनों का प्रवेश सीमित रखें।
- * चारा, पानी की नांद और दूध के बर्तनों को नियमित रूप से साफ करें।
- * पशुओं के लिए अलग-अलग स्थानों पर रखे गए बर्तनों का उपयोग करें।
- * पशुशाला में भीड़ न होने दें और फर्श को सूखा रखें।
- * पशु खरीदते समय टीकाकरण और स्वास्थ्य रिकॉर्ड अवश्य देखें।
- * बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं के साथ चराने या पानी पिलाने न ले जाएं।
- * पशुओं को एक गांव से दूसरे गांव ले जाने से पहले पशु चिकित्सा अधिकारी की सलाह लें।

रोग दिखाई देने पर क्या करें?— यदि किसी पशु में मुंह में फफोले, अत्यधिक लार, लंगड़ापन या अचानक दूध कम होने जैसे लक्षण दिखाई दें, तो किसान को तुरंत ये कदम उठाने चाहिए— 1. बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग बांधें। 2. पशु को बाजार, मेले या चरागाह में न ले जाएं। 3. तुरंत निकटतम पशु चिकित्सक या पशु चिकित्सा अधिकारी को सूचना दें। 4. बीमार पशु के लिए अलग चारा, पानी की नांद और बर्तन रखें। 5. पशुशाला में आने-जाने वाले लोगों और उपकरणों को नियंत्रित करें। 6. संक्रमित पशु को बेचने, दूसरे स्थान पर भेजने या झुंड में मिलाने से बचें। 7. पशु के मुंह और खुर के घाव पर कोई तेज रसायन, मिट्टी का तेल, डीजल या बिना सलाह की दवा न लगाएं। 8. मृत पशु को खुले में न फेंकें; पशु चिकित्सक और स्थानीय प्रशासन के निर्देशों के अनुसार सुरक्षित निपटान करें।

सहायक उपचार- इस रोग का कोई ऐसा घरेलू उपचार नहीं है जो विषाणु को समाप्त कर दे। उपचार का उद्देश्य पशु को आराम देना, घावों को साफ रखना, दर्द और द्वितीयक संक्रमण को नियंत्रित करना तथा पर्याप्त पोषण देना है।

पशु चिकित्सक की सलाह से— * साफ और मुलायम चारा दें। * पर्याप्त स्वच्छ पानी उपलब्ध कराएं। * मुंह के घावों के कारण पशु को मुलायम या दलिया जैसा आहार दें। * खुरों और मुंह के घावों को साफ रखें। * पशु को सूखी, साफ और नरम जगह पर बांधें। * द्वितीयक जीवाणु संक्रमण होने पर पशु चिकित्सक द्वारा निर्धारित दवा दें। * लंगड़े पशु को लंबी दूरी तक चलाने या काम में लगाने से बचाएं। बिना सलाह के एंटीबायोटिक, दर्दनिवारक या घरेलू रसायनों का उपयोग नुकसानदायक हो सकता है।

निष्कर्ष- खुरपका-मुंहपका रोग पशुओं के स्वास्थ्य के साथ-साथ किसान की आय और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित करता है। इस रोग से बचाव उपचार से अधिक सरल और कम खर्चीला है। प्रत्येक किसान को अपने सभी पात्र पशुओं का समय पर टीकाकरण कराना चाहिए, नए पशुओं को अलग रखना चाहिए और रोग के लक्षण दिखाई देते ही पशु चिकित्सक को सूचना देनी चाहिए। सामूहिक टीकाकरण और गांव-स्तर पर जैव-सुरक्षा अपनाकर इस रोग के प्रसार को काफी हद तक रोका जा सकता है।



रवि सिकरोडिया, जोयसी जोगी
राखी गांगिल, दलजीत छाबड़ा, राकेश शारदा
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महु

मुर्गीपालन ग्रामीण परिवारों के लिए आय, रोजगार और पोषण सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन है। कम भूमि, कम प्रारंभिक निवेश और सीमित संसाधनों में भी मुर्गीपालन शुरू किया जा सकता है। मुर्गियों से प्राप्त अंडे और मांस परिवार की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ अतिरिक्त उत्पादन को बेचकर नियमित आमदनी का स्रोत बनते हैं। हालांकि, मुर्गीपालन की सफलता केवल अच्छी नस्ल और पर्याप्त आहार पर निर्भर नहीं करती, बल्कि स्वस्थ पक्षियों का पालन और रोगों से प्रभावी बचाव भी उतना ही आवश्यक है। मुर्गियों में संक्रामक रोग तेजी से फैल सकते हैं और कम समय में बड़ी संख्या में पक्षियों की बीमारी अथवा मृत्यु का कारण बन सकते हैं, जिससे किसान को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ सकता है। इसलिए मुर्गीघर की स्वच्छता, उचित जैव-सुरक्षा, संतुलित पोषण, नियमित स्वास्थ्य निगरानी तथा समय पर एवं उचित टीकाकरण को मुर्गीपालन प्रबंधन का अभिन्न हिस्सा बनाना चाहिए।

प्रमुख रोग एवं उनके लक्षण

मुर्गियों में विभिन्न विषाणुजनित, जीवाणुजनित तथा परजीवी रोग पाए जाते हैं, जो झुंड के स्वास्थ्य, वृद्धि और उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। इनमें न्यूकैसल रोग (रानीखेत), इन्फेक्सीअस बर्सल रोग (गम्बोरो), मारेक्स रोग, फाउल पॉक्स, इन्फेक्सीअस ब्रोंकाइटिस, इन्फेक्सीअस कोराइजा तथा साल्मोनेल्लोसिस प्रमुख हैं। इनके अलावा विभिन्न आंतरिक एवं बाह्य परजीवी भी मुर्गियों के स्वास्थ्य और उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। रोग की प्रारंभिक पहचान और समय पर नियंत्रण से पक्षियों की मृत्यु तथा आर्थिक नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

1. रानीखेत रोग

रानीखेत रोग मुर्गियों का एक अत्यंत संक्रामक रोग है, जो झुंड में तेजी से फैल सकता है। संक्रमित पक्षियों में सुस्ती, भूख में कमी, सांस लेने में कठिनाई, हरे रंग की दस्त तथा अचानक मृत्यु जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। कुछ मामलों में गर्दन का मुड़ना तथा तंत्रिका संबंधी लक्षण भी देखे जा सकते हैं। रोग के तेजी से फैलने की क्षमता के कारण संक्रमित पक्षियों को तुरंत अलग करना और उचित रोग नियंत्रण उपाय अपनाना आवश्यक है।

2. गम्बोरो रोग

गम्बोरो रोग मुख्यतः कम उम्र के चूजों में महत्वपूर्ण होता है। प्रभावित पक्षियों में सुस्ती, भूख में कमी, पंखों

मुर्गीपालन में रोग नियंत्रण एवं टीकाकरण

का फूला हुआ दिखाई देना तथा पानी जैसी दस्त देखी जा सकती है। गंभीर संक्रमण में मृत्यु भी हो सकती है। इस रोग का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि यह पक्षियों की प्रतिरक्षा क्षमता को कमजोर कर सकता है, जिससे वे अन्य संक्रमणों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

3. फाउल पॉक्स

फाउल पॉक्स में सामान्यतः कलगी, चेहरे तथा शरीर



पक्षियों को खुले में न फेंकें, बल्कि सुरक्षित तरीके से उनका निस्तारण करें।

रोग नियंत्रण के लिए स्वस्थ एवं टीकाकृत चूजों का विश्वसनीय स्रोत से चयन करें और नए पक्षियों को पुराने झुंड में शामिल करने से पहले कुछ समय अलग रखकर उनकी निगरानी करें। पक्षियों को उनकी आयु एवं उत्पादन अवस्था के अनुसार संतुलित आहार तथा स्वच्छ और ताजा पानी उपलब्ध कराएं। फफूंदयुक्त या खराब दाने का उपयोग न करें। यदि किसी पक्षी में बीमारी के लक्षण दिखाई दें तो उसे तुरंत स्वस्थ पक्षियों से अलग करें और पशुचिकित्सक से परामर्श लें। बिना सलाह के एंटीबायोटिक या अन्य दवाओं का उपयोग नहीं करना चाहिए, विशेषकर वायरल रोगों में एंटीबायोटिक प्रभावी उपचार नहीं हैं।

टीकाकरण रोगों से बचाव का

सबसे प्रभावी उपाय

मुर्गीपालन में संक्रामक रोगों से बचाव के लिए समय पर और सही तरीके से टीकाकरण सबसे महत्वपूर्ण उपायों में से एक है। टीका रोग होने के बाद उपचार के लिए नहीं, बल्कि रोग से पहले पक्षियों में विशिष्ट प्रतिरक्षा विकसित करने के लिए दिया जाता है। विशेष रूप से रानीखेत, गम्बोरो और फाउल पॉक्स जैसे रोगों के नियंत्रण में नियमित टीकाकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि, टीकाकरण को स्वच्छता, जैव-सुरक्षा, संतुलित पोषण और उचित आवास प्रबंधन के साथ अपनाना आवश्यक है।

टीकाकरण के दौरान महत्वपूर्ण सावधानियाँ

टीकाकरण स्वस्थ पक्षियों में ही किया जाना चाहिए। वैक्सीन को निर्माता के निर्देशानुसार उचित तापमान पर सुरक्षित रखें और उसकी कोल्ड-चेन बनाए रखें। एक्सपायर्ड, गलत तरीके से संग्रहित या क्षतिग्रस्त वैक्सीन का उपयोग न करें। वैक्सीन की मात्रा, घोलने की विधि तथा देने का मार्ग (जैसे आंख, नाक की बूंद, पीने के पानी या अन्य अनुशंसित विधि) संबंधित वैक्सीन के निर्देशों के अनुसार होना चाहिए।

टीकाकरण कार्यक्रम सभी फार्मों के लिए एक जैसा नहीं होता। यह पक्षियों की नस्ल, आयु, उत्पादन प्रणाली, क्षेत्र में प्रचलित रोग, मातृ-प्रतिरक्षी तथा फार्म के रोग-जोखिम के अनुसार बदल सकता है। इसलिए किसान को अपने क्षेत्र के पशु चिकित्सक की सलाह से फार्म के लिए उचित टीकाकरण कैलेंडर तैयार करना चाहिए।

किसान के लिए संदेश "समय पर टीकाकरण, सुरक्षित मुर्गीपालन की पहचान है।" टीकाकरण के साथ स्वच्छता और जैव-सुरक्षा के नियमों का पालन करने से रोगों के प्रकोप और आर्थिक नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

रोग नियंत्रण के प्रमुख उपाय

मुर्गियों को रोगों से सुरक्षित रखने के लिए जैव-सुरक्षा, स्वच्छता और उचित प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। मुर्गीघर में अनावश्यक लोगों एवं बाहरी वाहनों का प्रवेश सीमित रखें तथा प्रवेश से पहले हाथ-पैर और जूतों की सफाई करें। फुटबाथ की व्यवस्था करना उपयोगी है। अलग-अलग आयु के पक्षियों को अलग रखें और मुर्गीघर को साफ, सूखा एवं हवादार बनाए रखें। गीले बिछवन को समय पर बदलें तथा फीडर और पानी के बर्तनों की नियमित सफाई करें। मृत



डॉ. नवनीत मौर्य (सहायक प्रध्यापक)
सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट (म.प्र.)

प्रस्तावना

भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा कृषि उत्पादक देश है, जहाँ 55% आबादी आज भी कृषि पर निर्भर है। हमारे देश में नारा दिया गया- "आत्मनिर्भर भारत"। लेकिन आत्मनिर्भर भारत की नींव है - आत्मनिर्भर किसान। जब तक किसान आत्मनिर्भर नहीं होगा, गांव आत्मनिर्भर नहीं होगा और गांव आत्मनिर्भर नहीं होगा तो भारत आत्मनिर्भर नहीं हो सकता।

परम्परागत खेती में किसान पूरी तरह प्रकृति और किस्मत पर निर्भर था। अच्छी बारिश हुई तो फसल अच्छी, नहीं तो कर्ज। बैल, हल, हाथ से निराई और कम उत्पादन। लागत ज्यादा, मुनाफा कम। इसी चक्र में किसान पीढ़ियों से फंसा रहा।

आत्मनिर्भर किसान का अर्थ केवल ज्यादा पैसा कमाना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है - कम लागत में ज्यादा उत्पादन, प्रकृति का संरक्षण, बाजार से सीधा जुड़ाव और जोखिम को कम करना। एक आत्मनिर्भर किसान अब केवल अन्नदाता नहीं, बल्कि एक कृषि-वैज्ञानिक, एक उद्यमी और एक पर्यावरण रक्षक भी है।

परम्परागत सोच Vs वैज्ञानिक सोच- परम्परागत सोच वैज्ञानिक सोच और उसका लाभ बिना जांच के यूरिया, DAP डालना

मृदा स्वास्थ्य कार्ड (Soil Health Card): मिट्टी की जांच के बाद ही खाद। इससे 20-25% खाद की बचत और जमीन की सेहत अच्छी। एक ही खेत में हर साल धान लगाना।

फसल चक्र (Crop Rotation): धान के बाद चना/मटर/सरसों। इससे नाइट्रोजन बढ़ती है और कीट-रोग कम होते हैं। बीज को बिना उपचार के बोना।

बीज उपचार (Seed Treatment): Trichoderma और Rhizobium से उपचार। अंकुरण 90% तक और फफूंद रोगों से बचाव। कीट लगते ही तेज जहर छिड़कना

समेकित कीट प्रबंधन (IPM)

पहले पीले स्टिकी ट्रैप, नीम तेल, फिर जरूरत पर ही कीटनाशक। लागत 40% कम। जब किसान वैज्ञानिक सोच अपनाता है तो वह "जुगाड़" से "तकनीक" की ओर बढ़ता है।

* आत्मनिर्भर किसान की आधुनिक शक्तियां

डिजिटल कृषि (Digital Agriculture)

WhatsApp & YouTube: KVK वैज्ञानिक सीधे

आत्मनिर्भर किसान : आधुनिक तकनीक और वैज्ञानिक सोच की शक्ति

WhatsApp ग्रुप में सलाह भेजते हैं। YouTube पर "गेहूं में खरपतवार नियंत्रण कैसे करें" देखकर किसान तुरंत सीख जाता है।

App आधारित खेती- Kisan Suvidha App पर मौसम, mKisan पर मंडी भाव, IFFCO Kisan App



पर विशेषज्ञ से चैट।

e-NAM (राष्ट्रीय कृषि बाजार): अब किसान को अपनी फसल बेचने के लिए लोकल बिचौलिए पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। वह ऑनलाइन पूरे देश में अपनी बोली लगा सकता है।

बीज क्रांति- 1960 में गेहूं का उत्पादन 10 क्विंटल/एकड़ था, आज HD-3226, DBW-187 किस्मों से 25-28 क्विंटल/एकड़ तक। धान में MTU-1010, महामाया, स्वर्णा सब-1 जो बाढ़ में भी 15 दिन जिंदा रहती है।

कृषि यंत्रीकरण- छोटे आदिवासी किसानों के लिए ट्रैक्टर खरीदना मुश्किल है। इसलिए सरकार ने कस्टम हायरिंग सेंटर (CHC) खोले हैं। 500 रुपये में एक एकड़ जुताई। सीड ड्रिल से बुवाई में बीज की 30% बचत और लाइन से बुवाई होने से उत्पादन ज्यादा।

More Crop Per Drop: ड्रिप सिंचाई से 60% पानी की बचत होती है और खाद भी पानी के साथ सीधे जड़ तक जाती है (Fertigation)। टमाटर, मिर्च में यह तकनीक आय देगुनी कर रही है।

* **एकीकृत कृषि प्रणाली (IFS)** - जोखिम से मुक्ति का मंत्र

केवल धान-गेहूं पर निर्भर किसान कभी आत्मनिर्भर नहीं बन सकता। यदि बाढ़ आई या बाजार गिरा तो पूरा साल बर्बाद।

* **जैविक और प्राकृतिक खेती** - कम लागत, ज्यादा कीमत

रासायनिक खाद ने जमीन को बीमार कर दिया है। अब वैज्ञानिक सोच लौट रही है प्रकृति की ओर।

जीवामृत, घनजीवामृत, बीजामृत- गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन से बनता है। लागत लगभग शून्य।

वर्मीकम्पोस्ट- केचुआ खाद से जमीन की उर्वरा शक्ति 3 साल में दोगुनी। बाजार में जैविक धान का दाम सामान्य धान से 10-15 ₹/किलो ज्यादा मिलता है। इससे किसान आत्मनिर्भर बनता है, कंपनी पर नहीं।

किसान ड्रोन (Kisan Drone)- 10 मिनट में 1 एकड़ में दवा का छिड़काव। मजदूर नहीं मिल रहे, तो ड्रोन से काम। सरकार 50% सब्सिडी दे रही है।

AI से रोग पहचान- फसल की फोटो खींचो, AI App (जैसे Plantix) तुरंत बता देगा कौन सा रोग है और कौन सी दवा।

सैटेलाइट मैपिंग- इसरो किसानों को बता रहा है कि किस खेत में नमी कितनी है।

* सरकारी योजनाओं का वैज्ञानिक उपयोग
आत्मनिर्भर किसान सरकारी योजनाओं को भीख नहीं, बल्कि हथियार की तरह उपयोग करता है।

PM Kisan: बीज खरीदने में

KCC (किसान क्रेडिट कार्ड): साहूकार से मुक्ति

PM Fasal Bima Yojana: जोखिम से सुरक्षा

ATMA/KVK: ज्ञान का स्रोत

चुनौतियाँ और समाधान

डिजिटल डिवाइड: नेटवर्क नहीं, स्मार्टफोन नहीं, हिंदी में कंटेंट नहीं।

विश्वास की कमी: "ये YouTube वाली बातें हमारे खेत में नहीं चलेंगी" छोटी जोत और पूंजी की कमी।

जलवायु परिवर्तन: अनियमित बारिश। समाधान क्या है? (Extension Worker की भूमिका)

KVK को हर गांव में "डिजिटल चौपाल" लगानी चाहिए, जहां स्थानीय भाषा में वीडियो दिखाए जाएं। हर FPO में एक "युवा कृषि उद्यमी" तैयार करना जो ड्रोन चलाना, App चलाना जानता हो। भाषा में तकनीक-गोंडी, हल्की, छत्तीसगढ़ी में ऑडियो एडवाइजरी।

निष्कर्ष (Conclusion)

जब एक किसान अपने खेत की मिट्टी की जांच कराता है, YouTube पर नई तकनीक देखता है, ड्रिप से सिंचाई करता है, FPO के माध्यम से अपने उत्पाद का प्रसंस्करण करके बेचता है, तो वही सच्चा आत्मनिर्भर किसान है। वह अब सरकार या साहूकार पर निर्भर नहीं, बल्कि आत्मविश्वास से भरा है। तकनीक उसके हाथ में औजार है और वैज्ञानिक सोच उसकी आँखों में रोशनी। इसी रोशनी से भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा।



डॉ. याशिर आमीन राथेर कुक्कुट विज्ञान
विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन
महाविद्यालय, ना.दे.प.वि.वि. जबलपुर (म.प्र.)

डॉ. शानू सिंगौर पशु पोषण विभाग, पशु
चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय,
ना.दे.प.वि.वि. जबलपुर (म.प्र.)

भारत में प्रोटीन की मांग लगातार बढ़ रही है, जिसके चलते मल्टी-टास्किंग खेती अपनाने वाले किसानों के लिए पोल्ट्री फार्मिंग एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आई है। इस क्षेत्र से बेहतर आमदनी प्राप्त करने के लिए पोल्ट्री फार्म में बीमारियों का सही प्रबंधन, मुर्गियों का नियमित टीकाकरण और बाड़े की स्वच्छता बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, किसान मुर्गियों की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए किफायती और प्रभावी बायोसिक्योरिटी उपाय भी अपना सकते हैं।

जैव-सुरक्षा मूलतः उन सभी उपायों का समूह है, जिनका उद्देश्य मुर्गियों को रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों से सुरक्षित रखना है। इसके तहत ऐसे प्रबंध किए जाते हैं, जिससे बीमारी उत्पन्न करने वाले कीटाणु फार्म में प्रवेश न कर सकें और यदि मौजूद हों तो एक स्थान से दूसरे स्थान तक न फैलें। इन उपायों का लक्ष्य हानिकारक जीवाणुओं की संख्या को इतना कम करना होता है कि वे मुर्गियों में रोग उत्पन्न न कर सकें। इसलिए, जैव-सुरक्षा के प्रभावी उपायों को पोल्ट्री फार्म में हमेशा अपनाना चाहिए, न कि केवल रोग फैलने के समय ही।

जैव-सुरक्षा के लाभ

1. जैव-सुरक्षा उपायों को अपनाना, रोग फैलने के बाद इलाज करने की तुलना में अधिक किफायती होता है। इससे अनावश्यक खर्च कम होता है और आर्थिक नुकसान से बचाव होता है। नियमित रूप से इन उपायों को अपनाने से मुर्गियों को बीमारियों से सुरक्षित रखा जा सकता है।
2. जैव-सुरक्षा न केवल मुर्गियों के लिए, बल्कि मनुष्यों के लिए भी लाभकारी है। इससे रानीखेत, बर्ड फ्लू और साल्मोनेला जैसी बीमारियों के संक्रमण का खतरा कम हो जाता है।
3. इन उपायों को अपनाने से मुर्गी पालन व्यवसाय अधिक लाभदायक बनता है, क्योंकि बीमारियों की संभावना घटने से उत्पादन बेहतर होता है और मृत्यु दर कम होती है।

जैव-सुरक्षा के उपाय

मुर्गी फार्म में जैव-सुरक्षा को मुख्य रूप से दो भागों

जैव-सुरक्षा: मुर्गियों का प्रबंधन और उत्पादन

में विभाजित किया जाता है—

1. संरचनात्मक (Structural) जैव-सुरक्षा
2. संचालनात्मक (Operational) जैव-सुरक्षा

1. संरचनात्मक (S&B) जैव-सुरक्षा
इस प्रकार की जैव-सुरक्षा फार्म की बनावट, स्थान चयन और मुर्गी घर (शेड) के निर्माण से संबंधित होती है। इसके लिए निम्न बिंदुओं का ध्यान रखना आवश्यक है—

1. मुर्गी घर की दिशा पूर्व से पश्चिम होनी चाहिए, ताकि सीधी धूप का प्रभाव कम पड़े।

न आ सकें।

11. शेड के आसपास पेड़-पौधे नहीं होने चाहिए, क्योंकि वे जंगली पक्षियों को आकर्षित करते हैं।
12. मुख्य द्वार के पास कार्यालय, भंडारण कक्ष, कपड़े बदलने और स्नान की अलग व्यवस्था होनी चाहिए।
13. प्रवेश द्वार और प्रत्येक शेड के सामने कीटाणुनाशक घोल से भरा फुटबाथ होना चाहिए।
14. पूरे फार्म को चारों ओर से घेराबंदी (फेंसिंग) करनी चाहिए।

2. संचालनात्मक (ऑपरेशनल) जैव-सुरक्षा

यह जैव-सुरक्षा दैनिक कार्यों और प्रबंधन से संबंधित होती है—

1. निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार टीकाकरण और कृमिनाशक दवाओं का उपयोग करना चाहिए।
2. बाहरी व्यक्तियों और वाहनों के प्रवेश को सीमित रखना चाहिए।
3. फार्म में काम करने वाले श्रमिकों को स्वच्छता नियमों का पालन करना चाहिए, ताकि बर्ड फ्लू जैसी बीमारियों का खतरा कम हो।
4. अलग-अलग उम्र या नस्ल की मुर्गियों की देखभाल करने वाले

कर्मचारियों को अन्य शेड में जाने से रोकना चाहिए।

2. दो शेडों के बीच कम से कम 15 मीटर की दूरी रखी जानी चाहिए।
3. अलग-अलग फार्मों के बीच 1-2 किलोमीटर का अंतर होना चाहिए।
4. हैचरी और मुर्गी घर के बीच लगभग 500 फीट की दूरी आवश्यक है।
5. फार्म को आबादी और रिहायशी क्षेत्रों से दूर स्थापित करना चाहिए, ताकि शोर और प्रदूषण का असर न पड़े तथा दुर्गंध और कीटों से लोगों को परेशानी न हो।
6. फार्म पक्की सड़क के पास होना चाहिए, जिससे परिवहन और श्रमिकों की उपलब्धता आसान हो।
7. स्थान ऊँचा होना चाहिए, ताकि पानी जमा न हो और बाढ़ का खतरा न रहे।
8. निरंतर बिजली की व्यवस्था होनी चाहिए; हैचरी के लिए जनरेटर भी जरूरी है।
9. शेड का फर्श पक्का (कंक्रीट) होना चाहिए, जिससे सफाई और कीटाणुशोधन सरल हो तथा चूहों का प्रवेश रोका जा सके।
10. फर्श जमीन से लगभग 3 फीट ऊँचा होना चाहिए, ताकि बारिश का पानी और बाहरी परजीवी अंदर
5. प्रदर्शनी में ले जाई गई मुर्गियों को वापस फार्म में नहीं लाना चाहिए।
6. फार्म में प्रवेश और निकास का एक ही निर्धारित मार्ग होना चाहिए।
7. उपकरणों की नियमित (साप्ताहिक) सफाई और कीटाणुशोधन करना जरूरी है।
8. चूहों पर नियंत्रण के लिए पिंजरे और दवाओं का उपयोग करना चाहिए।
9. बाहरी परजीवियों (जूं, किल्ली आदि) के नियंत्रण के लिए स्प्रे या डस्टिंग करनी चाहिए।
10. बिछवन (लिट्टर) में नमी 25% से अधिक नहीं होनी चाहिए; इसके लिए चूना पाउडर का उपयोग किया जा सकता है।
11. पीने के पानी को स्वच्छ रखने के लिए वॉटर सेनेटाइज़र (जैसे ब्लीचिंग पाउडर) का उपयोग करना चाहिए।

इन सभी उपायों को अपनाकर पोल्ट्री फार्म में रोगों के खतरे को काफी हद तक कम किया जा सकता है और उत्पादन क्षमता को बेहतर बनाया जा सकता है।



नितेश्वरी बघेले कृषि विभाग, क्रांतिवीर
तात्या टोपे विश्वविद्यालय, गुना (म.प्र.)

उदयभान निषाद, शिखा त्रिपाठी उद्यान
विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्व
विद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, 221005

भारत में सब्जियां मानव पोषण, खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय तथा रोजगार का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। सब्जी उत्पादन में उच्च उपज और गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त करने के लिए स्वस्थ पौध का होना अत्यंत आवश्यक है। यदि नर्सरी में पौध कमजोर, रोगग्रस्त या असमान आकार की हो, तो खेत में रोपाई के बाद पौधों की वृद्धि और उपज प्रभावित हो सकती है। नर्सरी अवस्था में पौधे बहुत कोमल होते हैं तथा तापमान, नमी, प्रकाश, पानी, पोषक तत्वों, रोग एवं कीटों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। अधिक सिंचाई से जड़ संबंधी रोग बढ़ सकते हैं, जबकि पानी की कमी से पौधों में मुरझाने और वृद्धि रुकने की समस्या हो सकती है। इसी प्रकार अत्यधिक तापमान या आर्द्रता पौधों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है। परागृत नर्सरी व्यवस्था में इन सभी कारकों की निगरानी मुख्यतः मानव अनुभव और नियमित निरीक्षण के आधार पर की जाती है। बड़ी संख्या में पौधों वाली व्यावसायिक नर्सरी में प्रत्येक पौधे की लगातार निगरानी करना कठिन होता है। ऐसे में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकें नर्सरी प्रबंधन को अधिक वैज्ञानिक, सटीक और स्वचालित बनाने में सहायता कर सकती हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्या है?—कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जिसे अंग्रेजी में 'Artificial Intelligence 'AI' कहा जाता है, ऐसी तकनीक है जिसमें कंप्यूटर या मशीन को उपलब्ध आंकड़ों का विश्लेषण करके निर्णय लेने, समस्या पहचानने और अनुमान लगाने में सक्षम बनाया जाता है। कृषि और बागवानी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग पौधों की वृद्धि, रोग पहचान, सिंचाई, कीट प्रबंधन, उपज अनुमान तथा संसाधन प्रबंधन में किया जा सकता है।

नर्सरी उत्पादन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की आवश्यकता—सब्जी नर्सरी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग निम्न कारणों से महत्वपूर्ण है। * स्वस्थ और मजबूत पौध तैयार करने हेतु। * पौधों की वृद्धि की लगातार निगरानी हेतु। * पानी का उचित उपयोग करने हेतु। * पोषक तत्वों का बेहतर प्रबंधन करने हेतु। * रोगों की प्रारंभिक पहचान हेतु। * कीटों की निगरानी हेतु। * कमजोर और असामान्य पौधों की पहचान हेतु। * पौधों की गुणवत्ता के अनुसार श्रेणीकरण हेतु। * श्रम और समय की बचत हेतु। * बड़ी नर्सरी में स्वचालित प्रबंधन हेतु। * उत्पादन लागत कम करने हेतु। * संसाधनों के अधिक कुशल उपयोग हेतु। * बीज की गुणवत्ता की पहचान में एआई का उपयोग। अच्छी पौध के लिए उच्च गुणवत्ता वाले बीज का चयन आवश्यक है। सामान्यतः बीजों को उनके आकार, रंग, वजन और बाहरी स्वरूप के आधार पर चुना जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और कंप्यूटर आधारित छवि विश्लेषण की सहायता से बड़ी संख्या में बीजों का निरीक्षण किया जा सकता है। इसके द्वारा बीज का आकार, बीज का रंग, बीज की आकृति, बीज की एकरूपता, टूटे हुए बीज, असामान्य बीज और क्षतिग्रस्त बीज की पहचान की जा सकती है। इससे अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों के चयन में सहायता मिल सकती है।

बीज अंकुरण की निगरानी—नर्सरी में सभी बीज एक साथ अंकुरित नहीं होते। कुछ बीज जल्दी अंकुरित होते हैं, जबकि कुछ देर से अंकुरित होते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कैमरा प्रणाली नियमित रूप से नर्सरी ट्रे की तस्वीरें लेकर अंकुरण की स्थिति का विश्लेषण कर सकती है। इसके माध्यम से निम्न जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है— अंकुरण प्रतिशत, अंकुरण की गति, खाली स्थान, कमजोर पौध, असामान्य पौध और अंकुरण की एकरूपता। इससे नर्सरी प्रबंधक को यह पता लगाने में

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का सब्जी की नर्सरी उत्पादन में उपयोग

सहायता मिल सकती है कि किस ट्रे या क्षेत्र में अंकुरण कम है।

पौधों की वृद्धि की निगरानी—नर्सरी में पौधों की वृद्धि का नियमित निरीक्षण आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कैमरों से पौधों की तस्वीरें लेकर उनकी वृद्धि का विश्लेषण किया जा सकता है। एआई निम्न विशेषताओं का अनुमान लगाने में सहायता कर सकती है— पौधे की ऊंचाई, पत्तियों की संख्या, पत्ती का क्षेत्रफल, पौधे का आकार, तने की मोटाई, पौधे का रंग और पौधों की एकरूपता। इससे कमजोर पौधों की पहचान जल्दी की जा सकती है और आवश्यकता के अनुसार प्रबंधन किया जा सकता है।

सिंचाई प्रबंधन में एआई—नर्सरी में पानी का उचित प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है। अधिक पानी देने से जड़ सड़न तथा अन्य रोगों का खतरा बढ़ सकता है, जबकि पानी की कमी से पौधे मुरझा सकते हैं और उनकी वृद्धि प्रभावित हो सकती है। सेंसर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से नर्सरी में— माध्यम की नमी, तापमान, वायु की सापेक्ष आर्द्रता और प्रकाश की तीव्रता की निगरानी की जा सकती है। इन आंकड़ों का विश्लेषण करके पौधों को पानी देने का उचित समय निर्धारित करने में सहायता मिल सकती है।

पोषण प्रबंधन में एआई—नर्सरी पौधों को संतुलित पोषण की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित हो सकती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता पौधों की तस्वीरों और वृद्धि संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण करके पोषक तत्वों की कमी के संभावित संकेतों की पहचान करने में सहायता कर सकती है।

रोगों की प्रारंभिक पहचान—सब्जी नर्सरी में रोग बहुत तेजी से फैल सकते हैं क्योंकि पौधे एक-दूसरे के बहुत पास होते हैं। यदि किसी रोग की पहचान प्रारंभिक अवस्था में हो जाए तो उसके प्रसार को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता और कंप्यूटर दृष्टि की सहायता से पौधों की तस्वीरों का विश्लेषण किया जा सकता है। एआई संभावित रूप से निम्न लक्षणों की पहचान में सहायता कर सकती है जैसे पत्तियों पर धब्बे, पत्तियों का पीला पड़ना, पत्तियों का सूखना, ऊतक का मरना, पौधे का मुरझाना, तने पर घाव और असामान्य पत्ती आकार इससे रोग की प्रारंभिक अवस्था में नर्सरी प्रबंधक को चेतावनी दी जा सकती है।

डैमिंग-ऑफ रोग की निगरानी—डैमिंग-ऑफ सब्जी नर्सरी का एक महत्वपूर्ण रोग है। अत्यधिक नमी, अधिक आर्द्रता और खराब वायु संचार जैसी परिस्थितियां इसके विकास के लिए अनुकूल हो सकती हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणाली में तापमान, आर्द्रता, माध्यम की नमी और पौधे की तस्वीर का संयुक्त विश्लेषण किया जा सकता है। यदि परिस्थितियां रोग के लिए अनुकूल हों तो नर्सरी प्रबंधक को चेतावनी दी जा सकती है। इस प्रकार रोग दिखाई देने के बाद उपचार करने के बजाय जोखिम की प्रारंभिक पहचान की दिशा में कार्य किया जा सकता है।

कीट प्रबंधन में एआई—नर्सरी में माहू, सफेद मक्खी, थ्रिप्स और माइट जैसे कीट पौधों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। कैमरा आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली कीटों की तस्वीरों का विश्लेषण करके कीटों की उपस्थिति, उनकी संख्या का अनुमान, प्रभावित क्षेत्र और संक्रमण के बढ़ने की प्रवृत्ति की पहचान में सहायता कर सकती है। इससे नर्सरी प्रबंधक को समय पर निरीक्षण और आवश्यक प्रबंधन करने में सहायता मिल सकती है।

खरपतवार पहचान—यदि नर्सरी में मिट्टी आधारित उत्पादन किया जा रहा है तो खरपतवार भी समस्या पैदा कर सकते हैं। कंप्यूटर दृष्टि और कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से फसल के पौधे और खरपतवार के बीच अंतर करने की संभावना है। इससे केवल प्रभावित स्थान पर खरपतवार नियंत्रण

करने में सहायता मिल सकती है तथा अनावश्यक श्रम और संसाधन उपयोग को कम किया जा सकता है।

तापमान और आर्द्रता प्रबंधन—नर्सरी में तापमान और आर्द्रता पौधों की वृद्धि को सीधे प्रभावित करते हैं। सेंसर द्वारा लगातार तापमान और आर्द्रता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इन आंकड़ों का विश्लेषण करके नर्सरी की परिस्थितियों में आवश्यक बदलाव हेतु संकेत दे सकती है। उदाहरण के लिए, अत्यधिक तापमान की स्थिति में वेंटिलेशन, छायांकन, धुंध फुहार और सिंचाई जैसे उपायों की आवश्यकता का संकेत मिल सकता है।

प्रकाश प्रबंधन—प्रकाश पौधों में प्रकाश संश्लेषण और स्वस्थ वृद्धि के लिए आवश्यक है। प्रकाश सेंसर की सहायता से नर्सरी में प्रकाश की तीव्रता मापी जा सकती है। एआई इन आंकड़ों के आधार पर यह निर्धारित करने में सहायता कर सकती है कि पौधों को पर्याप्त प्रकाश मिल रहा है या नहीं। संरक्षित नर्सरी और ऊर्ध्वाधर खेती जैसी प्रणालियों में यह तकनीक विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है।

रोपाई के लिए तैयार पौध की पहचान—सब्जी पौध को खेत में उचित अवस्था पर रोपना आवश्यक है। बहुत छोटी या बहुत अधिक बड़ी हुई पौध दोनों ही समस्याएं उत्पन्न कर सकती हैं। एआई निम्न विशेषताओं का विश्लेषण करके रोपाई के लिए उपयुक्त पौध की पहचान में सहायता कर सकती है उचित पौध ऊंचाई, पर्याप्त पत्ती विकास, मजबूत तना, स्वस्थ पत्तियां, समान वृद्धि और रोगमुक्त अवस्था।

स्मार्ट नर्सरी में सेंसर और एआई—स्मार्ट नर्सरी में विभिन्न सेंसर लगाए जा सकते हैं। प्रमुख सेंसर हैं—तापमान सेंसर, आर्द्रता सेंसर, माध्यम की नमी सेंसर, प्रकाश सेंसर, कार्बन डाइऑक्साइड सेंसर और जल गुणवत्ता सेंसर इन सेंसरों से प्राप्त आंकड़े एआई प्रणाली को दिए जाते हैं।

मोबाइल फोन द्वारा एआई का उपयोग—कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग केवल बड़े व्यावसायिक नर्सरी केंद्रों तक सीमित नहीं है। भविष्य में मोबाइल फोन आधारित प्रणालियों का उपयोग छोटे किसानों और नर्सरी संचालकों द्वारा भी किया जा सकता है। पौधे की तस्वीर लेकर संभावित रूप से रोग की पहचान, पत्तियों की असामान्यता, वृद्धि की समस्या और कीट संक्रमण जैसी समस्याओं की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

सब्जी नर्सरी में एआई के प्रमुख लाभ

* **बीज एवं पौध गुणवत्ता की पहचान**—एआई की सहायता से स्वस्थ और कमजोर पौधों की पहचान की जा सकती है।

* **सिंचाई का उचित प्रबंधन**—मिट्टी की नमी, मौसम और पौधे की आवश्यकता के आधार पर सिंचाई की सलाह मिल सकती है।

* **कीट एवं रोग की शीघ्र पहचान**—पौधों की तस्वीरों का विश्लेषण करके कीट एवं रोग के शुरुआती लक्षणों की पहचान की जा सकती है।

* **रोग प्रबंधन की सलाह**—पहचाने गए रोग के आधार पर उचित जैविक, सांस्कृतिक एवं रासायनिक प्रबंधन की जानकारी मिल सकती है।

* **मौसम आधारित प्रबंधन**—तापमान, आर्द्रता, वर्षा और मौसम पूर्वानुमान के आधार पर नर्सरी प्रबंधन में सहायता मिलती है।

* **पोषक तत्व प्रबंधन**—पौधों के लक्षणों एवं उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर पोषक तत्वों की कमी का अनुमान लगाया जा सकता है।

* **पौध वृद्धि की निगरानी**—एआई द्वारा पौधों की ऊंचाई, पत्तियों की संख्या और वृद्धि दर जैसे मानकों की निगरानी की जा सकती है।

* **पौध संख्या का आकलन**—कैमरा या ड्रोन आधारित तकनीक से नर्सरी में पौधों की संख्या एवं स्थिति का आकलन किया जा सकता है।

* **इनपुट लागत में कमी**—पानी, उर्वरक और कीटनाशकों का आवश्यकता के अनुसार उपयोग करने से लागत कम की जा सकती है।

* **समय की बचत**—पौधों की निगरानी और समस्या पहचान जैसे कार्यों को स्वचालित करके समय बचाया जा सकता है।

डॉ. निशा ठाकुर सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)

डॉ. पायल देवी चंद्राकर सहायक प्राध्यापक (कोट विज्ञान)

डॉ. नमिता सिंह सहायक प्राध्यापक (आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन)

डॉ. स्वाति कुंजाम अतिथि शिक्षक (शष्य विज्ञान) उद्यानिकी
महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, अर्जुन्दा, बालोद, छत्तीसगढ़

मशरूम (कुकुरमुत्ता) पोषण
से भरपूर खाद्य पदार्थ है।

मशरूम विटामिन और सेहत
का एक बेहतरीन खजाना है,
जो वजन घटाने, इम्यूनिटी
बढ़ाने और शरीर को ऊर्जा
देने में मदद करता है। यह
वसा रहित और कम कैलोरी
वाला सुपरफूड है। 100
ग्राम ताजे मशरूम में
लगभग निम्न पोषक तत्व
पाए जाते हैं-

पोषक तत्व	मात्रा (लगभग)
कैलोरी	20.30 kcal
प्रोटीन	3.4 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	3.5 ग्राम
फाइबर	1.2 ग्राम
वसा	0.3 ग्राम
पानी	85.90%

मशरूम में पाए जाने वाले मुख्य पोषक तत्व
और स्वास्थ्य लाभ इस प्रकार हैं-

1. प्रमुख विटामिन और मिनरल्स

विटामिन डी: मशरूम विटामिन डी के प्राकृतिक शाकाहारी स्रोतों में से एक है, जो धूप के संपर्क में आने पर और भी बढ़ जाता है।

विटामिन बी: विटामिन बी2 (राइबोफ्लेविन), बी3 (नियासिन) और बी5 (पैंटोथेनिक एसिड) भरपूर मात्रा में होते हैं, जो नसों और त्वचा को स्वस्थ रखते हैं।

मिनरल्स: यह सेलेनियम, जिंक, कॉपर और पोटैशियम का अच्छा स्रोत है, जो ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करने में सहायक है।

2. स्वास्थ्य लाभ

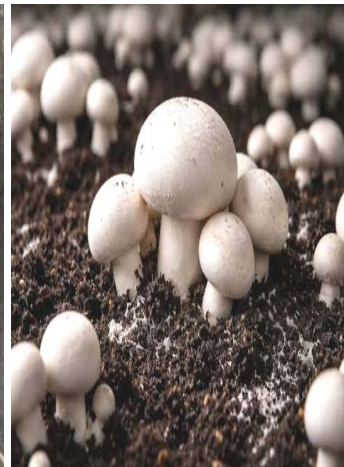
इम्यूनिटी बढ़ाने में मदद: इसमें मौजूद बीटा-

मशरूम विटामिन एवं सेहत का एक बेहतरीन खजाना

ग्लूकन रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाते हैं।

वजन नियंत्रण

* कम कैलोरी और उच्च फाइबर होने के कारण यह लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस कराता है।



* दिल की सेहत के लिए अच्छा यह कोलेस्ट्रॉल को कम करने और हृदय को स्वस्थ रखने में लाभदायक है।

एंटीऑक्सीडेंट गुण

इसमें पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट शरीर की

कोशिकाओं को नुकसान से बचाते हैं और कैंसर का खतरा कम करते हैं।

नोट: आप अपनी डाइट में ऑयस्टर, बटन, पैरा मशरूम, शिटाके या औषधीय मशरूम जैसे विकल्पों को शामिल कर सकते हैं।

सावधानियां

- * हमेशा खाने योग्य और ताजे मशरूम ही खाएं।
- * जंगली मशरूम बिना पहचान के न खाएं, कुछ जहरीले हो सकते हैं।
- * अधिक तेल या मक्खन में पकाने से इसकी हेल्दी वैल्यू कम हो सकती है।

जय माता दी

जीतू **प्रो. लाखन कुशवाह**

📞 8770232968 📞 9754564727
7987081441

मै. जय माँ खाद एवं बीज भण्डार

हमारे यहाँ सभी प्रकार के
सब्जी बीज एवं कीटनाशक दवाईयाँ
उचित रेट पर मिलती है।

मेन रोड, बस स्टेण्ड के पास, छीमक जिला-ग्वालियर



डॉ. सफदर अली खान (वरिष्ठ पशु चिकित्सा अधिकारी)

पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विज्ञान विभाग

पशुधन विकास विभाग जिला-सरगुजा (छ.ग.)

डॉ. एम.ओ. कलीम, डॉ. एस.के. तिवारी

डॉ. सी. सन्नट, डॉ. आलोक कुमार जायसवाल

पशु चिकित्सा व पशुपालन महाविद्यालय अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

बकरी पालन में शल्य रोग, चिकित्सा की प्रगति और संभावना? (2047 विकसित भारत की दृष्टि से)

प्रस्तावना- बकरी पालन से भारत में लगभग 4.2 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को रोजगार मिलता है। बकरी को छोटे, सीमांत और भूमिहीन किसानों का गाय तथा ए.टी.एम. (एनी टाईम मनी) कहा जाता है। बकरियों में मुख्यतः फोड़े, मुत्र पथरी, चमड़ी के निचे सिस्ट, अण्डकोष के घाव, कटिन प्रसव, गिड (घुमरी रोग) तथा नाभी हर्निया शल्य चिकित्सा से संबंधित रोग पाये जाते हैं। इन रोगों के कारण बकरी पालकों को बकरी को बेचने में काफी नुकसान होता है। शल्य चिकित्सा से न केवल बकरी का जीवन बचता है बल्कि बकरी का दाम भी बढ़ जाता है, जिससे बकरी पालकों को अच्छा लाभ प्राप्त होता है। बड़े बकरों का बधियाकरण शल्य क्रिया से करने पर प्रबंधन करना आसान हो जाता है, साथ ही दाम भी अच्छे मिलते हैं। रोग के ठीक होने के बाद बकरी की उत्पादकता के साथ-साथ दाम भी बढ़ जाता है। भारत सरकार के द्वारा चलाये जा रहे राष्ट्रीय पशुधन मिशन (एन.एल.एम.) जैसी योजनाओं के माध्यम से सब्सिडी, आसान लोन और तकनीकी सहायता दिया जा रहा है जिससे भारत की ग्रामिण अर्थव्यवस्था में सुधार होगा तथा 2047 में बकरी पालन एक लाभदायक और टिकाऊ व्यवसाय बने रहने की उम्मीद है। बकरी पालन संगठित क्षेत्र की तरह तथा पालन अर्ध गहन अथवा गहन पद्धति से किया जावेगा। भारत में बकरी उद्योग से लगभग 3 मिलियन टन मांस तथा 18 मिलियन टन दुग्ध का उत्पादन होगा तथा बकरी उद्योग 6,90,920 करोड़ रुपये का हो जाएगा।

बकरी शल्य चिकित्सा का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य- भारत में आदिवासी क्षेत्रों और वन आंचलों में बकरी उपचार हेतु परंपरिक रूप से ग्रामिण चिकित्सा पद्धतियां उपयोग करते हैं। पहले लोग अपने बकरी को लोहे को गर्म करके घाव तथा चोट को ठीक करते थे, जो दर्दनाक तथा पीड़ाप्रयुक्त होता था। आज के दौर में ओपन वैज्ञानिक शल्य पद्धति का उपयोग किया जाता है जिसमें बकरी को दर्द नहीं होता तथा कम खून का बहाव होता है। लेप्रोस्कोपी, एनेस्थीसीया, एन्डोस्कोपी, लेजर तकनीक विकसित हो रहा है, जिससे बकरी की मृत्यु दर में कमी तथा रिकवरी तेजी से होता है।

प्रमुख शल्य चिकित्सा संबंधी समस्या? - बकरियों में मुख्य रूप से निम्न शल्य क्रिया संबंधी विकार पाये जाते हैं, जिसमें अक्सर शल्य चिकित्सा द्वारा हटाने या मरम्मत की आवश्यकता होती है। पशु चिकित्सक के द्वारा क्लीनिकल हिस्ट्री, शारीरिक परीक्षण तथा अन्य परीक्षणों के माध्यम से रोगों का निदान किया जाता है।

हड्डी संबंधी- फ्रेक्चर, अव्यवस्था

जननांग संबंधी- कटिन प्रसव, बधियाकरण, अंडकोष (स्क्रोटम) नासुर घाव, गंग्रिनास मैस्टासीस

त्वाचा-सिस्ट, ट्यूमर रोग

ब्रेन संबंधी - गिड सिस्ट,

आँख संबंधी- मोतिया बिंद

पाचन संबंधी- रुमेन इम्पेक्सन, आँत रुकावट, चोक, हर्निया, इविसरेसन

जन्मजात रोग-एट्रिसिया एनाइ, नकलिंग, अम्बाइलिकल हर्निया

मूत्र नली संबंधी- पेशाब पथरी

शल्य रोग	कारण	लक्षण	शल्य विधि
गिड रोग	टॉनिया मस्टीसेस के अंडे से दूधिया बहा के खाने से	तिर का एक तरफ झुक जाना, आवाज निकालना, लड़खलाना, एक जगह खड़ा रहना, लकड़ मारना, अंघ्रियन लंबे समय तक प्रसव पीड़ा, अव्यवस्थित तनाव	ड्रेन सर्जरी-मॉलिक्य से सिस्ट को निकाला जाता सिंजिरेसन
प्रसव विटोरिया	बच्चों में असमान्य स्थिति। मुँहाड़ा निर्यात या घेर, कम उम्र में माँ बनना (पेरिस छेद या संक्रा होना), बच्चों का बड़ा आकार या गलत पैकजिंग	सुखी, भूख न लगना, खुजली करना या प्रभावित क्षेत्रों से खुजली स्वाद शरीर पर आवाज गर्दन, लांघ, घेरा। नस और पानी भरी हुई सिस्ट (गिड), शरीर का वजन कम होना	लार्वा हटाना, मेमटो साइडल दवा, साफ-सफाई तथा री सिस्ट को शल्य क्रिया से निकालना
मस्टीसेस (मेग घाव)	घाव पर मीसखोले के अंडे देने से	बल-बार जोर लगाकर पेशाब करने की कोशिश, पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	सूक्ष्म प्रेसस काटना या ट्यूब सिस्टेटमी करना
वमड़ी का सिस्ट	कोलेरुस माइग्रेरी परजीवी	घाव, जुकन तथा दर्द के साथ मेग घाव हो सकता है।	स्क्रोटल अस्लेसन
मुत्र पथरी	अहार में खनिजों की अधिकता, पानी की कमी, खराब जल गुणवत्ता	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
अंडकोष घाव/बधियाकरण	बधियाकरण बुरा आहार, संक्रमण	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
एट्रिसिया पर्वड	जन्मजात रोग गुद अनुपस्थित या कम विकसित होता है।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
रुमेन इम्पेक्सन	रुमेन में बिदेसी वस्तु? (कार्टिक, रस्सी इत्यादि) के फन जने के कारण होता है।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
कोक/ग्रामसली अवरोधन	बहुत तेजी से मोटे या कठोर भोजन को खाना, बिदेसी वस्तुओं के कारण अवरोध	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
एविसरेसन	आवृत्त या घेरा अंत की रुकावट	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
मैस्टीस	स्टेफिलोकोकस ऑरियस बैक्टीरिया, अक्सर वातावरण	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
मैस्टीस	मोस पेशिया में संक्रमण, घेरा के कारण या जन्मजात हो सकता है।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
हर्निया	घेरा में परजीवी, आंत में पेटन, बिदेसी वस्तु? एक हिस्से का दूसरे में घुस जाना।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
आँत रुकावट	मोस पेशिया में संक्रमण, घेरा के कारण या जन्मजात हो सकता है।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी
हड्डी फ्रेक्चर	गड्डी से घोट, जानवरों के हमले से अथवा अन्य आघात से।	पेशाब करते समय दर्द भूरे या लाल रंग का पेशाब	नया मुद्दामर डिड बनाना रुमेनोटमी

सर्जरी के बाद एंटीबायोटिक्स का उपयोग और घाव की देखभाल किया जाता है। शल्य क्रिया संबंधी विकार के रोकथाम और सफल परिणाम के लिए अच्छी स्वच्छता, पर्याप्त संतुलित पोषण तथा प्रक्रिया के दौरान उचित संचालन महत्वपूर्ण है।

आधुनिक शल्य चिकित्सा तकनीकें- मानव चिकित्सा के भाति पशु चिकित्सा में भी परंपरिक ओपन सर्जरी का विकल्प की आवश्यकता है। नवाचार तकनीक से बकरियों में सर्जरी से बेहतर परिणाम मिलेगा।

लेप्रोस्कोपिक सर्जरी- यह एक न्यूनतम इनवेसिव तकनीक है, जिसमें पेट में छोटे चीरे लगाकर कैमरा और विशेष उपकरण डाले जाते हैं, जिससे डॉक्टर स्क्रीन पर अंदरूनी अंगों को देखकर सर्जरी करते हैं। इस सर्जरी से कम दर्द, जल्दी रिकवरी, कम संक्रमण का खतरा, तथा कम निशान रहता है।

इलेक्ट्रो कॉटर सर्जरी- विद्युत धारा के साथ उत्कों का काटने और रक्त वाहिकाओं को सील करने के लिए इस सर्जरी को अच्छा माना जाता है।

3 डी प्रिंटिंग इम्प्लान्ट- हड्डियों की मरम्मत, जोड़ों के प्रतिस्थापन और अंग रक्षक सर्जरी के लिए रोगी विशिष्ट आर्थोपेडिक प्रत्यारोपण बनाने के लिए किया जाता है।

नैनो टेक्नोलॉजी आधारित औषधियां- पशुपालन में एंटीबायोटिक दवा पर निर्भरता कम करने के लिए बकरी के आँत का स्वस्थ और शरीर प्रतिरक्षा मजबूत रहना बहुत जरूरी है। नैनो मटेरियल पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं तथा पोषक तत्वों की कमी को पूरा करते हैं तथा आँत को स्वस्थ रखता है। नैनो जिंक और नैनो सेलेनियम के उपयोग से बकरियों का प्रतिरक्षा तंत्र मजबूत होता है। नैनो सिल्वर आधारित क्रीम को घाव पर लगाने से सतही घाव जल्दी ठीक होते हैं।

भारत 2047 की विशेष पहल- ग्रामिण स्तर पर मोबाइल शल्य चिकित्सा ईकाइयाँ से दूर-दराज और अविकसित क्षेत्रों में पशु स्वास्थ्य सेवाओं को विशेषज्ञ की टीम के द्वारा सर्जरी की जायेगी। प्रत्येक जिले में उन्नत बकरी शल्य चिकित्सा केन्द्र, कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा रोग निदान और आपरेशन योजना, पशुपालकों के लिए डिजिटल प्रशिक्षण और टेलीमेडिसीन की सुविधा दिया जावेगा। भारत में वैज्ञानिक विधि से बकरी पालन तथा बकरी उद्योग संगठित क्षेत्र के रूप में जाना जाएगा।

चुनौतियाँ और समाधान- पशु शल्य चिकित्सा क्षेत्र में चुनौतियाँ मुख्यतः बुनियादी ढाँचे, प्रशिक्षित कर्मियों, वित्तीय साधनों और जागरूकता से संबंधित हैं।

क्र. चुनौतियाँ

1. पशुपालकों में जागरूकता की कमी

2. महंगे उपकरण

3. प्रशिक्षित शल्य चिकित्सकों की कमी

सामाधान

ग्रामीण विस्तार कार्यक्रम

स्वदेशी तकनीक और मेक इन इंडिया को बढ़ावा

स्किल ट्रेनिंग तथा ई लर्निंग

निष्कर्ष: 2047 तक विकसित भारत में बकरियों में आधुनिकतम स्वदेशी तकनीक से निर्मित उपकरण (लेप्रोस्कोपिक, रोबोटिक इत्यादि) तथा बायोटेक्नोलॉजी आधारित सर्जरी उपलब्ध होगा, जिससे न केवल बकरी उद्योग का कल्याण होगा बल्कि ग्रामिण अर्थव्यवस्था और पशुपालकों के आय में वृद्धि होगी। न्यूनतम आक्रामक शल्य चिकित्सा और आधुनिक उपकरणों का विकास से बीमारी का निदान तथा उपचार करना आसान हो जाएगा।



शक्ति बीज भण्डार

सभी प्रकार के कीटनाशक • खरपतवार दवाईयाँ • रासायनिक खाद एवं उच्च क्वालिटी के बीज व स्प्रे पम्प मिलाने का एक मात्र स्थान।

ए.बी. रोड, न्यू सब्जी मण्डी, लक्ष्मर-ग्वालियर (म.प्र.) फोन : 0751-2448911

नोट : सभी प्रकार के स्प्रे पम्प (बैट्री/पेट्रोल/नैसिक) रिपेयर भी किये जाते हैं।



डॉ. प्रतिमा घृतलहरे, डॉ. केशर परवीन
डॉ. दीप्ति किरण पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन
विभाग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु
विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

गाँव-गाँव में यह शिकायत आम है — "मेरी गाय बार-बार गर्मी में आती है, पर गाभिन नहीं होती।" कई बार पशुपालक इसे किस्मत या बांझपन मान लेते हैं, जबकि असली वजह होती है दो बहुत ही सामान्य लेकिन अनदेखी बातें — संतुलित खनिज पोषण और सही समय पर हीट (मद) की पहचान। गाय एक संवेदनशील प्रजनन-चक्र वाला पशु है, और भैंस की तुलना में इसमें हीट के लक्षण प्रायः अधिक स्पष्ट होते हैं — इसलिए थोड़ी सी जानकारी और सजगता से गाय पालकों को गर्भधारण दर में उल्लेखनीय सुधार मिल सकता है।

खनिज मिश्रण- गाय की प्रजनन क्षमता की नींव

दूध उत्पादन और प्रजनन, दोनों के लिए गाय के शरीर को कैल्शियम, फॉस्फोरस, जिंक, कॉपर, मैंगनीज, सेलेनियम और आयोडीन जैसे खनिजों की नियमित आवश्यकता होती है। संकर और उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाली गायों (जैसे होल्स्टीन फ्रीजियन, जर्सी क्रॉस) में यह आवश्यकता देशी नस्लों की तुलना में अधिक होती है, क्योंकि दूध बनाने में शरीर के खनिज भंडार तेजी से खर्च होते हैं। अकेला हरा या सूखा चारा इन सब तत्वों की पूर्ति नहीं कर पाता, खासकर जब मिट्टी में ही इन तत्वों की कमी हो।

गाय में खनिज कमी के सामान्य लक्षण

लक्षण / समस्या	संभावित कारण (खनिज कमी)
बार-बार गर्मी में आना पर गाभिन न होना (रिपीट ब्रूइंग)	फॉस्फोरस, जिंक, मैंगनीज की कमी
साइलेंट हीट — बाहरी लक्षण न दिखना	कॉपर, जिंक, आयोडीन की कमी
घाने के बाद जेर (क्लेस्टा) का न गिरना	सेलेनियम, विटामिन-ई की कमी
कमजोर बछड़ा या गर्भाणत	कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयोडीन की कमी
हड्डियाँ कमजोर, बाल में लंगड़ापन	कैल्शियम-फॉस्फोरस असंतुलन

कैसे और कब खिलाएं

- प्रतिदिन 50-60 ग्राम अच्छी गुणवत्ता का खनिज मिश्रण चारे या दाने में मिलाकर खिलाएं।
- ब्याने से दो महीने पहले (ड्राई पीरियड) से शुरू करें — यह अगले गर्भधारण की तैयारी का सबसे महत्वपूर्ण समय है।
- ब्याने के बाद पहले तीन महीनों तक नियमितता बनाए रखें, जब दूध उत्पादन और अगला गर्भधारण दोनों साथ चल रहे होते हैं।
- उच्च उत्पादन वाली गायों के लिए पशु चिकित्सक से बाईपास मिनरल या क्षेत्र-विशेष मिश्रण की सलाह लें।

किसान टिप—मिनरल मिक्सचर खरीदते समय पैकेट पर बनने की तारीख और गुणवत्ता प्रमाणन जरूर देखें, और नजदीकी पशु चिकित्सक से अपने क्षेत्र की मिट्टी व चारे के अनुसार सही मिश्रण की सलाह लें।

स्वस्थ गाय, सफल प्रजनन: खनिज मिश्रण और सही हीट पहचान से बढ़ाएं गर्भधारण की सफलता

सही हीट पहचान- गाय में समय पर गर्भधान

खनिज पोषण सही होने के बाद भी अगर हीट (मद) सही समय पर न पहचानी जाए, तो गर्भधान (कृत्रिम गर्भधान या प्राकृतिक) असफल हो सकता है। गाय में हीट चक्र सामान्यतः 18 से 24 दिन (औसतन 21 दिन) का होता है और हीट की अवधि 12 से 18 घंटे तक रहती है — इसलिए समय की पहचान बहुत महत्वपूर्ण है।

गाय में हीट के लक्षण

- बार-बार रंभाना और बेचैन रहना, इधर-उधर घूमना
- दूसरी गायों पर चढ़ने की कोशिश करना या चढ़ने देना (स्टैंडिंग हीट — सबसे विश्वसनीय संकेत)
- योनि से साफ, चिकने, धागे जैसे स्राव का निकलना
- योनि द्वार का हल्का सूजा और लाल दिखना
- भूख में हल्की कमी, दूध उत्पादन में मामूली गिरावट
- कान सजग रखना, पूंछ बार-बार उठाना, बार-बार पेशाब करना

सही समय पर गर्भधान का नियम

"सुबह देखो तो शाम को कराओ, शाम को देखो तो सुबह कराओ" — यानी यदि हीट के लक्षण सुबह दिखें तो गर्भधान उसी दिन शाम को कराएं, और शाम को दिखें तो अगली सुबह। इस "AM-PM नियम" को अपनाने से गाय में गर्भधारण की सफलता दर काफी बढ़ जाती है, क्योंकि अंडोत्सर्ग

(ओव्युलेशन) हीट लक्षण समाप्त होने के लगभग 10-14 घंटे बाद होता है।

किसान टिप— दिन में कम से कम दो बार (सुबह-शाम, हर बार 20-30 मिनट) गाय को ध्यान से देखें। हीट डिटेक्शन डायरी बनाकर हर गाय की तारीख नोट करें, जिससे अगली संभावित हीट (लगभग 21 दिन बाद) का अंदाज़ा पहले से लगाया जा सके।

दोनों बातों को साथ लेकर चलें

खनिज पोषण और हीट पहचान — ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। कमजोर खनिज पोषण वाली गाय हीट में आकर भी ठीक से गाभिन नहीं होती, और सही पोषण वाली गाय भी अगर गलत समय पर गर्भधान कराया जाए तो असफल रह सकती है।

याद रखने योग्य तीन बातें

1. रोज नियमित मात्रा में खनिज मिश्रण खिलाएं, खासकर ब्याने के आसपास के महीनों में।
2. गाय को रोज सुबह-शाम ध्यान से देखें और स्टैंडिंग हीट जैसे पक्के लक्षण पहचानें।
3. समय पर पशु चिकित्सक या कृत्रिम गर्भधान कार्यकर्ता की सलाह लें, खासकर बार-बार रिपीट होने की स्थिति में।

इन छोटी लेकिन जरूरी आदतों को अपनाकर गाय पालक न केवल गर्भधारण दर बढ़ा सकते हैं, बल्कि पशु का स्वास्थ्य और दूध उत्पादन भी बेहतर बना सकते हैं — जिसका सीधा फायदा किसान की आमदनी पर पड़ता है।

विवेक सजौरिया !! श्री !!
(सालवई वाले)

Mob.: 9827254232
8109320262
9926297033

श्री सिद्धगुरु खाद बीज भण्डार

खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक व खेरीज विक्रेता

हमारे यहाँ धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयाँ उचित मूल्य पर मिलती हैं।

गौतम पेट्रोल पम्प के सामने, भितरवार रोड, डबरा


डॉ. सुमन रावटे (वैज्ञानिक)

डॉ. जेनू झा (समन्वयक) कृषि-औद्योगिक जैव

प्रौद्योगिकी में उत्कृष्टता केन्द्र (सीओई-एआईबी)

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

टिशू कल्चर से जैविक खेती की ओर एक कदम

टिशू कल्चर तकनीक पौध उत्पादन की एक अत्याधुनिक और वैज्ञानिक विधि है, जिसमें पौधों को प्रयोगशाला के नियंत्रित और स्वच्छ वातावरण में विकसित किया जाता है। इस प्रक्रिया में पौधों को स्टेराइल मीडिया में रखा जाता है, जहाँ किसी भी प्रकार के बाहरी संक्रमण, रोगजनक या रासायनिक प्रदूषण का खतरा नहीं होता। पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व विशेष रूप से तैयार माध्यम में उपलब्ध कराए जाते हैं, जिससे उनकी वृद्धि पूरी तरह प्राकृतिक और सुरक्षित रहती है। चूँकि इस तकनीक में रासायनिक कीटनाशक या उर्वरकों का प्रयोग नहीं होता, इसलिए तैयार पौधे शुद्ध और रोगमुक्त होते हैं।

किसानों के लिए यह तकनीक अत्यंत लाभकारी है क्योंकि उन्हें एकसमान, उच्च गुणवत्ता वाली और स्वस्थ पौधे सामग्री प्राप्त होती है। खेत में लगाए गए ऐसे पौधे न केवल बेहतर उत्पादन देते हैं बल्कि जैविक खेती की दिशा में एक मजबूत आधार भी प्रदान करते हैं। रोगमुक्त पौधे सामग्री के कारण किसानों को बार-बार बीज बदलने या रसायनों का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके परिणाम स्वरूप मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है, पर्यावरण सुरक्षित रहता है और उपभोक्ताओं को रसायन मुक्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार, टिशू कल्चर तकनीक जैविक खेती की नींव को सुदृढ़ करती है और टिकाऊ कृषि की ओर एक महत्वपूर्ण कदम साबित होती है।

पर्यावरणीय लाभ

टिशू कल्चर तकनीक पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि इससे तैयार पौधे पूरी तरह रसायन मुक्त होते हैं। जब किसान इन पौधों को खेत में लगाते हैं, तो उन्हें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग नहीं करना पड़ता। इससे मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है और उसमें मौजूद सूक्ष्मजीवों तथा लाभकारी कीटों का संतुलन सुरक्षित रहता है। रसायनों के कम प्रयोग से जल स्रोतों में प्रदूषण नहीं फैलता और नदियों, तालाबों तथा भूजल की गुणवत्ता बनी रहती है। इसके अलावा, रोगमुक्त पौधे सामग्री के कारण फसलें अधिक स्थिर और टिकाऊ होती हैं। किसानों को बार-बार रसायनों का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिससे उत्पादन लागत घटती है और पर्यावरण पर दबाव कम होता है। जैव विविधता भी सुरक्षित रहती है क्योंकि प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में रसायनों का



हस्तक्षेप न्यूनतम होता है। इस प्रकार, टिशू कल्चर तकनीक न केवल किसानों को आर्थिक लाभ देती है बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी अहम भूमिका निभाती है।

उपभोक्ता की बढ़ती मांग

आज के समय में उपभोक्ता स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। जैविक उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है क्योंकि लोग रसायन मुक्त और सुरक्षित भोजन को प्राथमिकता दे रहे हैं। टिशू कल्चर से तैयार पौधों के माध्यम से किसान इस मांग को पूरा कर सकते हैं। जैविक फल, सब्जियाँ और अनाज न केवल घरेलू बाजार में लोकप्रिय हैं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी

इनकी मांग तेजी से बढ़ रही है। इससे किसानों को बेहतर मूल्य और निर्यात के अवसर मिलते हैं।

निष्कर्ष

टिशू कल्चर तकनीक केवल पौध उत्पादन की आधुनिक विधि नहीं है, बल्कि यह जैविक खेती की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। रसायन मुक्त पौधों की उत्पत्ति, पर्यावरणीय लाभ और उपभोक्ता की बढ़ती मांग इन तीनों पहलुओं को जोड़कर यह तकनीक किसानों को आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टि से सशक्त बनाती है। यदि इसे व्यापक स्तर पर अपनाया जाए, तो यह भारतीय कृषि को टिकाऊ और स्वास्थ्यप्रद बनाने में क्रांतिकारी योगदान दे सकती है।



SWARAJ

Deming Prize 2012



P. N. Gupta



Rishi Gupta
M. 9425736999, 8224004848
7999799399

SHREE PITAMBRA AUTOMOBILES

39/1668, Near Volkswagen Showroom, Jhansi Road, Lashkar-Gwalior (M.P.)
 Mob.: 94253-35532, 94257-36999,
 E-mail : shreepitambraautomobile2015@gmail.com



सुनील कुमार गुप्ता (पीएचडी शोधकर्ता, उद्यानिकी (पोस्ट हार्वेस्ट मैनेजमेंट) विभाग), महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

रोहित कुमार मिश्रा (कार्यक्रम सहायक)
दीनदयाल शोध संस्थान, केवीके चित्रकूट (उ.प्र.)

सप्ताह बाद ही पहली असली पत्तियों के आते हीकाटकर उपयोग किया जाता है। इन्हें विशेष बनाने वाली बात इनकी उत्पादन विधि है। स्प्राउट्स के विपरीत, जिन्हें जड़ों सहित खाया जाता है, माइक्रोग्रीन्स को मिट्टी या अन्य ग्राउंड माध्यम में उगाया जाता है और तने से काटकर उपयोग किया जाता है। इस कारण इनमें जीवाणुसंक्रमण का खतरा अपेक्षाकृत कम होता है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोग इनके तीव्र स्वाद, आकर्षक रंग और कोमल बनावट के कारण इन्हें बहुत पसंद करते हैं। ये केवल भोजन की सजावट के लिए उपयोग होने वाली सामग्री नहीं हैं, बल्कि पोषण और पाक-कला की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वैज्ञानिक शोध से पता चला है कि, माइक्रोग्रीन्स में उनके पूर्ण विकसित पौधों की तुलना में कई बार विटामिन, खनिज एवं एंटीऑक्सीडेंट का स्तर काफी अधिक होता है। इसलिए भोजन के पोषण मूल्य को बढ़ाने के लिए भी ये बहुत उपयोगी हैं। माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन छोटे घरेलू स्तर से लेकर बड़े व्यावसायिक स्तर तक किया जा सकता है। इन्हें साधारण मिट्टी की ट्रे से लेकर उन्नत मुद्राविहीन (हाइड्रोपोनिक) खेती प्रणाली में भी उगाया जा सकता है। इस प्रकार इनकी निरंतर आपूर्ति संभव है। हालांकि इनकी उपयोग अवधि (शेल्फ लाइफ) कम होती है, और पौधे बहुत नाजुक होते हैं, लेकिन इनकी तेज वृद्धि और कम स्थान में उत्पादन की क्षमता इन्हें एक उपयोगी एवं अपेक्षाकृत आसान फसल बनाती है।

पाक-कला एवं पोषण में महत्व- माइक्रोग्रीन्स अपने पाक उपयोग और पोषण संबंधी लाभों के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके स्वादजो प्रायः तीखा, मीठा या मिट्टी जैसा होता है—किसी भी व्यंजन के स्वाद को काफी बदल सकते हैं। रसोई में इनका उपयोग सलाद और सैंडविच में स्वाद, बनावट तथा पोषण बढ़ाने के लिए किया जाता है। इन्हें हल्की मात्रा में मिलाया जा सकता है तथा सूप के ऊपर स्वादिष्ट टॉपिंग के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा, इन्हें गार्निश के रूप में व्यंजन, ऑमलेट और फ्लैटब्रेड आदि को अंतिम रूप देने के लिए प्रयोग किया जाता है।

माइक्रोग्रीन्स के पोषण एवं औषधीय महत्व

पोषक तत्व	मात्रा	प्रमुख महत्व
विटामिन सी	32.72-80.45 मिलीग्राम/100 ग्राम	एंटीऑक्सीडेंट एवं सामान्य प्रतिरक्षा कार्य में सहायक
पोटेशियम	187.07-416.05 मिलीग्राम/100 ग्राम	द्रव संतुलन एवं सामान्य मांसपेशीय कार्य
कैल्शियम	67.18-148.63 मिलीग्राम/100 ग्राम	हड्डियों एवं दंतों के लिए आवश्यक
मैग्नीशियम	45.96-86.83 मिलीग्राम/100 ग्राम	विभिन्न एंजाइमीय एवं चयापचयी प्रक्रियाओं में भूमिका
फॉस्फोरस	2.57-4.88 मिलीग्राम/100 ग्राम	ऊर्जा चयापचय एवं कोशिकीय संरचना में महत्वपूर्ण
लोहा	524-2610 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	हीमोग्लोबिन निर्माण एवं ऑक्सीजन परिवहन में आवश्यक
मैंगनीज	176.32-350.56 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	एंजाइमीय प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण
जिंक	31.92-129.78 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	एंजाइमीय कार्य एवं सामान्य प्रतिरक्षा में भूमिका
तांबा	458.84-956.34 माइक्रोग्राम/100 ग्राम	लोहा चयापचय एवं एंजाइमीय कार्यों में भूमिका
कैरोटेनॉयड	विभिन्न प्रजातियों में उपस्थित	एंटीऑक्सीडेंट एवं पौधों के प्राकृतिक रंगद्रव्य
ग्लूकोसिनोलेट्स	मुख्यतः सरसों, मूली, ब्रोकली आदि में	महत्वपूर्ण जैव-सक्रिय यौगिक

नोट-उपरोक्त खनिज एवं विटामिन की मात्राएँ ताजा भार (Fresh Weight) के प्रति 100 ग्राम के आधार पर हैं।

औद्योगिक एवं अन्य उपयोग - माइक्रोग्रीन्स कम अवधि में तैयार होने वाली पौष्टिक खाद्य फसलें हैं, जिनका उपयोग आधुनिक शहरी कृषि एवं निर्यात वातावरण वाली खेती में तेजी से बढ़ रहा है। कम स्थान में उत्पादन तथा अल्प अवधि में तैयार होने के कारण ये ऊर्ध्वाधर खेती और शहरी कृषि के लिए उपयोगी हैं। उपयुक्त उत्पादन व्यवस्था अपनाने पर स्थानीय स्तर पर वर्षभर ताजा माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन किया जा सकता है। आकर्षक रंग, कोमल बनावट और विभिन्न प्रकार के स्वाद के कारण इनका उपयोग होटल, रेस्तरां तथा उच्च स्तरीय भोजन में सजावट एवं स्वाद बढ़ाने के लिए किया जाता है। इनसे स्वास्थ्यवर्धक पेय, मिश्रित सलाद तथा अन्य मूल्यवर्धित खाद्य उत्पाद भी तैयार किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, माइक्रोग्रीन्स में पाए जाने वाले जैव-सक्रिय यौगिकों के कारण इनका उपयोग पोषणवर्धक खाद्य पदार्थों एवं स्वास्थ्य संबंधी उत्पादों में संभावित रूप से किया जा रहा है। माइक्रोग्रीन्स हेतु उपयुक्त फसलें - कई सब्जियों, मसाला फसलों, अनाजों तथा

माइक्रोग्रीन्स: छोटे आकार में पोषण से परिपूर्ण

सुगंधित पौधों को माइक्रोग्रीन्स के रूप में उगाया जा सकता है। इनके चयन में अंकुरण क्षमता, वृद्धि की गति, स्वाद, रंग, पोषण गुणवत्ता तथा कटाई की अवस्था प्रमुख कारक हैं।

कुल	उपयुक्त फसलें	सामान्य विशेषताएँ
ब्रेसीकेसी	ब्रोकली, मूली, सरसों, पतागोभी	प्रायः तीखा, हल्का कड़वा या मसालेदार स्वाद; अधिकांश फसलें तेजी से बढ़ती हैं
अमरंथेसी	बुकंदर, चार्ड, पालक	आकर्षक रंग, कोमल पत्तियाँ तथा सामान्यतः हल्का मीठा स्वाद
एणिएसी	सोआ, सौंक, धनिया	सुगंधित पत्तियाँ; कुछ फसलों की वृद्धि अपेक्षाकृत धीमी
एस्टरेसी	लेट्यूस, धिकोरी	हल्का स्वाद; सलाद में उपयोग के लिए उपयुक्त
लेमिनेसी	तुलसी, पुदीना	विशिष्ट सुगंध एवं स्वाद; कुछ फसलों को तैयार होने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है
पोसी	गेहूँ, जौ, मक्का	मुख्यतः कोमल हरे अंकुरों हेतु उगाए जाते हैं; गेहूँ एवं जौ के अंकुरों का उपयोग पेय तैयार करने में किया जाता है

माइक्रोग्रीन्स के प्रमुख लाभ

- उच्च पोषण घनत्व** - माइक्रोग्रीन्स में विभिन्न विटामिन, खनिज तत्व, कैरोटेनॉयड, पॉलीफेनॉल तथा अन्य जैव-सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। इनकी पोषण संरचना फसल की प्रजाति, किस्म और उत्पादन परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग होती है।
- कम अवधि में उत्पादन** - अधिकांश माइक्रोग्रीन्स लगभग 1-3 सप्ताह में कटाई योग्य अवस्था में पहुँच जाते हैं। इससे कम अवधि में उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा उत्पादन चक्र को बार-बार दोहराना संभव होता है।
- कम स्थान की आवश्यकता** - माइक्रोग्रीन्स को छोटी ट्रे, रैक, खिड़की के पास उपलब्ध स्थान तथा ऊर्ध्वाधर खेती की संरचनाओं में उगाया जा सकता है। इसलिए सीमित भूमि वाले शहरी क्षेत्रों में भी इनका उत्पादन संभव है।
- रंग, स्वाद एवं बनावट में विविधता** - माइक्रोग्रीन्स विभिन्न रंगों, आकारों, सुगंधों और स्वादों में उपलब्ध होते हैं। इनका उपयोग सलाद, सूप, सैंडविच तथा अन्य खाद्य पदार्थों में स्वाद, रंग और सजावट बढ़ाने के लिए किया जाता है।

माइक्रोग्रीन्स की सीमाएँ

- कम भंडारण अवधि** - माइक्रोग्रीन्स अत्यंत कोमल एवं शीघ्र खराब होने वाले होते हैं। कटाई के बाद उचित तापमान एवं स्वच्छ परिस्थितियों में रखने के बावजूद इनकी भंडारण अवधि सीमित रहती है।
- एक बार कटाई वाली फसल** - अधिकांश माइक्रोग्रीन्स की कटाई एक ही बार की जाती है। कटाई के बाद सामान्यतः उसी पौधे से व्यावसायिक रूप से दूसरी फसल प्राप्त नहीं की जाती। अगली फसल के लिए पुनः बीज बोना पड़ता है।
- नियमित देखभाल की आवश्यकता** - यद्यपि माइक्रोग्रीन्स की उत्पादन अवधि कम होती है, लेकिन अंकुरण से कटाई तक नियमित निगरानी आवश्यक है। नमी, तापमान, प्रकाश, वायु संचार तथा स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है।
- सूक्ष्मजीवों का जोखिम** - अत्यधिक नमी, दूषित पानी, अस्वच्छ बीज, खराब वायु संचार तथा दूषित उत्पादन माध्यम के कारण फफूंद एवं हानिकारक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि हो सकती है। इसलिए स्वच्छ बीज, स्वच्छ ट्रे, सुरक्षित पानी तथा स्वच्छ उत्पादन माध्यम का उपयोग आवश्यक है।

माइक्रोग्रीन्स की उत्पादन तकनीक-माइक्रोग्रीन्स के उत्पादन में मुख्यतः निम्नलिखित दो विधियों का उपयोग किया जाता है—

मृदा/उत्पादन माध्यम आधारित विधि- यह माइक्रोग्रीन्स उत्पादन की सरल एवं अपेक्षाकृत कम लागत वाली विधि है। इसमें बीजों को उथली ट्रे में उपयुक्त उत्पादन माध्यम पर उगाया जाता है। **उत्पादन माध्यम-** जल निकास छिद्रों वाली उथली ट्रे में महीन एवं स्वच्छ उत्पादन माध्यम भरा जाता है। इसके लिए निम्न माध्यम उपयोग किए जा सकते हैं— * तैयार पौध उत्पादन मिश्रण * नारियल रेशा * अन्य स्वच्छ एवं जल निकास युक्त महीन माध्यम। उत्पादन माध्यम का स्वच्छ होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि दूषित माध्यम से पौध गलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

बीज की बुवाई - बीजों को उत्पादन माध्यम की सतह पर समान रूप से फैलाया जाता है। माइक्रोग्रीन्स के बीज सामान्य फसलों की तरह अधिक गहराई में नहीं बोए जाते। बुवाई के बाद हल्की फुहार द्वारा नमी प्रदान की जाती है।

अंकुरण एवं अंधकार अवधि - बुवाई के बाद ट्रे को कुछ समय के लिए ढककर रखने से बीजों में समान अंकुरण तथा प्रारंभिक वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।



कोमल गुप्ता विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, बस्तर (छ.ग.)

छत्रपाल सिंह पुहुप विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, जशपुर (छ.ग.)

प्रस्तावना- मूंगफली एक ऐसी फसल है जिसका कुल लेग्युमिनेसी होते हुये भी यह तिलहनी के रूप में अपनी विशेष पहचान रखती है। मूंगफली के दाने में 48-50 प्रतिशत वसा और 22-28% प्रोटीन तथा 26 प्रतिशत तेल पाया जाता है। मूंगफली की खेती 100 सेमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। यह भारत में दलहन, तिलहन, खादय व नकदी सभी प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं। तिलहनी फसलों की खेती में सरसों, तिल, सोयाबीन व मूंगफली आदि प्रमुख हैं। मूंगफली भारत की मुख्य महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है।

जलवायु व तापमान-मूंगफली एक ऊष्ण कटिबन्धीय पौधा है। इसके पौधों में वृद्धि व विकास के लिए ग्रीष्मकालीन जलवायु उत्तम रहती है। यह वायु और वर्षा द्वारा भूमि को कटने से बचाती है। 100 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मूंगफली की पैदावार अच्छी होती है। मूंगफली के फसल के लिए 21 से 27 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान उपयुक्त होती है।

प्रजातियाँ

1. **खरीफ प्रजातियाँ:** एस.बी.-11, जे.एल.-24, जी.जी.-20 आईसीजीएस-11, आईसीजीएस-37, आईसीजीएस-44।

2. **जायद प्रजातियाँ:** आईसीजीएस-1, आर-9251, टीजी37, आर-8808, सीजीएस-44, डीएच-86।

खेत की लिए तैयारी-मूंगफली की खेती करते समय खेत की तैयारी अच्छी तरह से करनी चाहिए। सबसे पहले खेत की गहरी जुताई करे उसके बाद दो-तीन बार जुताई देशी हल या फिर कल्टीवेटर से करके उसे भुरभुरा बना ले। जायद में आखिरी जुताई के बाद अच्छे से पाटा लगा कर खेत को समतल बना ले। जिससे की पानी लगाने में सुविधा रहे और सभी जगह पानी अच्छे से पहुँच सके। खेत की आखिरी तैयारी करने के समय 2.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से जिप्सम का उपयोग करे।

मृदा या भूमि-मूंगफली की खेती के लिये अच्छे जल निकास वाली, भुरभुरी दोमट व बलुई दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। मिट्टी पलटने वाले हल तथा बाद में कल्टीवेटर से दो जुताई करके खेत को पाटा लगाकर समतल कर लेना चाहिए। जमीन में दोमक व विभिन्न प्रकार के कीड़ों से फसल के बचाव हेतु क्रिनलफोस 1.5% 25 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से अंतिम जुताई के साथ जमीन में मिला देना चाहिए।

बीज एवं बुवाई-मूंगफली की बुवाई प्रायः मानसून शुरू होने के साथ ही हो जाती है। उत्तर भारत में यह समय सामान्य रूप से 15 जून से 15 जुलाई के मध्य का होता है। जायद मूंगफली की बुवाई 5 मार्च से 15 मार्च तक कर लेनी चाहिए।

मूंगफली की खेती दोनों मौसम: खरीफ और रबी या जायद में की जाती है। खरीफ फसल की अपेक्षा जायद में कीट और बीमारियों का खतरा बहुत कम होता है। मूंगफली खरीफ और जायद दोनों मौसम में ही उगाई जाने वाली फसल है। कम फैलने वाली किस्मों के लिये बीज की मात्रा 120-140 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर एवं फैलने वाली किस्मों के लिये 60-70 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर उपयोग में लेना चाहिए बुवाई के बीज निकालने के लिये स्वस्थ फलियों का चयन करना चाहिए या उनका प्रमाणित बीज ही बोना चाहिए। बोने से

मूंगफली की उन्नत खेती एवं प्रौद्योगिकी

10-15 दिन पहले गिरी को फलियों से अलग कर लेना चाहिए। बीज को बोने से पहले 3 ग्राम थाइरम या 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डिजिम दवा प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित कर लेना चाहिए। इससे बीजों का अंकुरण अच्छा होता है तथा प्रारंभिक अवस्था में लगने वाले विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाया जा सकता है। दोमक और सफेद लट से बचाव के लिये क्लोरोपायरीफास (20 ई.सी.) का 12.50 मि.ली. प्रति किलो बीज का उपचार बुवाई से पहले कर लेना चाहिए। मूंगफली को कतार में बोना चाहिए। गुच्छे वाली कम फैलने वाली किस्मों के लिये कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. तथा फैलने वाली किस्मों के लिये 45 से.मी. रखें। पौधों से पौधों की दूरी 10 से.मी. रखनी चाहिए। बुवाई हल के पीछे, हाथ से या सीड ड्रिल द्वारा की जा सकती है। भूमि की किस्म एवं नमी की मात्रा के अनुसार बीज जमीन में 5-6 से.मी. की गहराई पर बोना चाहिए।

1. **सीड प्लांटर यंत्र द्वारा मूंगफली की बुवाई करना** - इस विधि से अधिक क्षेत्रफल में कम समय में बुवाई कर सकते हैं। इस विधि से बुवाई करने पर बीज निश्चित गहराई व अंतराल सामान्य रूप से बोया जाता है। बीज की मात्रा के साथ-साथ प्रति इकाई क्षेत्र में बुवाई करने पर खर्च भी कम आता है।

2. **डिबलर द्वारा बुवाई करना** - कम क्षेत्रफल के लिए इस विधि से बुवाई कर सकते हैं किन्तु अधिक क्षेत्रफल में बुवाई हेतु यह बिल्कुल अव्यवहारिक है। इस विधि से बुवाई करने में श्रम व लागत अधिक लगती है।

खाद एवं उर्वरक - उर्वरकों का प्रयोग भूमि की किस्म, उसकी उर्वराशक्ति, मूंगफली की किस्म, सिंचाई की सुविधा आदि के अनुसार होता है। मूंगफली दलहन परिवार की तिलहनी फसल होने के नाते इसको सामान्य रूप से नाइट्रोजनधारी उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी हल्की मिट्टी में शुरुआत की बढवार हेतु 20-30 किग्रा नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 20-25 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर के हिसाब से देना लाभप्रद होता है। उर्वरकों की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय ही भूमि में मिला देना चाहिए। यदि कम्पोस्ट या गोबर की खाद उपलब्ध हो तो उसे बुवाई के 20-25 दिन पहले 5 से 10 टन प्रति है. खेत में बिखेर कर अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। अधिक उत्पादन के लिए अंतिम जुताई से पूर्व भूमि में 250 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति है. के हिसाब से मिला देना चाहिए।

नीम की खली का प्रयोग-नीम की खली के प्रयोग का मूंगफली के उत्पादन में अच्छा प्रभाव पड़ता है। अंतिम जुताई के समय 400 कि.ग्रा. नीम खली प्रति हैक्टर के हिसाब से देना चाहिए। नीम की खली से दोमक का नियंत्रण हो जाता है तथा पौधों को नत्रजन तत्वों की पूर्ति हो जाती है। नीम की खली के प्रयोग से 16 से 18 प्रतिशत तक की उपज में वृद्धि, तथा दाना मोटा होने के कारण तेल प्रतिशत में भी वृद्धि हो जाती है। दक्षिण भारत के कुछ स्थानों में अधिक उत्पादन हेतु जिप्सम भी प्रयोग में लेते हैं।

सिंचाई-मूंगफली खरीफ फसल होने के कारण इसमें सिंचाई की प्रायः आवश्यकता नहीं पड़ती। सिंचाई देना सामान्य रूप से वर्षा के वितरण पर निर्भर करता है फसल की बुवाई यदि जल्दी करनी हो तो एक पलेवा की आवश्यकता पड़ती है। यदि पौधों में फूल आते समय सूखे की स्थिति हो तो उस समय सिंचाई करना आवश्यक होता है। फलियों के विकास एवं गिरी बनने के समय भी भूमि में पर्याप्त नमी

की आवश्यकता होती है। जिससे फलियाँ बड़ी तथा खूब भरी हुई बनें। अतः वर्षा की

मात्रा के अनुरूप सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है। मूंगफली की फलियों का विकास जमीन के अन्दर होता है। अतः खेत में बहुत समय तक पानी भराव रहने पर फलियों के विकास तथा उपज पर बुरा असर पड़ सकता है। अतः बुवाई के समय यदि खेत समतल न हो तो बीच-बीच में कुछ मीटर की दूरी पर हल्की नालियाँ बना देना चाहिए। जिससे वर्षा का पानी खेत में बीच में नहीं रुक पाये और अनावश्यक अतिरिक्त जल वर्षा होते ही बाहर निकल जाए।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण-निराई गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण का इस फसल के उत्पादन में बड़ा ही महत्व है। मूंगफली के पौधे छोटे होते हैं। अतः वर्षा के मौसम में सामान्य रूप से खरपतवार से ढक जाते हैं। ये खरपतवार पौधों को बढ़ने नहीं देते। खरपतवारों से बचने के लिये कम से कम दो बार निराई गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली बार फूल आने के समय दूसरी बार 2-3 सप्ताह बाद जबकि पेग (नस्से) जमीन में जाने लगते हैं। इसके बाद निराई गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। जिन खेतों में खरपतवारों की ज्यादा समस्या हो तो बुवाई के 2 दिन बाद तक पेन्डीमेथालिन नामक खरपतवारनाशी की 3 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति है. छिड़काव कर देना चाहिए।

फसल चक्र-असिंचित क्षेत्रों में सामान्य रूप से फैलने वाली किस्में ही उगाई जाती हैं जो प्रायः देर से तैयार होती हैं। ऐसी दशा में सामान्य रूप से एक फसल ली जाती है। परन्तु गुच्छेदार तथा शीघ्र पकने वाली किस्मों के उपयोग करने पर अब साथ में दो फसलों का उगाया जाना ज्यादा संभव हो रहा है। सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई करके जल्दी बोई गई फसल के बाद गेहूँ की खासकर देरी से बोई जाने वाली किस्में उगाई जा सकती हैं।

रोग नियंत्रण-उगते हुए बीज का सड़न रोग: अपने बीजों को बोने से पहले 2.5 ग्राम थाइरम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से उपचारित कर लेना चाहिए।

रोजेट रोग-रोजेट (गुच्छश्रेण) मूंगफली का एक विषाणु (वाइरस) जनित रोग है इसके प्रभाव से पौधे अति बौने रह जाते हैं साथ पत्तियों में ऊतकों का रंग पीला पड़ना प्रारम्भ हो जाता है। यह रोग सामान्य रूप से विषाणु फैलाने वाली माहूँ से फैलता है अतः इस रोग को फैलने से रोकने के लिए पौधों को जैसे ही खेत में दिखाई दें, उखाड़कर फेंक देना चाहिए। इस रोग को फैलने से रोकने के लिए इमिडाक्लोरिपिड 1 मि.ली. को 3 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव कर देना चाहिए।

मूंगफली की माहु-सामान्य रूप से छोटे-छोटे भूरे रंग के कीड़े होते हैं। तथा बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होकर पौधों के रस को चूमते हैं। साथ ही वाइरस जनित रोग के फैलाने में सहायक भी होती है। इसके नियंत्रण हेतु इस रोग को फैलने से रोकने के लिए इमिडाक्लोरिपिड 1 मि.ली. को 1 ली. पानी में घोल कर छिड़काव कर देना चाहिए।

लीफ माइनर-लीफ माइनर के प्रकोप होने पर पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई पड़ने लगते हैं। इसके गिडार पत्तियों में अन्दर ही अन्दर हरे भाग को खाते रहते हैं और पत्तियों पर सफेद धारियाँ सी बन जाती हैं। इसका प्युषा भूरे लाल रंग का होता है इससे फसल की काफी हानि हो सकती है। मादा कीट छोटे तथा चमकीले रंग के होते हैं मुलायम तनों पर अण्डा देती है। इसकी रोकथाम के लिए इमिडाक्लोरिपिड 1 मि.ली. को 1 लीटर पानी में घोल छिड़काव कर देना चाहिए।



- डॉ. हनुमान प्रसाद पांडे (मृदा वैज्ञानिक)
डॉ. राम लखन सिंह यादव (सस्य वैज्ञानिक)
डॉ. डी.के. श्रीवास्तव (पशुपालन वैज्ञानिक)
डॉ. एस.के. वर्मा (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)
कृषि विज्ञान केंद्र, मनकापुर, गोंडा
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कुमारगंज अयोध्या

सतत कृषि हेतु मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

मृदा स्वास्थ्य का परिचय: मृदा स्वास्थ्य मृदा की वह क्षमता है जो एक महत्वपूर्ण जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में कार्य करती है जो इसके कार्यों को बनाए रखती है। मिट्टी एक जटिलतम वातावरण है जिसमें कई घटक होते हैं, जिनमें कार्बनिक पदार्थ, सूक्ष्म जीवों (सूक्ष्मजीवों) के समुदाय, हवा और पानी के छिद्र और खनिज शामिल हैं। दुख की बात है कि मानवीय गतिविधियाँ मिट्टी के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचा सकती हैं, जिसका असर पूरे पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। हालाँकि, कुछ कृषि पद्धतियाँ, जैसे पुनार्योजी खेती या एकीकृत कीट प्रबंधन, मिट्टी की रक्षा और उसे बहाल करने में मदद कर सकता है, ताकि यह अपने महत्वपूर्ण कार्यों को बनाए रख सके।

मृदा स्वास्थ्य के कार्य
स्वस्थ मिट्टी निम्नलिखित आवश्यक कार्यों को बनाए रखती है-

जल विनियमन: जल का भंडारण करता है और गति को नियंत्रित करता है।

पौधे और पशु जीवन के लिए सहायता: जैव विविधता और जीवों की उत्पादकता में योगदान देता है।

प्रदूषक फिल्टरिंग: खनिज और मृदा सूक्ष्मजीव प्रदूषकों को छान लेते हैं, जिससे भूजल की गुणवत्ता सुरक्षित रहती है।

पोषक तत्वों का आवर्तन: मृदा सूक्ष्मजीव फास्फोरस, नाइट्रोजन और कार्बन जैसे पोषक तत्वों के भंडारण और चक्रण में भाग लेते हैं।

शारीरिक स्थिरता और समर्थन: पौधों के विकास और मानव निर्माण में सहायता के लिए एक माध्यम के रूप में कार्य करता है।

स्वस्थ मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक पहलुओं को समझना

मृदा स्वास्थ्य तीन मुख्य मृदा गुणों का संयोजन है-

भौतिक गुण: दृश्य संकेतक, जिसमें मृदा संरचना, समुच्चय स्थिरता, क्लस्टिंग और संघनन, पारगम्यता, बनावट, संरंध्रता आदि शामिल हैं।

रासायनिक गुण: वे मिट्टी में होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं, उदाहरण के लिए, पोषक तत्वों की उपलब्धता, पीएच, लवणता आदि।

जैविक गुण: इसमें दृश्य संकेतक जैसे केंचुआ, कोलेम्बोला, माइट आदि जैसे वृहद जीव और उनकी गतिविधियाँ तथा उपोत्पाद शामिल हैं। ये सभी पहलू गतिशील रूप से परस्पर क्रिया करते हैं और साथ मिलकर स्वस्थ मिट्टी को बढ़ावा दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, मिट्टी की संरचना जल प्रतिधारण को प्रभावित करती है, जो सूक्ष्मजीवों के लिए एक अच्छा वातावरण बनाती है।

मृदा स्वास्थ्य क्यों महत्वपूर्ण है? मिट्टी कृषि का आधार है और पोषक तत्व, स्वच्छ हवा और पानी प्रदान करके पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखती है। स्वस्थ मिट्टी मजबूत पौधों को उगाने, फसल की पैदावार बढ़ाने, खाद्य उत्पादन और खाद्य सुरक्षा में मदद करती है। स्वस्थ मिट्टी वातावरण से कार्बन को भी संग्रहीत करती है, जिससे

जलवायु परिवर्तन कम होता है। दुर्भाग्यवश, गहन कृषि, वनों की कटाई, कटाव, प्रदूषण, तथा अनुचित उर्वरक एवं प्रयोग सहित कई कारणों से दुनिया भर में मृदा स्वास्थ्य खतरे में है। विश्व स्तर पर, एफएओ की रिपोर्ट है कि 33 ब मृदा, मृदा क्षरण से प्रभावित हो चुकी है, मिट्टी के क्षरण और खराब मिट्टी के स्वास्थ्य के परिणाम खेती के लिए अच्छी मिट्टी के नुकसान से कहीं आगे तक जाते हैं। वे मानव कल्याण और पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, चूँकि खराब मिट्टी में पानी कम होता है, इसलिए यह पौधों के लिए उपलब्ध पानी की मात्रा को कम कर सकता है और सूखे को और भी बदतर बना सकता है।

मृदा निम्निकरण क्या है?— मृदा क्षरण मृदा की गुणवत्ता में भौतिक, रासायनिक और जैविक गिरावट है, जो मानवीय गतिविधियों या प्राकृतिक प्रक्रियाओं के कारण हो सकती है। मृदा क्षरण को प्रभावित करने वाले कारकों में शामिल हैं—

* मृदा संघनन भारी कृषि मशीनरी, अत्यधिक जुताई और मिट्टी को खाली छोड़ देने से मिट्टी को नुकसान पहुँचता है। संकुचित मिट्टी में हवा, पानी और पौधों की जड़ों के आवागमन के लिए पर्याप्त जगह नहीं होती। * मृदा अपरदन या मिट्टी की ऊपरी परत का उसके बनने की दर से ज्यादा तेजी से नष्ट होना। यह परत मिट्टी का उपजाऊ हिस्सा है और पौधों की वृद्धि के लिए जरूरी है। कटाव मुख्य रूप से जुताई और वनों की कटाई के बाद मिट्टी के जलवायु परिस्थितियों के संपर्क में आने के कारण होता है। मिट्टी के कटाव से जल निकायों में प्रदूषण भी बढ़ सकता है। * रासायनिक प्रदूषण कीटनाशकों, उर्वरकों और अन्य औद्योगिक रसायनों से मिट्टी में होने वाले प्रदूषण से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, मिट्टी के जीवों की मात्रा और विविधता कम हो जाती है और मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है।

* जुताई इससे वातावरण में कार्बन निकलता है, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ता है और मिट्टी की सेहत खराब होती है। कुल मिलाकर, यह जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। मिट्टी के क्षरण के परिणाम स्वरूप, मिट्टी की गुणवत्ता पोषक तत्वों में खराब हो जाती है और पानी धारण करने की क्षमता खो देती है। इससे खाद्य उत्पादन में कमी आती है; सबसे खराब स्थिति में, खराब मिट्टी अब पौधों की वृद्धि का समर्थन नहीं कर सकती है। हमें हर कीमत पर मृदा स्वास्थ्य की रक्षा करनी होगी ताकि मृदा अपना कार्य जारी रख सके तथा पर्यावरण और मानव कल्याण की रक्षा कर सके।

बागवानी के लिए मिट्टी का स्वास्थ्य कैसे सुधारे?

आप घर पर अपने बगीचे में मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ावा दे सकते हैं— * खाद बनाना उदाहरण के लिए, खाद्य अपशिष्ट, घास की कतरन या पौधों के मलबे से। ऐसा करके, आप रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से बच सकते हैं।

* मल्टिचिंग मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है तथा मृदा सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ावा मिलता है।

* जैविक नियंत्रण का उपयोग प्रकृति-आधारित हैं पर्यावरण के अनुकूल उत्पाद की अपने बगीचे को कीट और बीमारियों से बचाए और पौधों के स्वास्थ्य में सुधार करे।

मृदा स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए कृषि पद्धतियाँ— जबकि कृषि मृदा स्वास्थ्य में गिरावट का एक कारण, ऐसे कई कृषि अभ्यास हैं जो इस प्रवृत्ति को उलट सकते हैं और मृदा स्वास्थ्य को

बहाल करने में मदद कर सकते हैं। इनका पालन करके, उत्पादक ये कर सकते हैं—

* **रसायनों का प्रयोग कम करें जैसे प्रकृति-आधारित समाधानों को चुनकर जैव नियंत्रण और जैवसंरक्षण उत्पाद जिनके कई फायदे हैं।** ये प्राकृतिक उत्पाद गैर-लक्ष्य जीवों के लिए सुरक्षित हैं और मिट्टी की जैव विविधता को संरक्षित करते हैं। * **खेतों में वापस जाने वाले कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि करना** फसल अवशेषों को मिट्टी की सतह पर छोड़कर या जैविक गीली घास का उपयोग करके कवर फसल के साथ। * **मशीनरी और पशुधन से मिट्टी के संघनन को कम करना** न्यूनतम या शून्य जुताई और चारागाह प्रबंधन के माध्यम से अति-चारण से बचा जा सकता है। इससे मिट्टी में होने वाली गड़बड़ी कम होती है, जिससे मिट्टी की सेहत को फिर से बेहतर बनाने में मदद मिलती है। * **फसलों को घुमाएँ** कीटों और बीमारियों के चक्र को तोड़ने के लिए मिट्टी के ऊपर और अंदर विविधता बढ़ाना। फलियाँ रोटेशन के लिए अच्छी फसलें हैं क्योंकि वे मिट्टी में नाइट्रोजन बढ़ाती हैं।

कृषि प्रणाली में मृदा स्वास्थ्य में सुधार के अन्य तरीके हैं—

* **जल प्रबंधन पेड़-पौधे और झाड़ियाँ लगाकर।** इससे मिट्टी में पानी की घुसपैठ बढ़ सकती है। मल्टिचिंग जैसी अन्य तकनीकें पानी बचाने में मदद करती हैं।

* **पोषक तत्वों का प्रबंधन** पोषक तत्वों की अधिकता को कम करने के लिए खाद और उर्वरकों का सावधानीपूर्वक नियोजन और प्रयोग करना।

* **एकीकृत कीट प्रबंधन** कीटों से स्थायी रूप से निपटने के लिए। इससे अवांछित पर्यावरणीय प्रभाव सीमित हो जाते हैं।

मृदा स्वास्थ्य में कार्बनिक पदार्थों की भूमिका

* कार्बनिक पदार्थ वह पदार्थ है जो मूल रूप से जीवित जीवों (पौधों और जानवरों) द्वारा उत्पादित होता है और आगे अपघटन के लिए मिट्टी में वापस भेज दिया जाता है। * कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध मिट्टी में जैव विविधता होती है, जैसे बैक्टीरिया, वायरस और कवक, लेकिन साथ ही लाभकारी कीड़े या कृमि जैसे वृहद जीव भी होते हैं। * मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मौजूदगी मैक्रो- और माइक्रोबियल जीवों के लिए पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में आवश्यक है। ये जीव पौधों द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों को तोड़ते हैं।

मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और जैव विविधता का महत्व— कार्बनिक पदार्थ मिट्टी को कार्य करने में मदद करते हैं और इसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कई तरीकों से प्रभावित करते हैं, जैसे— * **मृदा संरचना में सुधार** * **मृदा पीएच, तापमान और वायु संचार को विनियमित करना** * **सूक्ष्मजीव गतिविधि और विविधता को बढ़ावा देना** * **पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करता है** * **रोग दमन को बढ़ाना** * **जल अवशोषण और अवधारण को बढ़ाना** * **मृदा अपरदन को कम करना, उपजाऊ भूमि को हानि से बचना।** इसलिए समग्र मृदा स्वास्थ्य और उर्वरता को बढ़ाने तथा मृदा जैव विविधता को बढ़ाने के लिए कार्बनिक पदार्थ महत्वपूर्ण हैं। संभवतः, पोषक तत्वों और पानी के चक्रण के साथ-साथ कीटों के दमन के लिए मृदा जैव विविधता आवश्यक है, जो सभी पौधों की वृद्धि और स्वास्थ्य का समर्थन करते हैं। दूसरे शब्दों में, मृदा जैव विविधता हमें भोजन और स्वच्छ जल प्रदान करती है।



सिद्धार्थ मिश्रा, बलवीर गौतम

धीरज कुमार (शोध छात्र)

ऐ.के. सिंह प्राध्यापक, सस्य विज्ञान संकाय, आचार्य
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज,
अयोध्या-224229 (उ.प्र.)

प्रस्तावना

भूमि एक सीमित और अत्यंत महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जिसकी उत्पादकता बनाए रखना खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है। भूमि फसल उत्पादन के साथ जल पुनर्भरण, कार्बन संचयन, पोषक तत्वों के चक्रण, जैव-विविधता संरक्षण तथा ग्रामीण आजीविका में योगदान देती है। मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में दीर्घकालिक गिरावट को भूमि क्षरण कहा जाता है, जिससे उसकी उर्वरता, जलधारण क्षमता और उत्पादकता घटती है। भूमि पुनर्वास का उद्देश्य क्षरण को रोककर भूमि की उत्पादकता एवं पारिस्थितिकीय कार्यों को पुनर्स्थापित करना है। वर्तमान में यह दृष्टिकोण सतत भूमि प्रबंधन और भूमि क्षरण तटस्थता पर केंद्रित है।

बंजर एवं क्षरित भूमि की प्रमुख समस्याएं

भूमि के बंजर एवं क्षरित होने में प्राकृतिक तथा मानवजनित दोनों कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अत्यधिक वर्षा और जल बहाव से मृदा अपरदन, जबकि शुष्क क्षेत्रों में पवन अपरदन प्रमुख समस्या है। लगातार एक ही फसल उगाने, अवशेष जलाने, अत्यधिक जुताई तथा अस्तुलित उर्वरक प्रयोग से मृदा की उर्वरता एवं जैविक गुणवत्ता घटती है। अत्यधिक सिंचाई और खराब जलनिकास से जलभराव, लवणता एवं क्षारीयता बढ़ती है। वनों की कटाई, खनन, अतिचारण और अनियोजित भूमि उपयोग भी क्षरण को बढ़ाते हैं। जलवायु परिवर्तन से सूखा एवं अनियमित वर्षा जैसी समस्याएँ और गंभीर हो रही हैं। अतः पुनर्वास से पहले भूमि का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है।

भूमि पुनर्वास की वैज्ञानिक प्रक्रिया

भूमि पुनर्वास का पहला चरण क्षरित भूमि का वैज्ञानिक निदान एवं मूल्यांकन है। इसमें मृदा की गहराई, बनावट, संरचना, श्ल, विद्युत चालकता, जैविक कार्बन, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश, सूक्ष्म पोषक तत्व तथा जलधारण क्षमता का परीक्षण किया जाता है। साथ ही भूमि की ढाल, जलनिकास, भू-आकृति, भूमि उपयोग एवं वनस्पति आवरण का आकलन आवश्यक है। रिमोट सेंसिंग, GIS, ड्रोन, GPS तथा डिजिटल मृदा मानचित्रण जैसी आधुनिक तकनीकें क्षरित भूमि की पहचान और प्राथमिकता निर्धारण में सहायक हैं। इसके आधार पर भूमि को क्षरण की प्रकृति के अनुसार प्रबंधन इकाइयों में विभाजित कर उपयुक्त संरक्षण, जलनिकास, मृदा सुधार एवं वनस्पति पुनर्स्थापना उपाय अपनाए जाते हैं।

मृदा एवं जल संरक्षण आधारित पुनर्वास

क्षरित भूमि के पुनर्वास में मृदा अपरदन नियंत्रण एवं जल संरक्षण प्रमुख उपाय हैं। ढाल भूमि पर समोच्च जुताई, मेडबंदी, घास पट्टियाँ, पत्थर की मेड, टेरेसिंग तथा छोटे जल-संग्रह ढाँचे अपनाकर वर्षाजल के बहाव की गति कम की जा सकती है। इससे मृदा अपरदन घटने तथा जल अंतःस्खरण में वृद्धि होती है। वर्षा जल संचयन के लिए खेत तालाब, चेक डैम, कट्टर ट्रेच, परकोलेशन टैंक और जल-संग्रह गड्ढों का निर्माण उपयोगी है। इन उपायों से भूजल पुनर्भरण, मृदा नमी, जलधारण क्षमता तथा वनस्पति विकास में सुधार होता है। संरक्षण उपायों का चयन भूमि की ढाल, मृदा, वर्षा और जलनिकास की स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

बंजर एवं क्षरित भूमि का पुनर्वास : सतत भूमि प्रबंधन की नई दिशा



मृदा जैविक कार्बन और उर्वरता में सुधार

बंजर एवं क्षरित भूमि में जैविक पदार्थ की कमी से मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता और पोषक तत्व उपलब्धता प्रभावित होती है। इसके सुधार हेतु कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, हरी खाद, फसल अवशेष, जैव-चार तथा जैव उर्वरकों का उपयोग किया जा सकता है। जैविक पदार्थ मृदा संरचना को सुधारने, सूक्ष्मजीवी गतिविधि बढ़ाने और जलधारण क्षमता में वृद्धि करने में सहायक है। पोषक तत्व प्रबंधन के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) अपनाना अधिक प्रभावी है, जिसमें जैविक एवं खनिज स्रोतों का संतुलित उपयोग किया जाता है। मृदा जैविक कार्बन भूमि स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण सूचक है और इसके स्तर में सुधार भूमि पुनर्वास की सफलता को दर्शाता है।

कृषि-वनीकरण एवं उपयुक्त वनस्पतियों की भूमिका

बंजर एवं क्षरित भूमि के पुनर्वास में कृषि-वनीकरण प्रभावी रणनीति है। स्थानीय जलवायु एवं मृदा के अनुरूप वृक्षों, झाड़ियों, घास तथा कृषि फसलों का संयोजन स्थायी वनस्पति आवरण विकसित करता है। वृक्षों की जड़ें मृदा को बाँधकर अपरदन कम करती हैं, जबकि पत्तियाँ एवं जैव-अवशेषों से मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ता है। क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार नीम, करंज, बबूल, शीशम, अर्जुन, बेर, खेजड़ी तथा अन्य सूखा-सहिष्णु स्थानीय प्रजातियों का चयन किया जा सकता है। प्रजातियों का चयन वर्षा, मृदा, तापमान, जल उपलब्धता और स्थानीय उपयोगिता के आधार पर करना चाहिए, ताकि पुनर्वास दीर्घकालिक एवं टिकाऊ हो।

लवणीय एवं क्षारीय भूमि का पुनर्वास

भारत में लवणीय एवं क्षारीय भूमि कृषि उत्पादकता को प्रभावित करती है। पुनर्वास हेतु मृदा एवं सिंचाई जल की जाँच आवश्यक है। क्षारीय भूमि में जिप्सम, जैविक पदार्थ, उचित जलनिकास तथा सहनशील फसलों का प्रयोग किया जा सकता है। लवणीय भूमि में नियंत्रित सिंचाई और प्रभावी जलनिकास उपयोगी है। दीर्घकालिक सुधार के लिए जल प्रबंधन, जैविक पदार्थ एवं उपयुक्त फसल प्रणाली का समन्वित उपयोग आवश्यक है।

संरक्षण कृषि और पुनर्वास

संरक्षण कृषि क्षरित भूमि के पुनर्वास में प्रभावी भूमिका निभाती है। न्यूनतम या शून्य जुताई, फसल अवशेष संरक्षण तथा फसल

विविधीकरण से मृदा अपरदन घटता और जैविक कार्बन संरक्षित रहता है। दलहनी फसलों से नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं पोषक तत्व चक्रण बढ़ता है। मल्टिचंग, कवर क्रॉप और बहुफसली प्रणालियाँ मृदा सतह को ढककर नमी संरक्षण, जैविक गतिविधि और मृदा स्वास्थ्य में सुधार करती हैं।

आधुनिक तकनीक और निगरानी

भूमि पुनर्वास में डिजिटल कृषि एवं भू-स्थानिक तकनीकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उपग्रह चित्रों से वनस्पति सूचकांक, भूमि आवरण एवं उपयोग परिवर्तन की निगरानी, जबकि ड्रोन से सूक्ष्म स्तर पर मृदा क्षरण, जलनिकास और वनस्पति स्थापना का आकलन किया जा सकता है। पुनर्वास की सफलता के लिए मृदा जैविक कार्बन, अपरदन दर, जलधारण क्षमता, जैव-विविधता और उत्पादकता जैसे संकेतकों की निरंतर निगरानी आवश्यक है।

आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण

भूमि पुनर्वास की स्थिरता स्थानीय समुदायों को आर्थिक लाभ से जुड़ी होने पर बढ़ती है। फलदार वृक्ष, चारा उत्पादन, कृषि-वनीकरण, मधुमक्खी पालन, औषधीय पौधे, बांस तथा गैर-काष्ठ वन उत्पाद आय के अतिरिक्त स्रोत बन सकते हैं। साथ ही, सुरक्षित भूमि-अधिकार किसानों एवं समुदायों को दीर्घकालिक भूमि प्रबंधन में निवेश के लिए प्रोत्साहित करते हैं। अतः आर्थिक अवसरों और उत्तरदायी भूमि-अधिकार व्यवस्था को पुनर्वास रणनीति में शामिल करना आवश्यक है।

भविष्य की दिशा

भविष्य में भूमि पुनर्वास को अलग-अलग परियोजनाओं के बजाय समेकित परिरक्षक प्रबंधन का हिस्सा बनाना आवश्यक है। इसमें खेत, चरागाह, वन, जलस्रोत एवं सामुदायिक भूमि को परस्पर जुड़ी प्रणाली के रूप में प्रबंधित किया जाता है। FAO के 2026 आकलन में भी भूमि क्षरण को रोकने, घटाने और उलटने हेतु समेकित उत्पादक परिरक्षक प्रबंधन पर जोर दिया गया है। भारत में यह दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

बंजर एवं क्षरित भूमि का पुनर्वास केवल वृक्षारोपण नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण, जैव-विविधता, कृषि उत्पादकता और ग्रामीण आजीविका का समेकित प्रबंधन है। इसके लिए भूमि क्षरण का वैज्ञानिक निदान, स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप उपचार तथा दीर्घकालिक निगरानी आवश्यक है। मृदा एवं जल संरक्षण, जैविक पदार्थ, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, संरक्षण कृषि, कृषि-वनीकरण, नियंत्रित सिंचाई और भू-स्थानिक तकनीकों का समन्वय भूमि को पुनः उत्पादक बना सकता है। सतत भूमि प्रबंधन दीर्घकालिक उत्पादकता, पारिस्थितिकीय सेवाओं और भूमि क्षरण तटस्थता को मजबूत करता है।



आशीष रजक सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय,
प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विपिन कुमार कृषि संकाय, तिलक धारी
पीजी कॉलेज, जौनपुर

माता प्रसाद प्रजापति कृषि संकाय, चंद्र
शेखर आजाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कानपुर

डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक
प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू
भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय,
प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. संजीव यादव प्रोफेसर, एग्रीनॉमी विभाग, चंद्रशेखर
आजाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि. (CSAUA&T)- कानपुर (उ.प्र.)

1. परिचय- मक्का (Zea mays L.) विश्व की प्रमुख अनाज फसलों में से एक है, जिसका उपयोग खाद्य, पशु आहार तथा औद्योगिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। मक्का की विभिन्न श्रेणियों में स्वीट कॉर्न एक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय फसल है। स्वीट कॉर्न को सामान्य मक्का की तुलना में इसकी कोमल अवस्था में तोड़ा जाता है तथा इसमें घुलनशील शर्करा की मात्रा अधिक होने के कारण इसका स्वाद मीठा होता है। वर्तमान समय में शहरीकरण, आय में वृद्धि तथा पौष्टिक एवं ताजे खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग के कारण स्वीट कॉर्न की मांग लगातार बढ़ रही है।

स्वीट कॉर्न की अच्छी वृद्धि, अधिक उपज और बेहतर गुणवत्ता के लिए पौधों को संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैश के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों की वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पोषक तत्वों की कमी या असंतुलित उपयोग से पौधे की ऊँचाई, पत्तियों की संख्या, पत्ती क्षेत्र, तने की वृद्धि, भुट्टे का आकार तथा दानों की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। वर्तमान कृषि में रासायनिक उर्वरकों के लगातार एवं असंतुलित प्रयोग से मृदा की गुणवत्ता, जैविक पदार्थ, सूक्ष्मजीव गतिविधि तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की चिंता बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में जैविक पोषक स्रोत कृषि उत्पादन को अधिक टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जैविक पोषक स्रोतों में गोबर की खाद (FYM), वर्मी कम्पोस्ट, मुर्री की खाद, बकरी की खाद, हरी खाद तथा जैव उर्वरक प्रमुख हैं। गोबर की खाद मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने के साथ-साथ धीरे-धीरे पोषक तत्व उपलब्ध कराती है। वर्मी कम्पोस्ट में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के साथ लाभकारी सूक्ष्मजीव भी पाए जाते हैं। मुर्री एवं बकरी की खाद अपेक्षाकृत अधिक पोषक तत्व प्रदान कर सकती हैं। इसी प्रकार जैव उर्वरक पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराने तथा मृदा में सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं।

स्वीट कॉर्न में जैविक पोषक स्रोतों के प्रयोग से पौधे की ऊँचाई, पत्ती क्षेत्र, पत्तियों की संख्या, तने की मोटाई, भुट्टे की लंबाई एवं मोटाई, प्रति पौधा भुट्टे का वजन, उपज तथा गुणवत्ता जैसे विभिन्न गुण प्रभावित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त घुलनशील ठोस पदार्थ शर्करा तथा अन्य गुणवत्ता संबंधी विशेषताओं पर भी पोषण प्रबंधन का प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए विभिन्न जैविक पोषक स्रोतों तथा उनके संयोजन का स्वीट कॉर्न की वृद्धि, उपज एवं गुणवत्ता पर प्रभाव जानना आवश्यक है। इस प्रकार का अध्ययन

जैविक पोषक स्रोतों का मक्का (स्वीट कॉर्न) की वृद्धि, उत्पादन और गुणवत्ता पर असर

किसानों के लिए उपयुक्त पोषक प्रबंधन प्रणाली विकसित करने तथा कम लागत, टिकाऊ और मृदा स्वास्थ्य-अनुकूल स्वीट कॉर्न उत्पादन को बढ़ावा देने में उपयोगी हो सकता है।

2. जैविक पोषक स्रोत- वे प्राकृतिक पदार्थ हैं जिनसे फसलों को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं और मृदा की उर्वरता एवं जैविक गतिविधि में सुधार होता है। स्वीट कॉर्न में इनका प्रयोग वृद्धि, उपज तथा गुणवत्ता सुधारने के उद्देश्य से किया जा सकता है।

गोबर की खाद (FYM) - मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाती है और धीरे-धीरे पोषक तत्व उपलब्ध कराती है।

वर्मी कम्पोस्ट- इसमें पौधों के लिए उपलब्ध पोषक तत्व तथा लाभकारी सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं।

पोल्ट्री खाद- इसमें अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में नाइट्रोजन एवं अन्य पोषक तत्व होते हैं।

बकरी की खाद- पोषक तत्वों का अच्छा जैविक स्रोत है और मृदा उर्वरता में योगदान करती है।

हरी खाद- मृदा में जैविक पदार्थ तथा नाइट्रोजन बढ़ाने में सहायक होती है। जैव उर्वरक- Azospirillum जैसे सूक्ष्मजीव पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराने तथा जड़ विकास में सहायता कर सकते हैं।

3. स्वीट कॉर्न की वृद्धि पर प्रभाव- जैविक पोषक स्रोतों के प्रयोग से पौधों की वृद्धि में सकारात्मक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। पर्याप्त पोषण मिलने पर पौधे की ऊँचाई, पत्तियों की संख्या, तना मोटाई और पत्ती क्षेत्र में वृद्धि होती है। जैविक खादों के कारण पोषक तत्वों की उपलब्धता लंबे समय तक बनी रह सकती है।

मुख्य वृद्धि पैरामीटर- पौधे की ऊँचाई (cm), पत्तियों की संख्या, पत्ती क्षेत्र (Leaf Area), Leaf Area Index (LAI), तने की मोटाई (cm), पौधे का सूखा पदार्थ (Dry Matter)

4. उपज एवं उपज घटकों पर प्रभाव- स्वीट कॉर्न की उपज मुख्य रूप से भुट्टे के आकार, दानों की संख्या तथा दानों के विकास पर निर्भर करती है। संतुलित जैविक पोषण से पौधों की वृद्धि बेहतर होने पर भुट्टे

की लंबाई और मोटाई में सुधार हो सकता है।

उपज से संबंधित प्रमुख पैरामीटर- भुट्टे की लंबाई (cm), भुट्टे का व्यास (cm), प्रति पौधा भुट्टों की संख्या, प्रति भुट्टे दानों की संख्या, 100 दानों का वजन, हरे भुट्टे की उपज कुल उपज (t/ha)

5. गुणवत्ता पर प्रभाव- स्वीट कॉर्न की बाजार कीमत केवल उपज पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसकी गुणवत्ता भी महत्वपूर्ण होती है। जैविक पोषक प्रबंधन से दानों की मिठास, कोमलता तथा पोषण गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।

मुख्य गुणवत्ता पैरामीटर- कुल घुलनशील ठोस पदार्थ, कुल शर्करा, प्रोटीन प्रतिशत, नमी प्रतिशत, विटामिन सी, दानों की कोमलता

6. मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव- जैविक खादों के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। इससे मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार हो सकता है। जैविक पदार्थों के अपघटन से पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं और मृदा की दीर्घकालीन उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

7. आर्थिक प्रभाव- जैविक पोषक स्रोतों का प्रयोग करने से उत्पादन लागत स्रोत, मात्रा और उपलब्धता के अनुसार बदल सकती है। यदि स्थानीय स्तर पर गोबर की खाद कम्पोस्ट या अन्य जैविक खाद उपलब्ध हो, तो पोषक प्रबंधन की लागत कम की जा सकती है। आर्थिक अध्ययन में निम्नलिखित का आकलन किया जाता है-

8. निष्कर्ष- स्वीट कॉर्न में जैविक पोषक स्रोतों का उचित एवं संतुलित उपयोग पौधों की वृद्धि, उपज, गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, पोल्ट्री खाद, बकरी की खाद, हरी खाद तथा जैव उर्वरकों का प्रयोग पोषक तत्वों की उपलब्धता और मृदा की जैविक सक्रियता को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। इसलिए स्वीट कॉर्न के टिकाऊ उत्पादन के लिए जैविक पोषक प्रबंधन एक महत्वपूर्ण शोध विषय है। विभिन्न जैविक स्रोतों और उनके संयोजन की तुलना करके स्थानीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त पोषक प्रबंधन प्रणाली निर्धारित की जा सकती है।

॥ राधे-राधे ॥

Mob.: 9522754421
हरिकृष्णा 6265841386

कामतानाथ खाद एवं बीज भण्डार

हमारे यहाँ सभी प्रकार के खाद, बीज एवं उच्च कोटि के कीटनाशक दवाईयों के थोक व खेरीज विक्रेता

Email_ umashankarawat15101995@gmail.com

जवाहरगंज, पशु अस्पताल के पास, भितरवार रोड, डबरा



✍ **राम लखन सोनी** (पीएचडी शोध छात्र)
मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग

✍ **दीपक कुमार** (पीएचडी शोध छात्र)
मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग

✍ **अंकित सिंह** (पीएचडी शोध छात्र) मृदा
विज्ञान और कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव
कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या

✍ **ऋतुराज** (पीएचडी शोध छात्र) भूमि संरक्षण
एवं जल प्रबंधन विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कानपुर (उ.प्र.)

परिचय: 21वीं सदी में वैश्विक कृषि के सामने दोहरी चुनौती है: पहली, बढ़ती आबादी के लिए प्रचुर मात्रा में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना और दूसरी, अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृत हो चुकी मिट्टी को पुनर्जीवित करना। हरित क्रांति ने हमें खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर तो बनाया, लेकिन इसके साइड-इफेक्ट्स के रूप में मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की भारी कमी हो गई है। इस संकट के समाधान के रूप में 'भूरी खाद' तकनीक आधुनिक टिकाऊ कृषि में एक क्रांतिकारी कदम बनकर उभरी है। यह पारंपरिक हरी खाद का ही एक उन्नत और समय-बचाने वाला विकल्प है, जो विशेष रूप से धान की सीधी बुआई में मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता बढ़ाने के लिए उपयोग किया जा रहा है। भूरी खाद एक आधुनिक और पर्यावरण-अनुकूल कृषि तकनीक है,

भूरी खाद क्या है? यह हरी खाद का ही एक संशोधित रूप है। इसमें मुख्य फसल जैसे- धान के साथ ही सह-फसल के रूप में ढ़ैचा जैसी दलहनी फसल उगाई जाती है। बाद में इन्हें रसायनों द्वारा सुखाकर खेत में ही छोड़ दिया जाता है, जिससे खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मिट्टी की उपजाऊ क्षमता बढ़ती है।

भूरी खाद की प्रक्रिया

- बुवाई:** मुख्य फसल के साथ ही ढ़ैचा के बीजों को खेत में बो दिया जाता है।
- वृद्धि:** लगभग 25-30 दिनों तक दोनों फसलें एक साथ बढ़ती हैं।
- सूखना:** बुवाई के 25-30 दिन बाद, एक चयनात्मक शाकनाशी, जैसे- 2,4-D का छिड़काव किया जाता है।
- रंग परिवर्तन:** शाकनाशी के प्रभाव से ढ़ैचा की फसल सूखकर भूरे रंग की हो जाती है और खेत में ही बिछ जाती है। इसीलिए इसे भूरी खाद कहा जाता है।

आधुनिक कृषि में भूरी खाद की आवश्यकता क्यों?

परंपरागत रूप से, किसान मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए गोबर की खाद या हरी खाद का उपयोग करते थे। लेकिन आधुनिक युग में निम्नलिखित कारणों से भूरी खाद की आवश्यकता बढ़ गई है:

आधुनिक कृषि में भूरी खाद की उपयोगिता



1. पशुधन की कमी: ग्रामीण क्षेत्रों में ट्रैक्टरों के आगमन के बाद बैलों और मवेशियों की संख्या कम हुई है, जिससे पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद उपलब्ध नहीं हो पाती।

2. समय का अभाव: आज का किसान वर्ष में 3 से 4 फसलें लेता है। धान और गेहूं के बीच इतना समय नहीं बचता कि 50-60 दिन अलग से हरी खाद उगाने में लगाए जा सकें।

3. जल संकट: जलवायु परिवर्तन के कारण भूमिगत जल स्तर लगातार गिर रहा है। हरी खाद को मिट्टी में दबाने और गलाने के लिए बहुत अधिक पानी चाहिए, जो अब उपलब्ध नहीं है।

4. मजदूरों की कमी और बढ़ती लागत: कृषि मजदूरों की कमी के कारण खेतों में ढ़ैचा उखाड़ना या विशेष जुताई करना महंगा सौदा हो गया है।

भूरी खाद के बहुआयामी लाभ: भूरी खाद केवल एक उर्वरक नहीं है, बल्कि यह कृषि परिस्थितिकी तंत्र को सुधारने का एक संपूर्ण पैकेज है। इसके प्रमुख लाभों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

- मृदा स्वास्थ्य और भौतिक गुणों में सुधार:**
 - जैविक कार्बन में वृद्धि:** भारत की अधिकांश मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ 0.5% से भी कम हो गया है। भूरी खाद के अवशेष मिट्टी में मिलकर ह्यूमस का निर्माण करते हैं, जिससे जैविक कार्बन का स्तर बढ़ता है।
 - मिट्टी की संरचना:** यह मिट्टी के कणों को आपस में बांधती है, जिससे मिट्टी भुरभुरी बनती है। इससे जड़ों का विकास गहराई तक आसानी से होता है।
 - जल धारण क्षमता:** जैविक अंश बढ़ने से मिट्टी की स्पंज जैसी क्षमता बढ़ती है, जिससे वह लंबे समय तक नमी को रोक कर रख सकती है। यह सूखे की स्थिति में फसल को बचाता है।
 - नाइट्रोजन की बचत:** भूरी खाद के माध्यम से प्रति हेक्टेयर लगभग 25 से 35 किलोग्राम शुद्ध नाइट्रोजन मिट्टी को मिलती है। इससे रासायनिक यूरिया की खपत में 25-

30% की कटौती की जा सकती है।

5. सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता: ढ़ैचे की जड़ें मिट्टी की गहरी परतों से जिंक, आयरन, मैंगनीज और फास्फोरस जैसे तत्वों को खींचकर ऊपरी परत पर लाती हैं, जो मुख्य फसल को आसानी से मिल जाते हैं।

2. खरपतवार नियंत्रण: धान की सीधी बुआई में सबसे बड़ी समस्या खरपतवारों की होती है। भूरी खाद इस समस्या का सबसे सटीक जैविक समाधान है:

1. शुरूआती 25 दिनों में ढ़ैचा इतनी तेजी से बढ़ता है कि वह खरपतवारों को धूप और जगह नहीं मिलने देता।

2. 2,4-D के छिड़काव के बाद जब ढ़ैचा जमीन पर गिरता है, तो वह एक घनी परत (मल्ल) बना लेता है, जो नए खरपतवारों के बीजों को अंकुरित होने से रोकती है।

3. पर्यावरण और आर्थिक लाभ

1. ग्लोबल वार्मिंग में कमी: पारंपरिक धान की खेती से भारी मात्रा में मीथेन गैस निकलती है। भूरी खाद आधारित धान की सीधी बुआई विधि मीथेन उत्सर्जन को 40-50% तक कम करती है।

2. लागत में कमी: यह जुताई के खर्च, पानी के खर्च और महंगे रासायनिक खादों के खर्च को कम करके किसान की शुद्ध आय को बढ़ाती है।

भूरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें:

1. भूरी खाद के लिए ऐसी फसलों का चयन किया जाता है जो तेजी से बढ़ती हों, जिनमें प्रचुर मात्रा में बायोमास हो और जो चौड़ी पत्ती वाली हों।

2. ढ़ैचा (Sesbania aculeata / Sesbania rostrata): यह भूरी खाद के लिए सबसे लोकप्रिय और सर्वोत्तम फसल है। यह अत्यधिक सहिष्णु है और जलभराव तथा लवणीय गंदे पानी में भी उग सकती है।

3. सनई (Crotalaria juncea): शुष्क और कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए यह एक अच्छा विकल्प है। इसकी विकास दर बहुत तेज होती है।

4. लोबिया या बोरो (Vigna unguiculata): उन क्षेत्रों में जहां किसान थोड़ा अतिरिक्त चारा या हरी फलियां भी चाहते हैं, वहां लोबिया का उपयोग किया जा सकता है।

5. मूंग (Vigna radiata): कभी-कभी मुख्य फसल के साथ मूंग को भी सह-फसल के रूप में उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष- आधुनिक कृषि में भूरी खाद केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि समय की मांग है। यह तकनीक 'कम लागत में अधिक उत्पादन' और 'पर्यावरण संरक्षण' के सिद्धांतों पर पूरी तरह खरी उतरती है। यह मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने, पानी बचाने और खेती को जलवायु-अनुकूल (बनाने का एक व्यावहारिक माध्यम है। भविष्य में, सरकार की कृषि विकास योजनाओं जैसे परंपरागत कृषि विकास योजना - PKVY के माध्यम से किसानों को भूरी खाद के प्रति जागरूक करने और ढ़ैचा बीजों पर सब्सिडी देने की आवश्यकता है। जब भारत का किसान इस 'भूरी क्रांति' को अपनाएगा, तभी हमारी मिट्टी आने वाली पीढ़ियों के लिए उपजाऊ बनी रह सकेगी।



ज्योति, हरीश कुमार असिस्टेंट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज, आई.आई.एम.टी. यूनिवर्सिटी, मेरठ

शुभम छात्र, एम.एससी कृषि (पादप रोग विज्ञान), आई.आई.एम.टी. यूनिवर्सिटी, मेरठ-250001

परिचय- कृषि क्षेत्र में उत्पादकता और गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। बीज प्रमाणीकरण एक वैज्ञानिक और कानूनी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से बीजों की आनुवंशिक शुद्धता, भौतिक शुद्धता, अंकुरण क्षमता और स्वास्थ्य की गारंटी दी जाती है। भारत में बीज प्रमाणीकरण का कार्य बीज अधिनियम, 1966 के अंतर्गत किया जाता है, जिसका उद्देश्य किसानों को गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराना और कृषि उत्पादन को बढ़ावा देना है। भारतीय संसद ने बीज प्रमाणीकरण अधिनियम 1966 पारित किया, जिसके तहत बीज नियमों को 1968 में व्यवस्थित और अधिसूचित किया गया और 1969 में भारत में व्यवस्थित बीज प्रमाणन शुरू किया गया। यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर सहित पूरे भारत में लागू होता है। इस अधिनियम में बीज से संबंधित मामलों में राज्यों को सलाह देने के लिए एक केंद्रीय बीज समिति की स्थापना का प्रस्ताव दिया गया, साथ ही राज्यों में बीज प्रमाणीकरण बोर्ड और राज्य बीज परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना हेतु प्रस्ताव भी दिया गया। भारत में लगभग 22 राज्य बीज प्रमाणीकरण एजेंसियां और 101 राज्य बीज परीक्षण प्रयोगशालाएं कार्यरत हैं, जो बीजों की गुणवत्ता नियंत्रण और प्रमाणन की जिम्मेदारी निभाती हैं।

बीज प्रमाणीकरण क्या है? बीज प्रमाणीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बीजों की विभिन्न श्रेणियों—जैसे प्रजनक बीज, आधारित बीज और प्रमाणित बीज (Certified Seed)—के उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन को निर्धारित मानकों के अनुसार जांचा और प्रमाणित किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसान को उच्च गुणवत्ता वाला बीज मिले, जो रोगमुक्त हो, अधिक उपज देने में सक्षम हो और उसकी आनुवंशिक विशेषताएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी रहें। यह एक कानूनी रूप से स्वीकृत प्रणाली है जो बीज गुणन और उत्पादन के गुणवत्ता नियंत्रण के लिए बनाई गई है। इसका मुख्य कार्य आनुवंशिक रूप से शुद्ध और अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की पर्याप्त मात्रा में उत्पादन को प्रोत्साहित करना है, विशेष रूप से विभिन्न फसलों की उच्च क्षमता वाली, उन्नत और संकर किस्मों के बीजों का।

बीज प्रमाणीकरण की पात्रता- भारतीय बीज अधिनियम, 1966 की धारा 5 के तहत अधिसूचित किस्मों के बीज ही प्रमाणीकरण के लिए पात्र हैं। किसी भी किस्म को बीज प्रमाणीकरण के लिए पात्र होने के लिए निम्नलिखित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा

सामान्य आवश्यकताएं- * भारतीय बीज अधिनियम, 1966 की धारा 5 के तहत अधिसूचित किस्म होनी चाहिए। * उत्पादन श्रृंखला में होनी चाहिए और इसकी वंशवली ट्रेस करने योग्य होनी चाहिए।

क्षेत्र मानक- इसमें साइट का चयन, पृथक्करण आवश्यकताएं, दूरी, रोपण अनुपात, सीमा पंक्तियां आदि शामिल हैं।

विशिष्ट आवश्यकताएं- किसी भी बीज फसल में ऑफ-टाइप की उपस्थिति, सूरजमुखी, ज्वार, बाजरा आदि में पराग शेड्स की उपस्थिति।

बीज मानक: न्यूनतम बीज प्रमाणीकरण मानक फसल-वार विकसित किए गए हैं।

बीज प्रमाणीकरण की प्रक्रिया (भारत में)- भारत में बीज प्रमाणीकरण की प्रक्रिया एक बहुचरण और कठोर प्रक्रिया है। आंध्र प्रदेश राज्य बीज प्रमाणीकरण एजेंसी के अनुसार, यह प्रक्रिया छह प्रमुख चरणों में पूरी होती है-

चरण 1- बीज स्रोत का सत्यापन- प्रमाणीकरण की प्रक्रिया का पहला चरण बीज के स्रोत का सत्यापन है। बीज उत्पादक को यह साबित करना होता है कि उसने जो बीज बोया है, वह उचित स्रोत से लिया गया है। प्रमाणित बीजों

बीज प्रमाणीकरण : भारतीय कृषि की गुणवत्ता का आधार

के उत्पादन के लिए आधारित बीज का उपयोग किया जाता है, जबकि आधारित बीज के उत्पादन के लिए प्रजनक बीज आवश्यक होता है।

चरण 2: आवेदन की प्राप्ति और जांच- बीज उत्पादक को अपने बीज को प्रमाणित करवाने हेतु बीज प्रमाणीकरण संस्था को फॉर्म-1 में आवेदन देना होता है। इस आवेदन पत्र में बीज उत्पादक को अपना नाम व पता, प्रमाणीकरण हेतु आवेदित बीज की किस्म, क्षेत्रफल, बीज का प्रकार (आधार बीज/प्रमाणित बीज), बीज का स्रोत, टैग संख्या, पृथक्करण दूरी एवं बोने की सही या प्रस्तावित तिथि का विवरण देना होता है।

आवेदन के साथ निम्नलिखित दस्तावेज भी जमा करने होते हैं- * पट्टाधार पासबुक की छायाप्रति (बीज उत्पादक या नोडल प्राधिकारी द्वारा सत्यापित) * पट्टे पर ली गई भूमि के मामले में, भूमि स्वामी से प्रमाण पत्र * पहचान प्रमाण (आधार कार्ड, राशन कार्ड या मतदाता पहचान पत्र) * पिछली पीढ़ी के बीज टैग (स्रोत के रूप में) * खरीद बिल * पिछली पीढ़ी का फॉर्म।

एक ही आवेदन में अधिकतम 25 एकड़ क्षेत्र ही प्रमाणीकरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। अतिरिक्त क्षेत्र को अलग इकाई माना जाता है। बीज प्रमाणीकरण संस्था इस आवेदन पत्र की जांच करती है कि किस्म/फसल अधिसूचित है या नहीं, बीज का स्रोत उपयुक्त प्रकार का है या नहीं, और बीज फसल की खेत संबंधी अपेक्षाएं प्रमाणीकरण मानकों के अनुरूप हैं या नहीं। यह सब जांच करने के बाद ही प्रमाणीकरण संस्था आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करती है।

चरण 3- फसल निरीक्षण- जब बीज उत्पादक का पत्र स्वीकृत हो जाता है, तो प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बीज फसल के खेत का निम्नलिखित अवसरों पर निरीक्षण किया जाता है- * बीज बोने के समय * फूल आने से पहले * फूल आने पर * फसल पकने पर * कटाई के समय। फसल की पुष्पावस्था और पकने के समय खेत में निरीक्षण किया जाता है। निरीक्षण के दौरान यह सुनिश्चित किया जाता है कि फसल में अवांछित पौधे, खरपतवार या रोग न हों। खेत में विभिन्न स्थानों पर गणना की जाती है, और यदि अवांछित पौधों की संख्या निर्धारित मानक से अधिक पाई जाती है, तो फसल को निरस्त कर दिया जाता है। यदि बीज फसल बीज उत्पादन के निर्धारित मानकों पर खरा उतरती है, तो बीज फसल को पास किया जाता है, अन्यथा फेल। फसल के अच्छी तरह पकने पर कटाई करके खेत में ही अच्छी तरह सुखाकर गहवाई करनी चाहिए। कटाई व गहवाई के समय बीज में दूसरी किस्म, खरपतवार व मिट्टी इत्यादि की मिलावट न होने पाए।

चरण 4-प्रसंस्करण और पैकेजिंग की निगरानी- संसाधन का अर्थ है साफ करना, सुखाना, उपचारित करना, वर्गीकरण करना एवं अन्य कार्य जो बीज की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। ऐसे खेत के बीज, जो प्रमाणित मानकों को खेत में फसल की अवस्था में निश्चित करते हैं, कटाई व गहवाई के बाद जितनी जल्दी हो सके, उनको प्रोसेसिंग प्लांट में प्रोसेसिंग के लिए लाना चाहिए। निर्दिष्ट छेद वाली छलनाओं के द्वारा निर्दिष्ट फसल के अनुसार सफाई एवं वर्गीकरण (ग्रेडिंग) करना चाहिए, जिससे खराब बीज, चासफूसमिट्टी, पत्थर के टुकड़े, बीज के टुकड़े एवं अन्य अवांछनीय वस्तुएं निकल जाएं। प्रसंस्करण पौधों को प्रमाणीकरण एजेंसी के साथ पंजीकृत होना चाहिए।

चरण 5: बीज नमूनाकरण और परीक्षण- फसल कटाई के बाद प्रत्येक लॉट से नमूने लेकर प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेजे जाते हैं। संसाधन के दौरान बीज निरीक्षण के बाद लिए गए नमूनों का परीक्षण प्रयोगशाला में किया जाता है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला में बीज की आनुवंशिकी व भौतिक शुद्धता की जांच की जाती है। अंकुरण परीक्षण एवं नमी की जांच की जाती है। बीज

का अनुमोदन प्रयोगशाला परीक्षण रिपोर्ट के पश्चात ही किया जा सकता है।

प्रत्येक बीज लॉट के लिए तीन नमूने लिए जाते हैं- * एक एसटीएल (बीज परीक्षण प्रयोगशाला) विश्लेषण के लिए * एक गार्ड नमूने

के रूप में * एक बीज उत्पादक के लिए

नमूनों को केंद्रीय कोडिंग सेल में भेजा जाता है, जहां कोडिंग की जाती है और फिर बीज परीक्षण प्रयोगशालाओं में विश्लेषण के लिए भेजा जाता है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला में भौतिक शुद्धता, अंकुरण, ओडीवी (अन्य भेदभाव करने योग्य किस्में), नमी का विश्लेषण किया जाता है। यदि कोई नमूना निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं पाया जाता है, तो उसे निरस्त कर दिया जाता है। बीज उपचार भी आवश्यक है- यदि किसी किस्म का बीज बीजजनित रोग के रोगणुओं के लिए सुग्राही है, तो बीज प्रमाणीकरण संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि प्रमाणीकरण से पहले बीज उपचारित होना चाहिए।

चरण 6- प्रमाणपत्र जारी करना और टैगिंग- परीक्षण में उत्तीर्ण बीजों को थैलों में भरकर टैग लगाए जाते हैं। भारतीय बीज अधिनियम के अनुसार- * प्रजनक बीज (Breeder Seed) पर सुनहरे पीले रंग का टैग * आधारित बीज (Foundation Seed) पर सफेद रंग का टैग * प्रमाणित बीज (Certified Seed) पर नीले रंग का टैग लगाया जाता है। प्रत्येक टैग पर प्रमाणन एजेंसी का नाम, बीज की किस्म, लॉट संख्या, उत्पादक का नाम और प्रमाणन की वैधता अवधि अंकित होती है। बीज परीक्षण रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, संबंधित मंडल के वरिष्ठ बीज प्रमाणीकरण अधिकारी पैकिंग आकार के आधार पर बीज प्रमाणीकरण टैग जारी करते हैं, जिन पर बीज लॉट का विवरण होता है और इन्हें बीज कटेनरों पर सिल दिया जाता है। बीज लॉट की पैकिंग के बाद, फॉर्म-II यानी रिलीज ऑर्डर (वैधता अवधि परीक्षण की तारीख से 9 महीने) संबंधित बीज उत्पादक को बाजार में बीज लॉट जारी करने के लिए जारी किया जाता है। वैधता अवधि समाप्त होने पर, बीज उत्पादक पुनः सफाई और पुनः सत्यापन के लिए आवेदन कर सकता है। यदि मानक परिणाम प्राप्त होते हैं, तो वैधता अवधि परीक्षण की तारीख से अतिरिक्त 6 महीने के लिए बढ़ा दी जाती है।

बीज प्रमाणीकरण के लाभ

1. **आनुवंशिक शुद्धता की गारंटी-** प्रमाणित बीजों में आनुवंशिक शुद्धता 98% से अधिक होती है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उपज सुनिश्चित होती है। एक अच्छी गुणवत्ता वाले बीज में उच्च अंकुरण प्रतिशत, जोर, आनुवंशिक और भौतिक रूप से शुद्ध होना चाहिए और बीज जनित रोगों और कीट क्षति से मुक्त होना चाहिए।

2. **रोग और कीट प्रतिरोध-** प्रमाणित बीज रोगमुक्त होते हैं, जिससे फसल को बीमारियों से बचाया जा सकता है और कीटनाशकों के उपयोग में कमी आती है।

3. **उच्च अंकुरण क्षमता-** प्रमाणित बीजों की अंकुरण क्षमता कम से कम 90% या उससे अधिक होती है, जिससे खेत में पौधों की संख्या सुनिश्चित होती है।

4. **बाजार में बेहतर मूल्य-** प्रमाणित बीजों से उगाई गई फसल की गुणवत्ता बेहतर होती है, जिससे किसानों को बाजार में अधिक मूल्य मिल सकता है। बीज प्रमाणीकरण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सुविधाजनक बनाता है और वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त लेबल का उपयोग करके गुणवत्ता वाली उपज और किसानों को लाभ प्रदान करता है।

5. **किसानों की आय में वृद्धि-** प्रमाणित बीज उत्पादन से किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं। सामान्य अनाज बेचने के बजाय प्रमाणित बीज उत्पादन से अधिक लाभ मिलता है, साथ ही सरकारी प्रोत्साहन का भी लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सरकार रेट कॉन्ट्रैक्ट प्रणाली के माध्यम से इन प्रमाणित बीजों को निविदाओं के माध्यम से खरीदती है और रायता संपर्क केंद्रों (आएसके) के माध्यम से किसानों को रियायती दरों पर वितरित करती है।



प्रशांत नारायण, डॉ. सुरेश कुमार
दीपक कुमार मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन
विज्ञान विभाग आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कुमारागंज, अयोध्या (उ.प्र.)

नैनो उर्वरक आधारित पोषक तत्व प्रबंधन: उर्वरक उपयोग दक्षता, उत्पादन लागत एवं किसान लाभ में सुधार की संभावनाएँ

परिचय

आज किसानों के सामने उर्वरकों की बढ़ती कीमत, पोषक तत्वों की कम उपयोग दक्षता और फसल की अच्छी उपज बनाए रखने जैसी कई समस्याएँ हैं। नैनो उर्वरक इन समस्याओं को कम करने के लिए एक नई और उपयोगी तकनीक है। ये पौधों को पोषक तत्वों की सही और प्रभावी मात्रा में आपूर्ति करने में मदद कर सकते हैं। इससे उर्वरक की बर्बादी कम होती है और खेती की लागत कम होने के साथ-साथ फसल की वृद्धि और उपज बढ़ने की संभावना रहती है। इसलिए, नैनो उर्वरक कम लागत, बेहतर उत्पादन और किसान की आय बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

नैनो उर्वरकों के प्रकार एवं कार्यप्रणाली

* नैनो नाइट्रोजन पौधों को नाइट्रोजन की नियंत्रित एवं अधिक प्रभावी आपूर्ति करता है। * नैनो यूरिया पत्तियों के माध्यम से अवशोषित होकर पौधे की नाइट्रोजन आवश्यकता को पूरा करने में सहायक। * नैनो DAP नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने तथा जड़ विकास में सहायक है। * नैनो जिंक की कमी को दूर करके एंजाइम की सक्रियता एवं पौधों की वृद्धि में योगदान देता है। * नैनो यूरिया पत्तियों अवशोषण नैनो कण पत्तियों की सतह से अवशोषित होकर पौधों के ऊतकों तक पहुँचते हैं। * नैनो उर्वरक से बेहतर पोषण से जड़ विकास, प्रकाश संश्लेषण और अंततः फसल उत्पादकता को समर्थन मिलता है।

नैनो उर्वरकों की आवश्यकता और किसानों हेतु उपयोगिता

* कम मात्रा में प्रभावी पोषक तत्व आपूर्ति * उर्वरक उपयोग दक्षता में वृद्धि * उर्वरक लागत में कमी * फसल वृद्धि एवं उत्पादकता में सुधार * पोषक तत्वों के नुकसान में कमी * पत्तियों के माध्यम से पोषण * मृदा एवं पर्यावरण पर दबाव कम करने की संभावना * किसान की लाभप्रदता में सुधार

कम मात्रा में अधिक पोषक तत्व उपलब्धता

नैनो उर्वरकों में पोषक तत्व अति सूक्ष्म कणों के रूप में उपलब्ध होते हैं, जिससे पौधों तक पोषक तत्वों की अधिक लक्षित एवं प्रभावी आपूर्ति की संभावना रहती है। इससे कम मात्रा में उर्वरक का उपयोग करके फसल की पोषण आवश्यकता को पूरा करने में सहायता मिल सकती है तथा अनावश्यक उर्वरक उपयोग को कम किया जा सकता है।



उर्वरक उपयोग दक्षता में सुधार

नैनो उर्वरक पौधों तक पोषक तत्वों की लक्षित एवं प्रभावी आपूर्ति में सहायता करके उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ाने, पोषक तत्वों की हानि कम करने और किसान की उर्वरक लागत घटाने की संभावना रखते हैं।

खेती की लागत कम करने की संभावनाएँ

* उर्वरक की मात्रा एवं लागत में कमी की संभावना * कम मात्रा में प्रभावी पोषक तत्व आपूर्ति * पोषक तत्वों के नुकसान से होने वाली आर्थिक हानि में कमी * उर्वरक प्रयोग एवं श्रम लागत को कम करने की संभावना * फसल उत्पादकता बनाए रखते हुए इनपुट लागत में कमी * प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ बढ़ाने की संभावना * संसाधनों का अधिक कुशल

उपयोग * लागत-लाभ अनुपात में सुधार की संभावना

फसल वृद्धि, उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

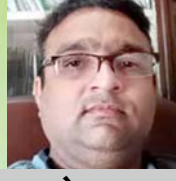
नैनो उर्वरक पौधों को पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध कराकर अच्छी वृद्धि और स्वस्थ फसल में मदद कर सकते हैं। इनके उचित उपयोग से फसल की उपज और गुणवत्ता बेहतर होने के साथ किसानों को अधिक लाभ मिल सकता है।

मृदा स्वास्थ्य एवं पोषक तत्व संतुलन में भूमिका

नैनो उर्वरक पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग को बढ़ावा देकर मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने और पोषक तत्वों की उपलब्धता सुधारने में मदद कर सकते हैं।

नैनो उर्वरकों के उपयोग में किसानों की व्यावहारिक चुनौतियाँ - * नैनो उर्वरकों की जानकारी का अभाव। * उत्पाद की उपलब्धता और सही समय पर प्राप्ति की समस्या। * उपयोग की सही मात्रा और विधि समझने में कठिनाई। * प्रारंभिक लागत और उत्पाद की कीमत से जुड़ी चिंता। * प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन की कमी।

नैनो उर्वरक से किसान आय एवं लाभप्रदता बढ़ाने की संभावनाएँ - नैनो उर्वरक कम मात्रा में पोषक तत्व देकर उर्वरक लागत कम करने में मदद कर सकते हैं। इनके सही उपयोग से फसल की उपज और गुणवत्ता बेहतर हो सकती है। इससे उत्पादन लागत कम और किसान की शुद्ध आय बढ़ने की संभावना रहती है।


मनोज गुप्ता

जय पीताम्बर बीज भण्डार

हमारे यहाँ समस्त कंपनियों के बीज उचित दाम पर मिलते हैं।
खाद एवं दवाईयाँ मिलने का प्रमुख स्थान

रेल स्ट्रिंग कारखाने के सामने, डबरा रोड, सिधौली, नवालिखर
मोबा.: 9301366887, फोन : 0751-2434056



प्रत्यूष सिंह एमबीए (कृषि व्यवसाय प्रबंधन) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आदित्य प्रताप सिंह एमबीए (कृषि व्यवसाय प्रबंधन) चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर



बदलती खेती

भारत की अर्थव्यवस्था और गांवों की जीवनशैली में खेती का महत्वपूर्ण स्थान है। किसान अपनी मेहनत से देश के लिए अन्न, फल, सब्जियां और अनेक कृषि उत्पाद पैदा करता है। लेकिन आज खेती पहले जैसी सरल नहीं रही। बीज, खाद, उर्वरक, मजदूरी, सिंचाई और मशीनरी की लागत बढ़ रही है, वहीं मौसम की अनिश्चितता और बाजार भाव में उतार-चढ़ाव किसानों के सामने नई चुनौतियां खड़ी कर रहे हैं। ऐसे समय में केवल अधिक उत्पादन करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि खेती को लाभदायक बनाना भी जरूरी है।

इसी जरूरत के कारण किसान की भूमिका में बदलाव आ रहा है। अब किसान को केवल उत्पादक के रूप में नहीं, बल्कि कृषि उद्यमी के रूप में भी सोचने की आवश्यकता है। कृषि उद्यमी बनने का मतलब बड़ा उद्योग लगाना नहीं है। इसका अर्थ है कि किसान अपनी जमीन, पानी, श्रम और पूंजी का सही उपयोग करते हुए खेती से अधिक और स्थिर आय प्राप्त करने की योजना बनाए। कौन-सी फसल लगानी है, कितना खर्च करना है, कहाँ बेचना है और उपज का बेहतर मूल्य कैसे मिलेगा, इन बातों पर पहले से विचार करना ही उद्यमशील सोच की शुरुआत है।

बाजार की समझ

लाभदायक खेती के लिए बाजार की समझ बहुत जरूरी है। किसान अक्सर उत्पादन की योजना पहले बनाता है और बिक्री के बारे में बाद में सोचता है। इसके कारण अच्छी फसल होने के बावजूद कई बार उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसलिए फसल का चुनाव करते समय स्थानीय बाजार में मांग, संभावित कीमत, मौसम, पानी की उपलब्धता और उत्पादन लागत को ध्यान में रखना चाहिए। किसान को अपनी खेती का पूरा हिसाब भी रखना चाहिए। बीज, खाद, उर्वरक, दवा, मजदूरी, सिंचाई, मशीनरी, डीजल और परिवहन पर कितना खर्च हुआ, इसका रिकॉर्ड रखने से वास्तविक लाभ का पता चलता है। केवल बिक्री से प्राप्त रकम को लाभ मानना सही नहीं है। कुल बिक्री में से कुल लागत घटाने के बाद ही वास्तविक लाभ सामने आता है। यह जानकारी किसान को अगली फसल की बेहतर योजना बनाने में मदद करती है। आज बाजार की जानकारी प्राप्त करना

किसान से कृषि उद्यमी तक: खेती को लाभदायक व्यवसाय बनाने की राह

पहले की तुलना में आसान हुआ है। किसान मंडी भाव, स्थानीय व्यापारियों की मांग और डिजिटल माध्यमों से मिलने वाली जानकारी का उपयोग कर सकता है। हालांकि केवल बाजार भाव देखकर फसल का चुनाव नहीं करना चाहिए। मिट्टी, जलवायु, सिंचाई, श्रम और किसान की अपनी क्षमता को भी ध्यान में रखना जरूरी है। सही उत्पादन के साथ सही बाजार का चुनाव ही खेती को अधिक लाभदायक बना सकता है।

आमदनी बढ़ाने के तरीके

किसान की आमदनी बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण तरीका है कि वह केवल कच्ची उपज बेचने के बजाय उसमें मूल्य संवर्धन करे। खेत से निकली उपज की सफाई, छंट्टाई, ग्रेडिंग और पैकेजिंग करके उसका बेहतर मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। आगे बढ़कर प्रसंस्करण भी किया जा सकता है। गेहूं से आटा,



दूध से दही और पनीर, फलों से अचार और जैम तथा दालों और मसालों की साफ-सफाई और पैकेजिंग इसके सरल उदाहरण हैं। यदि किसान अपनी उपज को अच्छी गुणवत्ता और उचित पैकेजिंग के साथ बाजार तक पहुंचाता है तो वह केवल कच्चे माल का विक्रेता नहीं रहता, बल्कि तैयार उत्पाद के मूल्य में भी अपनी भागीदारी बढ़ाता है। यह काम किसान अकेले भी कर सकता है और समूह बनाकर भी। छोटे किसानों के लिए सामूहिक प्रयास अधिक उपयोगी हो सकता है। खेती में आय के कई स्रोत बनाना भी जरूरी है। किसान अपनी परिस्थितियों के अनुसार फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, सब्जी उत्पादन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन या मत्स्य पालन जैसी गतिविधियों को जोड़ सकता है। इससे खेत पर उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है और किसी एक फसल के खराब होने पर पूरी आय प्रभावित होने का खतरा कम होता है।

साथ मिलकर आगे बढ़ें

छोटे और सीमांत किसानों के लिए सामूहिकता एक बड़ी ताकत बन सकती है। किसान उत्पादक संगठन किसानों को एक साथ लाकर उनकी बाजार क्षमता बढ़ाने में मदद कर सकते हैं। किसान मिलकर बीज, उर्वरक और अन्य कृषि सामग्री खरीद सकते हैं, जिससे लागत कम हो सकती है। इसी तरह बड़ी मात्रा में उपज एकत्र करके बड़े खरीदारों तक पहुंचाना भी आसान हो

जाता है। किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से ग्रेडिंग, पैकेजिंग, भंडारण और प्रसंस्करण जैसी सुविधाओं का सामूहिक उपयोग किया जा सकता है। इससे किसान केवल स्थानीय व्यापारी पर निर्भर रहने के बजाय अलग-अलग बाजारों तक पहुंच बनाने का प्रयास कर सकता है। लेकिन इसके लिए संगठन का सही प्रबंधन, पारदर्शिता और बाजार की वास्तविक समझ जरूरी है।

आज डिजिटल माध्यम भी किसान के लिए नए अवसर लेकर आए हैं। मोबाइल के माध्यम से बाजार भाव और मौसम की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल माध्यमों से किसान अपने उत्पाद की जानकारी सीधे ग्राहकों तक पहुंचा सकता है। स्थानीय स्तर पर भी किसान समूह बनाकर उत्पादों की बिक्री और ग्राहक संपर्क किया जा सकता है। लेकिन डिजिटल बाजार में सफलता के लिए अच्छी गुणवत्ता, सही वजन, समय पर आपूर्ति और ग्राहक का भरोसा बनाए रखना जरूरी है।

कृषि में नया कदम

कृषि उद्यमिता की राह में जोखिम भी हैं। मौसम, कीट एवं रोग, बाजार भाव में गिरावट और उत्पादन लागत में वृद्धि खेती को प्रभावित कर सकती है। इसलिए किसान को एक ही फसल या एक ही बाजार पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहना चाहिए। फसल विविधीकरण, एकीकृत कृषि, उचित भंडारण और अलग-अलग बिक्री विकल्प जोखिम को कम करने में मदद कर सकते हैं।

कृषि उद्यमिता की शुरुआत किसी बड़े निवेश से नहीं, बल्कि सोच में बदलाव से होती है। किसान यदि अपनी खेती का हिसाब रखता है, बाजार की मांग समझता है, गुणवत्तापूर्ण उत्पादन करता है और अपनी उपज में थोड़ा-सा मूल्य जोड़ने का प्रयास करता है तो वह धीरे-धीरे अपनी आय बढ़ा सकता है। गांव के कृषि शिक्षित युवा भी किसानों को बाजार, डिजिटल माध्यम, प्रसंस्करण और व्यवसाय योजना से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि किसान केवल यह न सोचे कि "क्या पैदा करना है?", बल्कि यह भी सोचे कि "किसके लिए पैदा करना है, कहाँ बेचना है और बेहतर मूल्य कैसे प्राप्त करना है?" यही सोच किसान को उत्पादक से उद्यमी की ओर ले जाती है।

किसान से कृषि उद्यमी बनने का अर्थ खेती से दूर जाना नहीं, बल्कि खेती को अधिक समझदारी और बेहतर प्रबंधन के साथ करना है। जमीन, अनुभव और मेहनत किसान की सबसे बड़ी पूंजी हैं। इनके साथ बाजार की समझ, लागत प्रबंधन, मूल्य संवर्धन और सामूहिक प्रयास जुड़ जाएं तो खेती को एक मजबूत व्यवसाय बनाया जा सकता है।

किसान खेत में केवल फसल नहीं उगाता, वह मूल्य पैदा करता है। जरूरत है कि उस मूल्य का उचित लाभ किसान तक भी पहुंचे।



नारायण दत्त मिश्र, अनामिका पटेल

सस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

मौन क्रांति: शून्य जुताई किस प्रकार धान के दाने की गुणवत्ता को नया रूप दे रही है

परिचय: दशकों से धान की खेती की पहचान जुताई और पानी से भरे हुए कीचड़युक्त खेतों से जुड़ी रही है। लेकिन जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की कमी के बढ़ते दबाव के कारण शून्य जुताई (Zero Tillage - ZT) एक टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है। शून्य जुताई में बिना जुताई किए हुए खेत में सीधे बीजों की बुवाई की जाती है।

शून्य जुताई, संरक्षण कृषि (Conservation Agriculture) का एक प्रमुख आधार है। इसे जल संरक्षण, श्रम की बचत और मृदा स्वास्थ्य में सुधार की क्षमता के कारण विश्व स्तर पर काफी ध्यान मिला है। प्रारंभिक शोध मुख्य रूप से उपज पर केंद्रित थे, लेकिन वर्तमान अध्ययनों में यह देखा जा रहा है कि यह "बिना जुताई" वाली पद्धति धान के दानों की भौतिक, पोषणीय और संवेदी गुणवत्ता को किस प्रकार प्रभावित करती है।

धान की भौतिक गुणवत्ता: जैसे उसका आकार, वजन, रंग और मिलिंग के बाद प्राप्त चावल उपभोक्ताओं तथा मिलर्स द्वारा सबसे पहले देखी जाती है। शून्य जुताई में उत्पादित धान पारंपरिक जुताई वाली फसल की तुलना में प्रतिस्पर्धी गुणवत्ता प्रदान कर सकता है।

(a) 1000-दाना भार: शोध अध्ययनों में पाया गया है कि शून्य जुताई प्रणाली में 1000-दाना भार सामान्यतः (कीचड़युक्त प्रत्यारोपण) (पडलिंग द्वारा रोपाई) के बराबर या कुछ परिस्थितियों में थोड़ा अधिक पाया जाता है। इसका प्रमुख कारण दाना भरने की अवस्था में मिट्टी में नमी की अपेक्षाकृत स्थिर उपलब्धता है।

(b) मिलिंग रिकवरी: शून्य जुताई से मृदा संरचना में सुधार होता है और मृदा सघनता (compaction) कम हो सकती है। इससे जड़ों का विकास तथा पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। पोषक तत्वों की संतुलित एवं स्थिर आपूर्ति अधिक समान आकार के दाने विकसित करने में सहायता करती है और मिलिंग के दौरान टूटे हुए चावल की मात्रा कम हो सकती है। शून्य जुताई मिट्टी में स्थूल रंध्र या दीर्घ छिद्र को बनाए रखने तथा जल के अंतःसंचरण (water infiltration) को बढ़ाने में सहायता करती है। दूधिया तथा स्रग्ध्रद्वय अवस्था के दौरान पर्याप्त नमी मिलने से दाने का पूर्ण विकास होता है। इससे साबुत चावल की प्राप्ति अर्थात मिलिंग के बाद प्राप्त साबुत चावल का प्रतिशत बढ़ सकता है।

(c) चॉकनेस (Chalkiness) में कमी

* चॉकनेस धान के दानों में दिखाई देने वाले अपारदर्शी सफेद क्षेत्रों को कहते हैं। उच्च तापमान के तनाव के कारण स्टार्च के कण ढीले रूप से व्यवस्थित हो सकते हैं, जिससे चॉकनेस बढ़ती है। * शून्य जुताई, विशेषकर जब इसे फसल अवशेष/मल्ल के साथ अपनाया जाता है, मिट्टी के लिए एक प्रकार के इन्सुलेटर का कार्य करती है। इससे मिट्टी का तापमान अपेक्षाकृत कम और स्थिर रहता है तथा दानों में चॉकनेस संबंधी दोष कम हो सकते हैं।

(d) दाने की लंबाई एवं चौड़ाई- शून्य जुताई सामान्यतः धान की किस्म के आनुवंशिक रूप से निर्धारित दाने की लंबाई एवं चौड़ाई को बनाए रखती है। इससे बाजार में दानों की स्वीकार्यता बनी रहती है।

(e) परीक्षण भार (Test Weight)- बेहतर दाना भराव से दानों का स्थूल घनत्व बढ़ सकता है, जिससे उनकी बाजार गुणवत्ता और मूल्य में सुधार हो सकता है।

(f) दानों में दरारों में कमी- परिपक्वता के समय मिट्टी में स्थिर नमी उपलब्ध रहने से नमी तनाव कम होता है। इससे दानों में दरार पड़ने तथा "दरार वाले अनाज" की समस्या कम हो सकती है।

(g) समान परिपक्वता- बेहतर जड़ विकास के कारण दानों का पकना अधिक समान हो सकता है। इससे कटाई एवं मिलिंग की दक्षता में सुधार होता है।

(h) अधिक अर्बुदित चावल की उपज- दाने में स्टार्च का समान रूप से जमाव मिलिंग और परिष्कृत करना के दौरान दानों के टूटने को कम करता है तथा साबुत चावल की मात्रा बढ़ा सकता है।

2. पोषणीय एवं रासायनिक संरचना- धान का पोषण मूल्य इस बात से काफी प्रभावित होता है कि पौधा मिट्टी के साथ किस प्रकार अंतःक्रिया करता है। शून्य जुताई मिट्टी के रासायनिक एवं जैविक वातावरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकती है।

I. पोषक तत्वों का अवशोषण (N, P एवं K)- शून्य जुताई प्रणाली, विशेषकर जब फसल अवशेषों को खेत में बनाए रखा जाता है, पौधों में नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P) और पोटैशियम (K) के संचय को बढ़ा सकती है। अधिक नाइट्रोजन अवशोषण का संबंध दानों में अधिक प्रोटीन मात्रा से पाया गया है।

II. सूक्ष्म पोषक तत्वों की सघनता- बिना जुताई वाली मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या तथा एंजाइम गतिविधियां बढ़ सकती हैं। उदाहरण के लिए एल्कलाइन फॉस्फेटेज जैसी एंजाइम गतिविधियां पोषक तत्वों के चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मृदा में बड़ी हुई सूक्ष्मजीवी गतिविधि जिंक (Zn) और लोहा (Fe) जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायता कर सकती है। ये दोनों तत्व धान के पोषणीय एवं मानव स्वास्थ्य संबंधी महत्व के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

III. एमाइलोज (Amylose)- संरक्षण कृषि में संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन से धान के दानों में एमाइलोज की मात्रा तथा वास्तविक प्रोटीन की मात्रा में सुधार हो सकता है। Amylose की मात्रा चावल के पकने के बाद उसकी बनावट एवं खाने की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

IV. अतिरिक्त पोषणीय लाभ- * मृदा कार्बनिक पदार्थ (Soil Organic Matter - SOM) में वृद्धि से पोषक तत्वों की बफरिंग क्षमता बेहतर होती है। * बेहतर Nitrogen Use Efficiency (NUE) से प्रोटीन संश्लेषण अधिक प्रभावी हो सकता है। * उर्वरक से होने वाली पोषक तत्वों की हानि कम हो सकती है। * अधिक microbial biomass कार्बनिक पोषक तत्वों के mineralization को बढ़ावा देती है। * फसल अवशेषों को खेत में बनाए रखने से पोटैशियम एवं कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों की धीमी गति से आपूर्ति हो सकती है। * कुछ धान की किस्मों में संरक्षण कृषि के अंतर्गत एंटीऑक्सीडेंट antioxidant compounds में वृद्धि भी देखी गई है।

3. संवेदी एवं सुगंध गुणवत्ता- बासमती तथा चमेली जैसी सुगंधित धान की किस्मों में 2-acetyl-1-pyrroline (2-AP) एक महत्वपूर्ण सुगंधित यौगिक है। इसकी मात्रा बाजार मूल्य को प्रभावित करती है। 2-AP का निर्माण पौधे के नाइट्रोजन चयापचय तथा प्रकाश संश्लेषण से संबंधित जटिल जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।

शून्य जुताई का प्रभाव- Du et al. (2020) के अध्ययनों में बताया गया कि निरंतर शून्य जुताई में प्रोलाइन मेटाबॉलिक पाथवे से संबंधित एंजाइमों की गतिविधि बढ़ सकती है। प्रोलाइन सुगंध निर्माण में एक महत्वपूर्ण प्रीकर्सर है। ZT प्रणाली में धान की flag leaf में देर की अवस्थाओं तक chlorophyll content अर्थात SPAD value अपेक्षाकृत अधिक बनाए रखने में सहायता मिल सकती है। इससे पौधे को photosynthates के रूप में अधिक ऊर्जा मिलती है, जो aromatic volatile compounds के निर्माण में उपयोगी होती है।

प्रकाश संश्लेषण दक्षता- शून्य जुताई धान की flag leaf में photosynthetic rate तथा chlorophyll content को बढ़ाने में सहायता कर सकती है। दाना भरने की अवस्था में अधिक प्रकाश संश्लेषण से आवश्यक कार्बोहाइड्रेट एवं अन्य यौगिकों का निर्माण बेहतर होता है, जिससे समग्र cooking quality में सुधार हो सकता है।

4. मृदा गुणवत्ता- उल्कृष्ट दाना गुणवत्ता का आधार- धान के दानों की गुणवत्ता में होने वाले सुधारों का एक महत्वपूर्ण कारण शून्य जुताई द्वारा निर्मित बेहतर मृदा वातावरण है।

1. जैविक कार्बन- शून्य जुताई से ऊपरी मिट्टी में कुल कार्बनिक कार्बन तथा अस्थिर या परिवर्तनशील कार्बन की मात्रा में महत्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है।

2. नमी संरक्षण- वाष्पीकरण को कम करने तथा मिट्टी के समुच्चय को बनाए रखने से शून्य जुताई मिट्टी में अधिक स्थिर तापमान एवं नमी व्यवस्था बनाने में सहायता करती है। इससे तापमान एवं नमी तनाव से उत्पन्न chalkiness को कम किया जा सकता है।

अतिरिक्त मृदा स्वास्थ्य संकेतक * अधिक केंचुओं की जनसंख्या प्राकृतिक मृदा वातन में सुधार करती है। * सूक्ष्मजीवों की विविधता बढ़ने से पोषक तत्व चक्र बेहतर होता है। * बेहतर मृदा समुच्चय स्थिरता भारी वर्षा के दौरान मृदा अपरदन को कम करती है। * सतह पर मौजूद फसल अवशेष कई मृदा समुच्चय स्थिरता में वाष्पीकरण को कम करने में सहायता करते हैं। * अधिक कार्बन पृथक्करण जलवायु परिवर्तन के शमन में योगदान देता है।

5. खाद्य सुरक्षा- भारी धातुओं में कमी- आधुनिक धान उत्पादन में गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण पहलू जहरीले तत्वों, विशेषकर आर्सेनिक (Arsenic, As) की मात्रा है।

1. कार्यविधि- पारंपरिक पुडल राइस प्रोडक्शन में लंबे समय तक जलभराव के कारण मिट्टी में ऑक्सीजन की अनुपस्थिति परिस्थितियां बन सकती हैं। ऐसी परिस्थितियों में आर्सेनिक अधिक गतिशील और पौधों के लिए उपलब्ध हो सकता है।

2. शून्य जुताई का प्रभाव- शून्य जुताई अक्सर गैर-बाढ़ग्रस्त या वातापक्षी परिस्थितियों में अपनाई जाती है। मिट्टी में अधिक ऑक्सीजन की उपलब्धता संख्या की रासायनिक अवस्था को बदल सकती है और उसकी घुलनशीलता को कम कर सकती है। परिणामस्वरूप, पारंपरिक जलभराव और गीली जुताई प्रणाली की तुलना में ZT में उत्पादित चावल में संख्या की मात्रा कम हो सकती है।



शिवराज सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो.
राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया, रोहित कुमार

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर, कृषि
संकाय, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) वि.वि. प्रयागराज

प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ गन्ना एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। गन्ने का उपयोग मुख्य रूप से चीनी, गुड़ और खांडसारी बनाने में किया जाता है। वर्तमान समय में गन्ने से एथेनॉल का उत्पादन भी बड़े स्तर पर किया जा रहा है। एथेनॉल एक स्वच्छ, नवीकरणीय एवं पर्यावरण-अनुकूल ईंधन है, जिसका उपयोग पेट्रोल में मिलाकर किया जाता है। इससे पेट्रोलियम ईंधन पर निर्भरता कम होती है तथा पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। आज के समय में बढ़ती ऊर्जा आवश्यकता, पेट्रोलियम पदार्थों के आयात पर निर्भरता तथा पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं के समाधान के लिए एथेनॉल उत्पादन महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

एथेनॉल क्या है?-एथेनॉल एक प्रकार का अल्कोहल है जिसका रासायनिक सूत्र C_2H_5OH है। यह एक रंगहीन एवं ज्वलनशील द्रव है। एथेनॉल का उत्पादन मुख्य रूप से शर्करा एवं स्टार्च युक्त पदार्थों के किण्वन द्वारा किया जाता है। गन्ना एथेनॉल उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है क्योंकि इसमें प्राकृतिक रूप से अधिक मात्रा में शर्करा पाई जाती है।

गन्ने से एथेनॉल के उत्पादन के स्रोत- 1. गन्ने का रस 2. बी-हेवी शीरा (B-Heavy Molasses) 3. सी-हेवी शीरा (C-Heavy Molasses) 4. चीनी उत्पादन के दौरान प्राप्त उप-उत्पाद शीरा या मोलासेस चीनी उद्योग का एक महत्वपूर्ण उप-उत्पाद है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में शर्करा होती है। इसी शर्करा का उपयोग एथेनॉल बनाने के लिए किया जाता है।

गन्ने से एथेनॉल उत्पादन की प्रक्रिया- गन्ने से एथेनॉल बनाने की प्रक्रिया कई चरणों में पूरी होती है।

1. **गन्ने की कटाई एवं पेराई**- सबसे पहले खेतों से गन्ने की कटाई की जाती है। इसके बाद गन्ने को चीनी मिल में ले जाकर मशीनों द्वारा पेराई की जाती है। पेराई से गन्ने का रस प्राप्त होता है।

2. **रस या शीरे का संग्रह**- गन्ने के रस से चीनी बनाने की प्रक्रिया के दौरान शीरा प्राप्त होता है। इस शीरे में शर्करा की मात्रा अधिक होती है। एथेनॉल उत्पादन के लिए इसी शीरे या सीधे गन्ने के रस का उपयोग किया जा सकता है।

3. **किण्वन प्रक्रिया**- किण्वन एथेनॉल उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसमें शर्करा युक्त घोल में यीस्ट (Yeast) मिलाया जाता है। यीस्ट शर्करा को एथेनॉल और कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित कर देता है।

सरल रूप में प्रक्रिया इस प्रकार है-शर्करा + यीस्ट → एथेनॉल + कार्बन डाइऑक्साइड। किण्वन प्रक्रिया नियंत्रित तापमान पर की जाती है और सामान्यतः कुछ घंटों से लेकर कुछ दिनों तक चलती है।

4. **आसवन प्रक्रिया**- किण्वन के बाद प्राप्त मिश्रण में एथेनॉल के साथ पानी और अन्य पदार्थ मौजूद होते हैं। एथेनॉल को अलग करने के लिए आसवन (Distillation) प्रक्रिया अपनाई जाती है।

इस प्रक्रिया में मिश्रण को गर्म किया जाता है। एथेनॉल का क्वथनांक पानी से कम होने के कारण यह पहले वाष्प में परिवर्तित होता है। बाद में वाष्प को ठंडा करके पुनः द्रव रूप में प्राप्त किया जाता है।

5. **शुद्धिकरण**- आसवन के बाद एथेनॉल को और अधिक

गन्ने से एथेनॉल उत्पादन : स्वच्छ ऊर्जा की ओर एक टिकाऊ कदम

शुद्ध किया जाता है। ईंधन के रूप में उपयोग हेतु निर्जल एथेनॉल (Anhydrous Ethanol) तैयार किया जाता है। इसके बाद एथेनॉल को पेट्रोल में निश्चित अनुपात में मिलाया जा सकता है।

एथेनॉल का उपयोग- एथेनॉल का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है।

1. **ईंधन के रूप में**- एथेनॉल का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग पेट्रोल में मिलाकर ईंधन के रूप में किया जाता है। इसे Ethanol Blended Petrol कहा जाता है।

2. **औद्योगिक उपयोग**-एथेनॉल का उपयोग रसायन, पेंट, परफ्यूम तथा अन्य औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में किया जाता है।

3. **औषधि एवं चिकित्सा क्षेत्र**-एथेनॉल का उपयोग दवाइयों, सैनिटाइजर तथा कीटाणुनाशक उत्पादों में भी किया जाता है।

गन्ने से एथेनॉल उत्पादन के लाभ

1. **पर्यावरण संरक्षण**-एथेनॉल एक स्वच्छ ईंधन है। पेट्रोल में एथेनॉल मिलाने से हानिकारक गैसों का उत्सर्जन कम हो सकता है। इससे वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

2. **पेट्रोलियम आयात में कमी**-भारत अपनी पेट्रोलियम आवश्यकताओं के लिए काफी हद तक आयात पर निर्भर है। एथेनॉल के उपयोग से पेट्रोल की खपत कम की जा सकती है और विदेशी तेल पर निर्भरता घटाई जा सकती है।

3. **किसानों की आय में वृद्धि**-गन्ने से एथेनॉल उत्पादन बढ़ने से किसानों के लिए गन्ने की मांग बढ़ती है। इससे किसानों को अपनी फसल का बेहतर मूल्य मिलने की संभावना होती है।

4. **ग्रामीण रोजगार**- एथेनॉल उद्योग की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ सकते हैं। गन्ने की खेती, परिवहन, चीनी मिल तथा एथेनॉल संयंत्रों में लोगों को रोजगार मिलता है।

5. **नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत**- गन्ना एक कृषि फसल है जिसे बार-बार उगाया जा सकता है। इसलिए गन्ने से प्राप्त एथेनॉल को नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत माना जाता है।

भारत में एथेनॉल का महत्व- भारत में ऊर्जा की मांग लगातार बढ़ रही है। पेट्रोल और डीजल की बढ़ती खपत के कारण देश को बड़ी मात्रा में पेट्रोलियम पदार्थों का आयात करना पड़ता है। ऐसे में एथेनॉल उत्पादन भारत की ऊर्जा सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। भारत सरकार भी पेट्रोल में एथेनॉल मिश्रण को बढ़ावा दे रही है। इससे देश में जैव ईंधन के उपयोग को प्रोत्साहन मिल रहा है। गन्ना उत्पादक राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक में एथेनॉल उत्पादन की विशेष संभावनाएँ हैं।

गन्ने से एथेनॉल उत्पादन की चुनौतियाँ- 1. गन्ने की खेती में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। 2. खाद्य एवं ईंधन के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। 3. एथेनॉल संयंत्र स्थापित करने में अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। 4. गन्ने की उपलब्धता मौसम और उत्पादन पर निर्भर करती है। 5. उत्पादन एवं परिवहन के लिए उचित आधारभूत संरचना आवश्यक है। इन चुनौतियों का समाधान आधुनिक तकनीक, बेहतर कृषि प्रबंधन तथा सरकारी नीतियों द्वारा किया जा सकता है।

भविष्य की संभावनाएँ- भारत में एथेनॉल उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है। बढ़ती ऊर्जा आवश्यकता और पर्यावरण संरक्षण की जरूरत को देखते हुए एथेनॉल उत्पादन में निरंतर वृद्धि की संभावना है। भविष्य में आधुनिक तकनीकों के माध्यम से गन्ने के अवशेषों तथा अन्य कृषि अपशिष्टों से भी जैव ईंधन तैयार किया जा सकता है। इसे कृषि अपशिष्ट का सही उपयोग होगा और किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।

निष्कर्ष- गन्ने से एथेनॉल उत्पादन भारत के लिए आर्थिक, पर्यावरणीय और ऊर्जा सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह एक स्वच्छ एवं नवीकरणीय ईंधन है, जो पेट्रोलियम पदार्थों पर निर्भरता को कम करने में सहायता करता है। एथेनॉल उत्पादन से किसानों की आय बढ़ सकती है, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा हो सकते हैं तथा पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में मदद मिल सकती है। अतः गन्ने से एथेनॉल उत्पादन को बढ़ावा देना भारत के सतत विकास और स्वच्छ ऊर्जा भविष्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। सरकार, उद्योग और किसानों के सहयोग से भारत एथेनॉल उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बन सकता है।

"गन्ने से ऊर्जा तक की यात्रा, भारत के स्वच्छ और आत्मनिर्भर भविष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।"

9826067379
9826589704

Krishi Sewa Sadan

Deals in : Pesticides, Seeds, Fertilizers & Agricultural Equipments

Bhitarwar Road, Jawahar Ganj, Dabra, Distt. Gwalior



फार्म पशुओं में उन्नत प्रजनन तकनीकें : पशुपालन में नई क्रांति

डॉ. आनंदित्या खरब, डॉ. पंकज कुमार मौर्य

डॉ. सुशांत श्रीवास्तव, डॉ. आनंद अवस्थी

डॉ. आकर्ष त्यागी, डॉ. मोहम्मद इरफान

पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय,

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी

विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

प्रस्तावना: भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है। देश की करोड़ों ग्रामीण आबादी दूध, मांस, अंडा तथा अन्य पशु उत्पादों से अपनी आजीविका अर्जित करती है। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, पोषण संबंधी आवश्यकताओं तथा सीमित संसाधनों के कारण पशुधन की उत्पादकता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। केवल पशुओं की संख्या बढ़ाने से समस्या का समाधान नहीं होगा, बल्कि उनकी आनुवंशिक गुणवत्ता और उत्पादन क्षमता में सुधार करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

पारंपरिक प्रजनन विधियों के माध्यम से नस्ल सुधार की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। इस चुनौती को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों ने कई उन्नत प्रजनन तकनीकों (Advanced Breeding Technologies) का विकास किया है। इन तकनीकों ने पशुपालन क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है तथा उच्च दुग्ध उत्पादन, बेहतर प्रजनन क्षमता, रोग प्रतिरोधकता और श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले पशुओं के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। आज कृत्रिम गर्भाधान, सेक्सड सीमेन, क्रायोप्रीजर्वेशन, भ्रूण स्थानांतरण, इन-विट्रो भ्रूण उत्पादन तथा ट्रांसजेनेसिस जैसी तकनीकें पशुधन सुधार कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बन चुकी हैं। इन तकनीकों की सहायता से कम समय में अधिक आनुवंशिक प्रगति प्राप्त की जा सकती है।

उन्नत प्रजनन तकनीकों की आवश्यकता

वर्तमान समय में पशुपालन क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे— * पशुओं की कम प्रजनन क्षमता * बांझपन की बढ़ती समस्या * उच्च उत्पादक पशुओं की सीमित संख्या * रोगों का प्रसार * स्थानीय नस्लों का आनुवंशिक ह्रास * दूध एवं मांस उत्पादन की बढ़ती मांग। इन समस्याओं के समाधान के लिए आधुनिक प्रजनन तकनीकों का विकास किया गया। इन तकनीकों की सहायता से श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले पशुओं का तेजी से प्रसार किया जा सकता है तथा कम समय में नस्ल सुधार की गति को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।

1. हीट या मदकाल पहचान (Estrus Detection)

किसी भी सफल प्रजनन कार्यक्रम की शुरुआत मादा पशु में मदकाल (Heat/Estrus) की सही पहचान से होती है। मदकाल वह अवधि होती है जब मादा पशु गर्भधारण के लिए तैयार होती है। परंपरागत रूप से पशुपालक पशुओं के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर हीट की पहचान करते हैं। मदकाल में पशु बेचैन रहता है, बार-बार रंभाता है, अन्य पशुओं पर चढ़ने का प्रयास करता है तथा उसकी भूख कम हो जाती है।

आज आधुनिक तकनीकों की सहायता से हीट की पहचान अधिक सटीक रूप से की जा रही है, जैसे * पेडोमीटर (Pedometer) * एक्सेलेरोमीटर (Accelerometer) * गतिविधि मॉनिटरिंग सेंसर * इन्फ्रारेड थर्मोग्राफी

इन्फ्रारेड थर्मोग्राफी एक नवीन तकनीक है, जिसमें पशु के शरीर



के तापमान में सूक्ष्म परिवर्तनों का पता लगाया जाता है। मदकाल के दौरान जननांग क्षेत्र का तापमान बढ़ जाता है, जिससे सही समय पर गर्भाधान करना संभव हो जाता है।

2. कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination)

कृत्रिम गर्भाधान पशु प्रजनन के क्षेत्र की सबसे सफल एवं व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली तकनीक है। इसमें श्रेष्ठ नर पशु से प्राप्त वीर्य को एकत्रित करके विशेष विधि द्वारा मादा पशु के जनन मार्ग में स्थापित किया जाता है।

भारत में श्वेत क्रांति की सफलता में कृत्रिम गर्भाधान का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया 1. श्रेष्ठ सांड या भैंसे का चयन 2. वीर्य संग्रह 3. वीर्य परीक्षण 4. वीर्य का पतला करना (Dilution) 5. तरल नाइट्रोजन में संरक्षण 6. उचित समय पर मादा पशु में गर्भाधान लाभ * श्रेष्ठ नस्लों का तेजी से प्रसार * एक सांड से हजारों गायों का गर्भाधान * यौन रोगों का नियंत्रण * कम लागत में नस्ल सुधार * दूर-दराज क्षेत्रों तक आनुवंशिक सामग्री की उपलब्धता

सीमाएँ * प्रशिक्षित तकनीशियन की आवश्यकता * मदकाल की सही पहचान आवश्यक * वीर्य संरक्षण एवं परिवहन की व्यवस्था जरूरी

3. सेक्सड सीमेन तकनीक (Sexed Semen Technology)

डेयरी उद्योग में मादा बछियों का विशेष महत्व होता है क्योंकि वही भविष्य में दूध उत्पादन करती हैं। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सेक्सड सीमेन तकनीक विकसित की गई। इस तकनीक में X तथा Y गुणसूत्र वाले शुक्राणुओं को अलग किया जाता है। चूँकि X गुणसूत्र में Y गुणसूत्र की तुलना में अधिक डीएनए होता है, इसलिए आधुनिक उपकरणों द्वारा दोनों प्रकार के शुक्राणुओं को अलग किया जा सकता है।

कार्य सिद्धांत * X गुणसूत्र * मादा संतान * Y गुणसूत्र * नर संतान। यदि X गुणसूत्र वाले शुक्राणुओं का उपयोग किया जाए तो लगभग 85-90% तक मादा बछियां प्राप्त होने की संभावना रहती है।

लाभ * अधिक संख्या में दुग्ध उत्पादक मादा बछियाँ * पशुपालकों की आय में वृद्धि * अवांछित नर बछड़ों की संख्या में कमी * डेयरी उद्योग को प्रोत्साहन

भारत में महत्व-राष्ट्रीय गोकुल मिशन एवं विभिन्न राज्य पशुपालन कार्यक्रमों के माध्यम से सेक्सड सीमेन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है।

4. क्रायोप्रीजर्वेशन (Cryopreservation)

क्रायोप्रीजर्वेशन का अर्थ है जैविक सामग्री जैसे वीर्य, अंडाणु या भ्रूण को अत्यंत निम्न तापमान (-196°C) पर तरल नाइट्रोजन में सुरक्षित रखना। यह तकनीक पशुधन के "जीन बैंक" के रूप में कार्य करती है।

प्रमुख उपयोग * वीर्य संरक्षण * अंडाणु संरक्षण * भ्रूण संरक्षण * दुर्लभ नस्लों का संरक्षण

लाभ

1. आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण- उच्च गुणवत्ता वाले पशुओं की आनुवंशिक सामग्री को कई वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

2. दुर्लभ नस्लों का बचाव- देशी नस्लों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका।

3. वैश्विक आनुवंशिक आदान-प्रदान- एक देश से दूसरे देश में श्रेष्ठ आनुवंशिक सामग्री भेजना संभव।

4. भविष्य के लिए सुरक्षा- किसी उत्कृष्ट पशु की मृत्यु के बाद भी उसकी आनुवंशिक सामग्री उपलब्ध रहती है।

5. बहु-अंडोत्सर्जन एवं भ्रूण स्थानांतरण तकनीक (MOET)- Multiple Ovulation and Embryo Transfer (MOET) पशु प्रजनन की अत्यंत प्रभावी तकनीक है।

सामान्यतः एक गाय एक समय में केवल एक अंडा उत्पन्न करती है, लेकिन विशेष हार्मोनों की सहायता से एक ही चक्र में कई अंडों का उत्पादन कराया जा सकता है। इसे सुपरओव्यूलेशन कहते हैं।

प्रक्रिया 1. श्रेष्ठ दाता (Donor) पशु का चयन 2. हार्मोन द्वारा सुपरओव्यूलेशन 3. कृत्रिम गर्भाधान 4. भ्रूण विकास 5. भ्रूण संग्रह 6. प्राप्तकर्ता (Recipient) पशु में स्थानांतरण

लाभ * श्रेष्ठ गाय से अधिक संतान प्राप्ति * नस्ल सुधार की गति में वृद्धि * कम समय में अधिक आनुवंशिक लाभ * उच्च उत्पादक पशुओं का तेजी से विस्तार। आज कई प्रजनन केन्द्रों में यह तकनीक सफलतापूर्वक उपयोग की जा रही है।

6. इन-विट्रो भ्रूण उत्पादन (IVF)-इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन अर्थात् "परखनली निषेचन" आधुनिक प्रजनन विज्ञान की अत्यंत महत्वपूर्ण तकनीक है। इसमें निषेचन पशु के शरीर के बाहर प्रयोगशाला में कराया जाता है।

IVF की मुख्य अवस्थाएँ

(क) अंडाणु संग्रह- अंडाणु से अंडाणु प्राप्त किए जाते हैं।

(ख) इन-विट्रो परिपक्वन- अंडाणुओं को विशेष माध्यम में विकसित किया जाता है।

(ग) निषेचन- शुक्राणु एवं अंडाणु को प्रयोगशाला में मिलाया जाता है।

(घ) भ्रूण विकास- निषेचित अंडाणु को भ्रूण बनने तक विकसित किया जाता है।

(ङ) भ्रूण स्थानांतरण-विकसित भ्रूण को प्राप्तकर्ता पशु में स्थानांतरित किया जाता है।

लाभ * बांझ पशुओं से भी संतान प्राप्ति * उत्कृष्ट पशुओं से अधिक संख्या में संतति * आनुवंशिक सुधार में तेजी * दुर्लभ नस्लों का संरक्षण

IVF तकनीक पशुधन उद्योग में भविष्य की सबसे महत्वपूर्ण तकनीकों में से एक मानी जाती है।

7. ट्रांसजेनेसिस (Transgenesis)- ट्रांसजेनेसिस जैव प्रौद्योगिकी की अत्याधुनिक तकनीक है, जिसमें किसी पशु के जीनोम में नए जीन जोड़े जाते हैं या मौजूदा जीनों में परिवर्तन किया जाता है। इस तकनीक द्वारा ऐसे पशुओं का निर्माण किया जा सकता है जिनमें विशेष वांछनीय गुण हों।

संभावित उपयोग * रोग प्रतिरोधी पशु * ऐसे पशु जो विभिन्न संक्रामक रोगों का सामना कर सकें। * अधिक दूध उत्पादन * दूध में प्रोटीन एवं पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाना। * बेहतर मांस उत्पादन * मांस की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार। * औषधीय प्रोटीन उत्पादन * दूध में मानव उपयोगी औषधीय प्रोटीनों का उत्पादन।



अनुराग सिंह मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारागंज, अयोध्या (उ.प्र.)

विनीत कुमार (शोध छात्र), मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

प्रशांत श्रीवास्तव मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

प्रस्तावना

मूंग (Vigna radiata) भारत की एक प्रमुख दलहनी फसल है, जो अल्प अवधि में तैयार होकर किसानों को त्वरित आय प्रदान करती है। यह प्रोटीन, खनिज और विटामिन का उत्कृष्ट स्रोत है। मूंग की खेती न केवल पोषण सुरक्षा में योगदान देती है, बल्कि मृदा की उर्वरता भी बढ़ाती है क्योंकि यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करती है। दलहनी फसलों में मूंग का विशेष स्थान है क्योंकि यह फसल कम समय में तैयार होती है और अन्य फसलों के साथ अंतरवर्ती खेती में भी लाभकारी होती है।

जलवायु एवं मृदा आवश्यकता

मूंग की सफल खेती के लिए गर्म और शुष्क जलवायु उपयुक्त होती सिद्ध है। 25-35°C तापमान तथा पर्याप्त धूप इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक है। अच्छी जलनिकासी वाली दोमट मिट्टी, जिसका pH 6.5-7.5 हो, आदर्श मानी जाती है। जलभराव वाली भूमि में मूंग की खेती नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे पौधों की जड़ें सड़ जाती हैं। हल्की रेतिली मिट्टी में भी मूंग की खेती की जा सकती है, बशर्ते उसमें पर्याप्त जैविक पदार्थ और नमी हो।

बुवाई का समय एवं बीज दर

खरीफ मौसम में मूंग की बुवाई जून-जुलाई में की जाती है, जबकि ग्रीष्मकालीन फसल मार्च-अप्रैल में बोई जाती है। खरीफ में बीज दर 15-20 किग्रा/हेक्टेयर तथा ग्रीष्म में 20-25 किग्रा/हेक्टेयर रखी जाती है। कतार से कतार की दूरी 30 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी उपयुक्त है। बीज को 3-4 सेमी गहराई पर बोना चाहिए। समय पर बुवाई से फसल रोगों और कीटों से बची रहती है तथा उपज भी अधिक मिलती है।

बीज उपचार एवं इन्ोकुलेशन

बीज को बुवाई से पूर्व कार्बेन्डाजिम या थिरम जैसे फफूंदनाशी से उपचारित करना चाहिए। सफेद मक्खी जैसे कीटों से बचाव हेतु इमिडाक्लोप्रिड का प्रयोग किया जा सकता है। राइजोबियम कल्चर से बीज का लेपन करने पर नोड्यूल निर्माण बेहतर होता है और नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है। इससे फसल की वृद्धि तीव्र होती है और उपज में वृद्धि होती है।

पोषण प्रबंधन

मूंग की प्रारंभिक वृद्धि हेतु 15-20 किग्रा नाइट्रोजन, 40-50 किग्रा फॉस्फोरस तथा आवश्यकता अनुसार पोटैश देना चाहिए। जैविक खाद जैसे गोबर खाद या वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग मृदा

उत्तर भारत में मूंग की वैज्ञानिक खेती और उसका आर्थिक महत्व



स्वास्थ्य सुधारने में सहायक होता है। मूंग प्रति हेक्टेयर 58-109 किग्रा नाइट्रोजन स्थिर कर सकती है, जिससे अगली फसल को लाभ मिलता है। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक और सल्फर का प्रयोग भी उपज बढ़ाने में सहायक होता है।

सिंचाई प्रबंधन

खरीफ फसल वर्षा पर निर्भर रहती है, जबकि ग्रीष्मकालीन फसल में 3-4 सिंचाई आवश्यक होती है। फूल आने और फलियाँ भरने की अवस्था पर सिंचाई विशेष रूप से जरूरी है। जलभराव से फूल झड़ जाते हैं, अतः निकास व्यवस्था अनिवार्य है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली का प्रयोग करने से जल की बचत होती है और फसल की उत्पादकता बढ़ती है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

मूंग की खेती में रोग और कीट सबसे बड़ी चुनौती होते हैं, क्योंकि ये सीधे फसल की उत्पादकता और गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। प्रमुख रोगों में पीला मोजेक रोग सबसे खतरनाक माना जाता है, जो सफेद मक्खी द्वारा फैलाता है। इस रोग में पत्तियों पर पीले धब्बे दिखाई देते हैं और धीरे-धीरे पूरी पत्ती पीली होकर सूख जाती है। इससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है और फलियाँ कम बनती हैं। इसके नियंत्रण के लिए रोगसहनशील किस्मों का चयन करना चाहिए तथा सफेद मक्खी की रोकथाम हेतु इमिडाक्लोप्रिड या थायोमैथॉक्साम का छिड़काव करना चाहिए। एक अन्य प्रमुख रोग पत्ती झुलसा है, जो Cercospora प्रजाति के कारण होता है। इसमें पत्तियों पर भूरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में बड़े होकर पूरी पत्ती को सुखा देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए बीज उपचार कार्बेन्डाजिम से करना चाहिए और रोगग्रस्त पौधों को खेत से निकालकर नष्ट करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर क्लोरोथालोनिल या मैनकोजेब का छिड़काव भी किया जा सकता है। इसी प्रकार जड़ सड़न रोग भी मूंग में पाया जाता है, जो Rhizoctonia solani और Fusarium spp. के कारण होता है। इसमें पौधे अचानक मुरझा जाते हैं और जड़ों पर सड़न दिखाई देती है। इसके नियंत्रण के लिए बीज उपचार थिरम या कार्बेन्डाजिम से करना चाहिए तथा फसल चक्र अपनाना चाहिए। जैविक नियंत्रण हेतु Trichoderma harzianum का प्रयोग भी प्रभावी है।

कीटों में सफेद मक्खी सबसे खतरनाक है, क्योंकि यह पीला मोजेक रोग फैलाती है। इसके नियंत्रण के लिए नीम आधारित

कीटनाशी या इमिडाक्लोप्रिड का प्रयोग किया जा सकता है। फलछेदक कीट (Helicoverpa armigera) भी मूंग की फलियों को छेदकर दाने खा जाती है, जिससे उपज में भारी कमी आती है। इसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप, नीम तेल का छिड़काव तथा आवश्यकता पड़ने पर स्पिनोसैड या इंडोक्साकार्ब का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा तना छेदक भी नुकसान पहुँचाता है, जो पौधों के तने में सुरंग बनाकर उनकी वृद्धि रोक देता है। इसका नियंत्रण समय पर बुवाई और बीज उपचार से किया जा सकता है।

समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन पद्धति अपनाना सबसे प्रभावी उपाय है। इसमें रोगसहनशील किस्मों का चयन, बीज उपचार, जैविक नियंत्रण एजेंट जैसे Trichoderma और Beauveria bassiana का प्रयोग, फेरोमोन ट्रैप और प्रकाश ट्रैप का उपयोग तथा रासायनिक दवाओं का प्रयोग केवल आर्थिक क्षति सीमा पार होने पर करना शामिल है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबंधन से मूंग की फसल को रोग और कीटों से सुरक्षित रखा जा सकता है और उच्च गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त की जा सकती है।

कटाई एवं उपज

मूंग की फलियाँ असमान रूप से पकती हैं, इसलिए 1-2 बार तुड़ाई करनी पड़ती है। औसत उपज 10-15 क्विंटल/हेक्टेयर होती है, जबकि सुधारीत किस्मों से 18-20 क्विंटल/हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। कटाई के बाद तुरंत मड़ाई कर दाने की गुणवत्ता बनाए रखनी चाहिए। भंडारण के समय नमी की मात्रा 10% से कम होनी चाहिए ताकि दाने सुरक्षित रहें।

आर्थिक महत्व

मूंग की खेती से किसानों को अल्प अवधि में नकदी आय प्राप्त होती है। यह फसल मृदा की उर्वरता बढ़ाती है और धानगेहूँ प्रणाली में उत्कृष्ट विकल्प है। वर्तमान में मूंग का न्यूनतम समर्थन मूल्य लगभग ₹8,780 प्रति क्विंटल है। मूंग की खेती से किसानों को न केवल आर्थिक लाभ मिलता है, बल्कि पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है।

निष्कर्ष

मूंग की वैज्ञानिक खेती किसानों के लिए एक अत्यंत लाभकारी विकल्प है, क्योंकि यह अल्प अवधि में तैयार होकर नकदी आय प्रदान करती है और साथ ही पोषण सुरक्षा में भी योगदान देती है। इस फसल की सफलता के लिए समय पर बुवाई, प्रमाणित बीजों का प्रयोग, संतुलित पोषण प्रबंधन, उचित सिंचाई व्यवस्था तथा रोगकीटों का समन्वित नियंत्रण आवश्यक है। मूंग की खेती से न केवल उच्च गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त होती है, बल्कि यह मृदा की उर्वरता भी बढ़ाती है क्योंकि यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करती है। इसके अतिरिक्त, मूंग का धानगेहूँ जैसी एकल फसल प्रणाली में समावेश करने से फसल चक्र अधिक संतुलित होता है और किसानों को अतिरिक्त आय का अवसर मिलता है। रोग एवं कीट प्रबंधन में जैविक और रासायनिक उपायों का संतुलित प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण, तथा रोगसहनशील किस्मों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है।



डॉ. शिविका चौकसे (सहायक प्रोफेसर) पशु चिकित्सा मादा रोग एवं प्रसूति रोग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, बांदा कृषि एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)

डॉ. जितेन्द्र कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु चिकित्सा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहाव, बलिया, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. कुमारगंज, अयोध्या

पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था और किसानों की आय का एक महत्वपूर्ण आधार है। गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं से दूध, बछड़े-बछिया तथा अन्य पशुपालन उत्पाद प्राप्त होते हैं। लेकिन जब कोई पशु बार-बार गर्मी (हीट) में आने के बावजूद गर्भधारण नहीं करता, गर्भधारण के बाद बार-बार गर्भपात हो जाता है या लंबे समय तक गर्मी के लक्षण दिखाई नहीं देते, तो ऐसी स्थिति पशुपालक के लिए चिंता का विषय बन जाती है। इसे सामान्य भाषा में बाँझपन या प्रजनन संबंधी समस्या कहा जाता है। बाँझपन के कारण पशु का ब्यांतों के बीच अंतर बढ़ जाता है, दूध उत्पादन से होने वाली आय प्रभावित होती है, प्रजनन पर खर्च बढ़ता है तथा पशुपालक को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए पशुओं में बाँझपन की समस्या को समय रहते पहचानना और उचित प्रबंधन करना अत्यंत आवश्यक है।

बाँझपन क्या है?

जब कोई स्वस्थ एवं प्रजनन योग्य मादा पशु उचित समय पर प्रजनन कराने के बावजूद गर्भधारण नहीं कर पाता या सामान्य प्रजनन चक्र में बाधा उत्पन्न होती है, तो इसे बाँझपन कहा जाता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हर बार गर्भधारण न होना स्थायी बाँझपन नहीं होता। कई बार पोषण की कमी, प्रसव के बाद गर्भाशय में संक्रमण, हार्मोनल असंतुलन, गलत समय पर कृत्रिम गर्भाधान या गर्मी की सही पहचान न होने के कारण भी पशु गर्भधारण नहीं कर पाता।

पशुओं में बाँझपन के प्रमुख कारण

बाँझपन किसी एक कारण से नहीं होता। इसके पीछे पोषण, प्रबंधन, संक्रमण, हार्मोन तथा प्रजनन संबंधी कई कारण हो सकते हैं।

1. पोषण की कमी

पशुओं में बाँझपन का सबसे महत्वपूर्ण कारण असंतुलित पोषण है। यदि पशु को पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज और विटामिन नहीं मिलते हैं, तो उसके प्रजनन चक्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

विशेष रूप से निम्न पोषक तत्वों की कमी प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकती है—* ऊर्जा की कमी * प्रोटीन की कमी * फॉस्फोरस की कमी * कैल्शियम का असंतुलन * कॉपर, जिंक, मैंगनीज जैसे सूक्ष्म खनिजों की कमी * विटामिन A एवं E की कमी प्रसव के बाद अधिक दूध देने वाले पशुओं में ऊर्जा की कमी होने पर शरीर की स्थिति तेजी से खराब हो सकती है और पशु देर से गर्मी में आता है।

2. प्रसव के बाद गर्मी में न आना—कई पशु प्रसव के बाद लंबे समय तक गर्मी में नहीं आते। इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं—* कम पोषण * अत्यधिक दूध उत्पादन * शरीर की कमजोर स्थिति * लंबे समय तक ऊर्जा की कमी * गर्भाशय में संक्रमण * अंडाशय की गतिविधि कम होना * गलत प्रबंधन

ऐसे पशुओं की समय पर जांच और उचित उपचार आवश्यक है।

3. गर्भाशय में संक्रमण—प्रसव के बाद यदि गर्भाशय में संक्रमण

पशुओं में बाँझपन की समस्या: कारण, लक्षण, बचाव एवं प्रभावी प्रबंधन



हो जाए तो पशु के गर्भधारण की संभावना कम हो सकती है। कठिन प्रसव, मृत भ्रूण, गर्भाशय में झिल्ली का रुकना तथा प्रसव के दौरान अस्वच्छता संक्रमण के जोखिम को बढ़ा सकती है।

संक्रमण के कारण—* असामान्य योनि स्राव * दुग्धयुक्त स्राव * गर्भाशय की सामान्य स्थिति में देरी * गर्मी का अनियमित होना * गर्भधारण में कठिनाई

4. गर्मी की सही पहचान न होना—पशुपालकों के लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण समस्या है। कई बार पशु गर्मी में आता है लेकिन उसके लक्षण स्पष्ट नहीं होते। इसे Silent Heat कहा जाता है। गर्मी की पहचान न होने के कारण कृत्रिम गर्भाधान गलत समय पर किया जा सकता है।

गाय एवं भैंस में गर्मी के प्रमुख लक्षणों में—* बार-बार दूसरे पशु पर चढ़ना या चढ़ने देना * बचैनी * बार-बार रंभना * पूंछ उठाना * योनि से पारदर्शी श्लेष्मा निकलना * दूसरे पशुओं को सूंघना * भूख एवं दूध उत्पादन में हल्का परिवर्तन शामिल हो सकते हैं। भैंसों में गर्मी के लक्षण कई बार अपेक्षाकृत कम स्पष्ट होते हैं, इसलिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

5. अंडाशय की समस्या: अंडाशय पशु के प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अंडाशय में फॉलिकल का सामान्य विकास न होना, ओव्युलेशन में समस्या या सिस्टिक ओवेरियन डिजीज जैसी स्थितियां गर्भधारण को प्रभावित कर सकती हैं। ऐसी समस्याओं का पता सामान्य जांच के साथ-साथ आवश्यकता पड़ने पर रेक्टल परीक्षा और अल्ट्रासोनोग्राफी द्वारा लगाया जा सकता है।

6. प्रजनन संबंधी संक्रामक रोग

कुछ संक्रामक रोग पशुओं में गर्भधारण, गर्भावस्था तथा भ्रूण के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए—

* ब्रूसेल्लोसिस * ट्राइकोमोनियासिस * कैपिलोबैक्टीरियोसिस * कुल अन्य गर्भाशय संबंधी संक्रमण। इनसे बचाव के लिए टीकाकरण, स्वच्छ प्रबंधन और संक्रमित पशुओं की पहचान महत्वपूर्ण है।

बाँझपन के प्रमुख संकेत

पशुपालक निम्न संकेतों पर विशेष ध्यान दें— 1. पशु लंबे समय तक गर्मी में न आए। 2. गर्मी में आने के बावजूद गर्भधारण न करे। 3. बार-बार गर्मी में आए। 4. कई बार AI कराने के बाद भी गर्भधारण न हो। 5. प्रसव के बाद लंबे समय तक गर्मी न आए। 6. योनि से असामान्य या दुग्धयुक्त स्राव आए। 7. बार-बार गर्भपात हो। 8. पिछले ब्यांत के बाद बहुत लंबा अंतर हो जाए। 9. पशु की शारीरिक स्थिति लगातार कमजोर होती जाए।

बाँझपन से होने वाला आर्थिक नुकसान— बाँझपन केवल प्रजनन की समस्या नहीं है, बल्कि यह पशुपालक की आय को भी प्रभावित करता है।

इसके कारण—* ब्यांतों के बीच अंतर बढ़ जाता है। * दूध उत्पादन की अवधि प्रभावित होती है। * AI एवं उपचार पर अतिरिक्त खर्च होता है। * पशु को लंबे समय तक खिलाने का खर्च बढ़ता है। * बछड़े/बछिया का उत्पादन कम हो जाता है। * पशु की उत्पादक जीवन अवधि कम हो सकती है। * अंततः पशुपालक की आर्थिक आय प्रभावित होती है। इसलिए बाँझपन की रोकथाम करना उपचार करने की अपेक्षा अधिक लाभकारी है।

बाँझपन से बचाव के उपाय

1. संतुलित आहार दें

पशु को उसकी उम्र, वजन, दूध उत्पादन एवं गर्भावस्था की अवस्था के अनुसार संतुलित आहार देना चाहिए।

आहार में शामिल करें—* हरा चारा * सूखा चारा * संतुलित दाना * खनिज मिश्रण * नमक * पर्याप्त स्वच्छ पानी

2. खनिज मिश्रण का उपयोग—खनिज मिश्रण प्रजनन स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। पशुपालक को पशु चिकित्सक या पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार उचित मात्रा में खनिज मिश्रण देना चाहिए।

3. गर्मी की नियमित निगरानी करें—विशेषकर भैंसों में गर्मी के लक्षण कई बार कम स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसलिए सुबह जल्दी और शाम के समय पशुओं को ध्यान से देखना उपयोगी होता है। गर्मी की तारीख को रजिस्टर में लिखकर रखना चाहिए। इससे अगले प्रजनन चक्र की निगरानी आसान हो जाती है।

4. सही समय पर कृत्रिम गर्भाधान—गर्मी की सही पहचान के बाद उचित समय पर उच्च गुणवत्ता वाले वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान कराया जाना चाहिए। कृत्रिम गर्भाधान हमेशा प्रशिक्षित व्यक्ति से ही करवाना चाहिए तथा स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

5. समय पर पशु चिकित्सक से जांच कराएं—यदि पशु बार-बार गर्मी में आ रहा है, लंबे समय तक गर्मी में नहीं आ रहा या कई बार AI के बाद भी गर्भधारण नहीं कर रहा है, तो उसे केवल घरेलू उपचार देने के बजाय पशु चिकित्सक से प्रजनन जांच करवाना चाहिए।

पशु चिकित्सक आवश्यकता के अनुसार—* प्रजनन अंगों की जांच * गर्भाशय की जांच * अंडाशय की जांच * अल्ट्रासोनोग्राफी * संक्रमण की जांच * हार्मोन संबंधी मूल्यांकन कर सकता है।

उपचार के संबंध में महत्वपूर्ण सावधानी— बाँझपन का उपचार कारण के अनुसार किया जाता है। सभी पशुओं के लिए एक ही दवा या हार्मोन उपयोगी नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि समस्या पोषण की कमी के कारण है तो पोषण सुधारना आवश्यक है; यदि गर्भाशय में संक्रमण है तो उसका उचित उपचार जरूरी है; और यदि अंडाशय संबंधी समस्या है तो पशु चिकित्सक की जांच के बाद उपयुक्त हार्मोनल उपचार किया जा सकता है। बिना जांच के हार्मोन, एंटीबायोटिक या अन्य प्रजनन संबंधी दवाएं स्वयं न दें।

पशुपालकों के लिए विशेष संदेश—पशु में बाँझपन अचानक पैदा होने वाली समस्या नहीं है। अक्सर इसकी शुरुआत पशु के पोषण, प्रसव के बाद की देखभाल, स्वच्छता, गर्मी की पहचान और प्रजनन प्रबंधन से जुड़ी छोटी-छोटी गलतियों से होती है। इसलिए—“सही पोषण + सही प्रबंधन + गर्मी की सही पहचान + सही समय पर AI + समय पर गर्भ जांच = बेहतर प्रजनन एवं अधिक लाभ” पशुपालक यदि पशु के प्रसव से पहले, प्रसव के समय और प्रसव के बाद उचित देखभाल करें तथा नियमित रूप से प्रजनन की निगरानी रखें, तो बाँझपन की कई समस्याओं को कम किया जा सकता है।



✍ निर्मल चंद्र (शोध छात्र)

✍ डॉ. धीरज मिश्रा (सहायक प्राध्यापक)

कृषि प्रसार विभाग, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विद्यालय बांदा (उ.प्र.)

सारांश: कृषि क्षेत्र में किसी उत्पाद का महत्व केवल उसके उत्पादन तक सीमित नहीं होता, बल्कि उत्पादन के बाद उसकी संग्रहण, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, विपणन और उपभोक्ता तक पहुँच की पूरी प्रक्रिया उसके वास्तविक आर्थिक मूल्य को निर्धारित करती है। इसी पूरी प्रक्रिया को मूल्य श्रृंखला के रूप में समझा जाता है। कृषि मूल्य श्रृंखला में किसान, इनपुट आपूर्तिकर्ता, संग्रहकर्ता, प्रसंस्करणकर्ता, परिवहनकर्ता, थोक एवं खुदरा विक्रेता तथा उपभोक्ता जैसे अनेक हितधारक जुड़े होते हैं। प्रत्येक स्तर पर उत्पाद में उपयोगिता और मूल्य जोड़ा जाता है। एक प्रभावी मूल्य श्रृंखला किसानों को बेहतर बाजार उपलब्ध कराने, उत्पाद के मूल्यवर्धन, कृषि उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने, रोजगार के अवसर पैदा करने तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत लेख में कृषि मूल्य श्रृंखला की अवधारणा, उत्पादन से उपभोक्ता तक इसकी प्रक्रिया तथा कृषि विकास में इसके व्यावहारिक योगदान पर चर्चा की गई है।

प्रमुख शब्द: कृषि, मूल्य श्रृंखला, मूल्यवर्धन, किसान, प्रसंस्करण, विपणन, बाजार, ग्रामीण विकास।

1. प्रस्तावना: भारत में कृषि लाखों परिवारों की आजीविका का प्रमुख आधार है। किसान खेतों में विभिन्न फसलों, फल-सब्जियों, दूध तथा अन्य कृषि एवं पशुधन उत्पादों का उत्पादन करते हैं। लेकिन किसान द्वारा उत्पादित वस्तु का अंतिम मूल्य केवल खेत पर होने वाले उत्पादन से निर्धारित नहीं होता। खेत से बाजार और बाजार से उपभोक्ता तक पहुँचने के दौरान अनेक गतिविधियाँ होती हैं, जिनमें प्रत्येक स्तर पर उत्पाद के मूल्य में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए, एक किसान द्वारा उत्पादित टमाटर यदि सीधे स्थानीय बाजार में बेचा जाता है, तो उसे एक निश्चित कीमत प्राप्त होगी। लेकिन वही टमाटर यदि छँटाई, ग्रेडिंग, पैकेजिंग और प्रसंस्करण के बाद साँस या प्युरी के रूप में बाजार में पहुँचाता है, तो उसका आर्थिक मूल्य काफी अलग हो सकता है। इसी प्रकार दूध केवल एक कच्चा उत्पाद नहीं है।

2. कृषि मूल्य श्रृंखला की अवधारणा एवं उत्पादन से उपभोक्ता तक इसकी प्रक्रिया: मूल्य श्रृंखला उन सभी गतिविधियों और हितधारकों की श्रृंखला है जो किसी उत्पाद को प्रारंभिक उत्पादन स्तर से अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचाने में योगदान करते हैं। कृषि क्षेत्र में इसकी शुरुआत उत्पादन के लिए आवश्यक इनपुट से होती है। किसान को गुणवत्तापूर्ण बीज, उर्वरक, पशु, चारा, दवाइयाँ, कृषि उपकरण और अन्य संसाधनों की आवश्यकता होती है। इनपुट की गुणवत्ता और उपलब्धता सीधे उत्पादन तथा उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। इसके बाद उत्पादन स्तर आता है, जहाँ किसान अपनी भूमि, पशुधन, श्रम, पूँजी और तकनीक का उपयोग करके कृषि उत्पाद तैयार करता है। लेकिन उत्पादन के बाद भी किसान की जिम्मेदारी समाप्त नहीं होती। उत्पाद को सही समय पर एकत्र करना, उसकी गुणवत्ता बनाए रखना और बाजार तक पहुँचाना भी उनका ही महत्वपूर्ण है। इसके बाद संग्रहण और संकलन की भूमिका आती है। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह चरण महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनका उत्पादन अपेक्षाकृत कम और बिखरा हुआ होता है। यदि किसानों के उत्पाद को सामूहिक रूप से एकत्र किया जाए, तो बड़ी मात्रा में उत्पाद बाजार या प्रसंस्करण इकाई तक पहुँचाया जा सकता है। इससे परिवहन लागत कम करने और किसानों की सौदेबाजी क्षमता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। इसके बाद आवश्यकता के अनुसार ग्रेडिंग, छँटाई और प्रसंस्करण किया जाता है। यही वह चरण है जहाँ सबसे अधिक मूल्यवर्धन की संभावनाएँ पैदा होती हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ को आटे में, गन्ने को चीनी में, आम को पल्प या जूस

कृषि विकास में मूल्य श्रृंखला की भूमिका: उत्पादन से उपभोक्ता तक मूल्यवर्धन का एक विश्लेषण



में और दूध को पनीर, दही या घी में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रसंस्करण से उत्पाद का उपयोग बढ़ता है, उसकी शेल्फ लाइफ बेहतर हो सकती है और बाजार के विभिन्न वर्गों तक उसकी पहुँच संभव होती है।

3. कृषि विकास में मूल्य श्रृंखला का योगदान: कृषि विकास में मूल्य श्रृंखला की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका कृषि उत्पाद में मूल्यवर्धन करना है। परंपरागत कृषि व्यवस्था में किसान अक्सर अपना उत्पाद कटाई या उत्पादन के तुरंत बाद बेच देता है। ऐसी स्थिति में किसान को उत्पाद के आगे के प्रसंस्करण और विपणन से उत्पन्न अतिरिक्त मूल्य का लाभ सीमित रूप में मिलता है। यदि उत्पादन के बाद स्थानीय स्तर पर ही ग्रेडिंग, पैकेजिंग, प्रसंस्करण और ब्रांडिंग जैसी गतिविधियाँ विकसित की जाएँ, तो कृषि उत्पाद का आर्थिक मूल्य बढ़ाया जा सकता है। मूल्य श्रृंखला किसानों को बेहतर बाजार से जोड़ने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसान यदि केवल स्थानीय व्यापारी या सीमित बाजार पर निर्भर है, तो उसकी सौदेबाजी की क्षमता कमजोर हो सकती है। इसके विपरीत, यदि किसान संगठित होकर FPO, सहकारी संस्था या अन्य सामूहिक व्यवस्था के माध्यम से बाजार से जुड़ता है, तो वह बड़ी मात्रा में उत्पाद बेच सकता है और खरीदारों के साथ बेहतर शर्तों पर बातचीत कर सकता है। मूल्य श्रृंखला का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार है। आज उपभोक्ता केवल उत्पाद की मात्रा नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता, स्वच्छता, पैकेजिंग और सुरक्षा पर भी ध्यान देता है। इसलिए उत्पादन के साथ-साथ संग्रहण, ग्रेडिंग, चिलिंग, प्रसंस्करण और पैकेजिंग जैसी गतिविधियाँ महत्वपूर्ण हो गई हैं। विशेष रूप से दूध क्षेत्र में किसान से उपभोक्ता तक दूध की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए संग्रहण और शीत श्रृंखला की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त मूल्य श्रृंखला रोजगार और ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देती है। कृषि उत्पाद के आसपास यदि प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन, भंडारण, विपणन और अन्य सेवाएँ विकसित होती हैं, तो ग्रामीण क्षेत्रों में केवल खेती ही नहीं बल्कि गैर-कृषि रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी ग्रामीण क्षेत्र में दूध प्रसंस्करण इकाई स्थापित होने पर किसानों के साथ-साथ संग्रहकर्ता, परिवहनकर्ता, पैकेजिंग कर्मचारी, तकनीकी कर्मचारी और विक्रेताओं के लिए भी रोजगार पैदा हो सकता है। मूल्य श्रृंखला कृषि अपव्यय को कम करने में भी उपयोगी हो सकती है। फल, सब्जियाँ, दूध और अन्य शीघ्र खराब होने वाले उत्पादों में यदि समय पर संग्रहण, भंडारण और प्रसंस्करण की व्यवस्था हो, तो खराब होने वाले उत्पाद की मात्रा कम की जा सकती है। इस प्रकार जो उत्पाद पहले नुकसान के रूप में समाप्त हो जाता था, उसे प्रसंस्कृत करके बाजार योग्य उत्पाद में बदला जा सकता है।

4. कृषि मूल्य श्रृंखला की व्यावहारिक चुनौतियाँ और सुधार की आवश्यकता: भारत में कृषि मूल्य श्रृंखला के विकास के सामने कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। छोटे और बिखरे हुए किसानों के कारण उत्पादन को एक स्थान पर एकत्र करना कठिन होता है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भंडारण, कोल्ड चेन, प्रसंस्करण इकाइयों और गुणवत्तापूर्ण परिवहन की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। इसके अतिरिक्त किसानों को बाजार की वास्तविक मांग, कीमतों और खरीदारों से संबंधित समय पर जानकारी नहीं मिल पाती। एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या मूल्य अस्थिरता है। कृषि उत्पादों की कीमतें मांग और आपूर्ति के अनुसार तेजी से बदल सकती हैं। यदि किसान के पास भंडारण या प्रसंस्करण की सुविधा नहीं है, तो वह मजबूरी में कम कीमत पर अपना उत्पाद बेच सकता है। इसलिए मूल्य श्रृंखला को मजबूत करने के लिए केवल उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में किसान उत्पादक संगठन (FPO), सहकारी संस्थाएँ और सामूहिक विपणन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। किसानों को समूह में संगठित करके इनपुट की सामूहिक खरीद, उत्पाद का सामूहिक संग्रहण, ग्रेडिंग, पैकेजिंग और बाजार में सामूहिक बिक्री की जा सकती है। इससे छोटे किसानों की सौदेबाजी शक्ति बढ़ सकती है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं मध्यम स्तर की प्रसंस्करण इकाइयों को बढ़ावा देना आवश्यक है।

5. निष्कर्ष: कृषि विकास में मूल्य श्रृंखला की भूमिका उत्पादन से कहीं अधिक व्यापक है। यह किसान को बाजार से, कच्चे उत्पाद को मूल्यवर्धित उत्पाद से और ग्रामीण उत्पादन को उपभोक्ता की मांग से जोड़ती है। यह एक मजबूत कृषि मूल्य श्रृंखला के माध्यम से मूल्यवर्धन, बेहतर बाजार पहुँच, उत्पाद की गुणवत्ता, रोजगार, ग्रामीण उद्यमिता और किसानों की आय में सुधार की संभावनाएँ बढ़ती हैं। कृषि क्षेत्र के विकास के लिए केवल अधिक उत्पादन करना पर्याप्त नहीं है। वास्तविक चुनौती यह है कि उत्पाद को सही समय, सही गुणवत्ता और सही बाजार तक पहुँचाया जाए तथा उत्पादन के बाद होने वाले मूल्यवर्धन का अधिक से अधिक लाभ किसानों और ग्रामीण समुदायों तक पहुँचे। इसलिए भविष्य की कृषि विकास रणनीति में अधिक उत्पादन के साथ-साथ बेहतर मूल्य श्रृंखला पर भी समान ध्यान देना आवश्यक है। यदि किसान को गुणवत्तापूर्ण इनपुट, तकनीकी ज्ञान, संग्रहण, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, बाजार सूचना और बेहतर विपणन व्यवस्था से जोड़ा जाए, तो कृषि केवल उत्पादन की गतिविधि न रहकर एक अधिक संगठित और लाभकारी व्यवसायिक व्यवस्था में परिवर्तित हो सकती है। यही एक मजबूत कृषि मूल्य श्रृंखला की वास्तविक भूमिका है। कृषि विकास में मूल्य श्रृंखला की भूमिका-उत्पादन से उपभोक्ता तक मूल्यवर्धन का एक विश्लेषण



परमानन्द कुमार मौर्य, वरुण आर्य
(शोध छात्र)

श्रीनिवास एन (सहायक प्राध्यापक)
कीट विज्ञान एवं कृषि जन्तु विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान संस्थान
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

भारत में खेती के साथ सहायक व्यवसाय अपनाना किसानों की आय बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है। मधुमक्खी पालन ऐसा ही व्यवसाय है, जिसमें किसान को शहद एवं अन्य मधुमक्खी उत्पादों से प्रत्यक्ष आय प्राप्त होती है, जबकि मधुमक्खियाँ फसलों में परागण करके उत्पादन एवं गुणवत्ता सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। मधुमक्खी पालन को खेत, बागवानी और सब्जी उत्पादन के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है। जैसे मधुमक्खियों की उचित देखभाल एवं वैज्ञानिक प्रबंधन से सामान्यतः लगभग 20 से 25 किलोग्राम शहद प्रति कॉलोनी प्रति वर्ष प्राप्त हो सकता है, हालांकि अनुकूल परिस्थितियों में उत्पादन अधिक भी हो सकता है।

मुख्य शब्द-मधुमक्खी पालन, परागण, शहद, किसान आय, कृषि विविधीकरण

प्रस्तावना-खेती भारत में अधिकांश किसानों की आजीविका का मुख्य स्रोत है, लेकिन बढ़ती कृषि लागत, मौसम की अनिश्चितता, बाजार में उतार-चढ़ाव और छोटी और सीमांत जोत के कारण केवल फसल उत्पादन से पर्याप्त और स्थिर आय प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में किसान खेती के साथ मधुमक्खी पालन को भी अपना सकते हैं, जो उनके लिए अतिरिक्त आय का एक प्रभावी साधन बन सकता है। मधुमक्खी पालन एक विशेषता है क्योंकि इसके लिए बहुत अधिक जमीन नहीं चाहिए। किसान अपने खेत के किनारे, बाग में या किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर मधुमक्खी कॉलोनियों को बना सकते हैं। खेतों में मधुमक्खियों को मकरंद और पराग भी मिलता है, जैसे कि सरसों, सूरजमुखी, तिल, फल और सब्जियों के फूल। इस प्रकार खेती और मधुमक्खी पालन एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं।

किसानों के लिए मधुमक्खियों की उपयोगिता- मधुमक्खियों का उपयोग सिर्फ शहद उत्पादन में नहीं होता। परागण उनका कृषि में सबसे बड़ा योगदान है। जब मधुमक्खी फूलों से मकरंद और पराग एकत्र करती है, तो उसके शरीर पर परागकण चिपक जाते हैं। यही परागकण दूसरे फूल के वर्तिकाग्र तक पहुँचते हैं। इस तरह मधुमक्खियाँ एक फूल से दूसरे फूल तक पराग पहुँचाती हैं। **परागण के कारण-**

i. फल बनने की प्रक्रिया अच्छी हो सकती है। ii. बीज निर्माण अच्छा हो सकता है। iii. फल का आकार एवं गुणवत्ता बढ़ता है। iv. फसलों के कुल उपज में वृद्धि होती है। v. फल एवं सब्जियों में असामान्य या टेढ़े-मेढ़े फलों की समस्या कम हो सकती है। vi. बीज वाली फसलों में बेहतर बीज उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

मधुमक्खियों को विशेष रूप से उन फसलों में उपयोगी पाया जाता है जिनमें कीट-परागण महत्वपूर्ण होता है।

खेती के साथ मधुमक्खी पालन: किसानों के लिए अतिरिक्त आय का सुनहरा अवसर

मधुमक्खियों के परागण द्वारा निम्नलिखित फसलों को लाभ होता है -

प्रमुख फसलें-राई/ सरसों, सूरजमुखी, तिल, फलदार, खीर, कद्दू, करेला, लौकी, तरबूज, खरबूजा, धनिया, सौंफ, लीची आदि।

मधुमक्खी पालन से कितनी अतिरिक्त आय हो सकती है किसान की आय मुख्य रूप से कॉलोनियों की संख्या, मधुमक्खी की प्रजाति, पुष्पीय संसाधन, मौसम, प्रबंधन, शहद की गुणवत्ता और बाजार मूल्य पर निर्भर करती है। ICAR के अनुसार Apis mellifera से सामान्य परिस्थितियों में लगभग 20 से 25 किलोग्राम शहद प्रति कॉलोनी वास्तविक उत्पादन एवं बाजार मूल्य क्षेत्र, मौसम, पुष्प स्रोत, प्रबंधन तथा विपणन पर निर्भर करते हैं। इसमें खर्च घटाने के बाद प्राप्त राशि शुद्ध लाभ नहीं मानी जानी चाहिए।

उत्तर प्रदेश से एक वास्तविक उदाहरण- उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में ICAR से जुड़े अध्ययन में 50 मधुमक्खी कॉलोनियों वाली इकाई का औसत परिचालन खर्च लगभग ₹. 25,017 और औसत सकल प्रतिफल लगभग ₹. 83,112 दर्ज किया गया। विभिन्न इकाइयों में शुद्ध प्रतिफल लगभग ₹. 51,780 से ₹. 72,137 तक दर्ज किया गया। इस अध्ययन में शहद के साथ पराग और मधुमक्खियों से प्राप्त आय को भी शामिल किया गया था। इस उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि मधुमक्खी पालन में केवल शहद ही आय का स्रोत नहीं है।

शहद के अलावा भी हैं कमाई के अवसर- मधुमक्खी पालन में किसान अनेक प्रकार के उत्पादों से आय प्राप्त कर सकता है।

1. **शहद-**यह मधुमक्खी पालन का प्रमुख उत्पाद है। सरसों, लीची, यूकेलिप्टस तथा विभिन्न पुष्प स्रोतों से अलग-अलग प्रकार का शहद प्राप्त किया जा सकता है।

2. **मधुमोम-**मधुमोम का उपयोग मोमबत्ती, कॉस्मेटिक, पॉलिश और विभिन्न औद्योगिक उत्पादों में किया जाता है।

3. **बी-पराग (Bee pollen)-**पराग को मधुमक्खियाँ अपने भोजन के रूप में एकत्र करती हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन के अंतर्गत इसे भी एक व्यावसायिक उत्पाद के रूप में एकत्र किया जा सकता है।

4. **प्रोपोलिस-** मधुमक्खियाँ प्रोपोलिस का उपयोग छत्ते में दरारें भरने और सुरक्षा के लिए करती हैं। इसका उपयोग विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादों में किया जाता है।

5. **मधुमक्खी कॉलोनी एवं रानी-**स्वस्थ कॉलोनियों एवं रानी मधुमक्खियों का उत्पादन भी प्रशिक्षित मधुमक्खी पालक के लिए आय का स्रोत बन सकता है।

मधुमक्खी पालन से फसल उत्पादन में दोहरा लाभ- मधुमक्खी पालन की सबसे बड़ी विशेषता इसका दोहरा आर्थिक लाभ है।

पहला लाभ- मधुमक्खी उत्पाद (मधुमक्खी कॉलोनी, शहद, मधुमोम/पराग/प्रोपोलिस, बिक्री, अतिरिक्त आय)

दूसरा लाभ- फसल उत्पादन (मधुमक्खी, फूलों पर भ्रमण, परागण, बेहतर फल/बीज निर्माण, अधिक उत्पादन, अधिक फसल आय) इसलिए किसान को मधुमक्खी पालन से मिलने वाली आर्थिक उपयोगिता को केवल शहद की बिक्री से नहीं आंकना चाहिए।

मधुमक्खी पालन शुरू करते समय सावधानियाँ
मधुमक्खी पालन शुरू करने से पहले किसान को वैज्ञानिक प्रशिक्षण लेना चाहिए। विशेष रूप से निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण मधुमक्खी कॉलोनी खरीदें।
2. कॉलोनी को फूलों के पर्याप्त स्रोत के पास रखें।
3. वर्षभर के लिए फ्लोरल कैलेंडर तैयार करें।
4. रानी मधुमक्खी की स्थिति पर नजर रखें।
5. मधुमक्खियों के रोग एवं कीटों की पहचान सीखें।
6. शहद निकालने की स्वच्छ एवं वैज्ञानिक विधि अपनाएँ।
7. फूलों के समय अनावश्यक कीटनाशक छिड़काव से बचें।
8. कीटनाशक का प्रयोग आवश्यक होने पर लेबल निर्देश एवं विशेषज्ञ सलाह के अनुसार करें।
9. शहद को स्वच्छ एवं सुरक्षित तरीके से संग्रहित करें।
10. स्थानीय बाजार के साथ-साथ सीधे उपभोक्ता, FPO और संगठित विपणन चैनलों से जुड़ने का प्रयास करें।

ICAR-IIHR ने भी किसानों हेतु फूलदार पौधों और फ्लोरल कैलेंडर के महत्व पर जोर दिया है, क्योंकि पर्याप्त पुष्पीय संसाधन परागणकों की आबादी को बनाए रखने में मदद करते हैं।

किसान कैसे शुरुआत करें-छोटे किसान को शुरुआत में बहुत बड़ी संख्या में कॉलोनियाँ लेने की आवश्यकता नहीं है। 10-20 कॉलोनियों से प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करते हुए शुरुआत की जा सकती है। अनुभव होने पर कॉलोनियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष- किसान की आय बढ़ाने के लिए केवल फसल की उत्पादकता बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है; कृषि से जुड़ी अतिरिक्त आय गतिविधियों को भी बढ़ावा देना आवश्यक है। मधुमक्खी पालन इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। मधुमक्खियाँ शहद, मधुमोम, पराग और प्रोपोलिस जैसे उत्पाद प्रदान करती हैं तथा साथ ही फसलों में परागण करके कृषि उत्पादन में योगदान देती हैं। ICAR के विभिन्न अध्ययनों में मधुमक्खी पालन से अतिरिक्त आय तथा कुछ फसलों में परागण के कारण उत्पादन वृद्धि के उदाहरण सामने आए हैं। इसलिए मधुमक्खी पालन को केवल "शहद उत्पादन का व्यवसाय" न मानकर "फसल उत्पादन + मधुमक्खी उत्पाद + अतिरिक्त आय" वाले एकीकृत कृषि मॉडल के रूप में अपनाया जा सकता है।

एक नजर में- एक किसान + एक खेत + मधुमक्खी कॉलोनियाँ = फसल से आय + शहद से आय + अन्य मधुमक्खी उत्पादों से आय, यही कारण है कि खेती के साथ वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन छोटे और सीमांत किसानों हेतु आय के विविधीकरण और ग्रामीण उद्यमिता का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है।



अभिषेक सिंह सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह

डॉ. अवनीश यादव सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या, घटते कृषि क्षेत्र, जल संकट, मिट्टी की गुणवत्ता में कमी और बदलती जलवायु ने पारंपरिक खेती के सामने अनेक चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। ऐसे समय में कृषि की ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है, जो कम संसाधनों में अधिक और गुणवत्तापूर्ण उत्पादन दे सकें। हाइड्रोपोनिक्स खेती ऐसी ही एक आधुनिक कृषि तकनीक है, जिसमें बिना मिट्टी के पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों से युक्त जल के माध्यम से उगाया जाता है।

हाइड्रोपोनिक्स क्या है?

‘हाइड्रोपोनिक्स’ शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों—‘हाइड्रो’ अर्थात् जल और ‘पोनोस’ अर्थात् कार्य—से मिलकर बना है। सरल शब्दों में, यह मृदाविहीन खेती की एक पद्धति है। इसमें पौधों की जड़ों को मिट्टी के बजाय पोषक तत्वों वाले पानी में या किसी निष्क्रिय माध्यम, जैसे कोकोपीट, पर्लाइट अथवा वर्मीक्यूलाइट में विकसित किया जाता है।

इस प्रणाली में पौधों को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा अन्य आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व नियंत्रित मात्रा में दिए जाते हैं। जल, पोषक तत्व, प्रकाश, तापमान और अन्य परिस्थितियों को आवश्यकता के अनुसार नियंत्रित किया जा सकता है।

हाइड्रोपोनिक्स खेती की प्रमुख विशेषताएँ

हाइड्रोपोनिक्स खेती में मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती। पौधों की जड़ों तक पोषक तत्वों और ऑक्सीजन की उचित मात्रा पहुँचाई जाती है। इसके लिए विभिन्न प्रणालियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें न्यूट्रिएंट फिल्म तकनीक (NFT), डीप वाटर कल्चर (DWC), ड्रिप सिस्टम और एब-एंड-फ्लो सिस्टम प्रमुख हैं। यह तकनीक विशेष रूप से लेट्यूस, पालक, धनिया,

हाइड्रोपोनिक्स खेती: आधुनिक कृषि का नया स्वरूप

स्ट्रॉबेरी, टमाटर, खीरा और विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों जैसी फसलों के लिए उपयोगी हो सकती है।

हाइड्रोपोनिक्स खेती के लाभ

1. पानी की बचत

पारंपरिक खेती की तुलना में हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में पानी का अधिक कुशल उपयोग किया जा सकता है। कई प्रणालियों में पानी को पुनः परिचालित किया जाता है, जिससे पानी की बर्बादी कम होती है।

2. कम भूमि में उत्पादन

इस खेती को सीमित स्थान में भी किया जा सकता है। ऊर्ध्वाधर खेती (Vertical Farming) के साथ इसे



अपनाने पर एक ही क्षेत्र में कई स्तरों पर फसल उगाई जा सकती है।

3. मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भरता कम

जहाँ मिट्टी अनुपजाऊ, प्रदूषित या कृषि के लिए अनुपयुक्त है, वहाँ भी नियंत्रित वातावरण में हाइड्रोपोनिक्स के माध्यम से उत्पादन संभव हो सकता है।

4. पोषक तत्वों पर बेहतर नियंत्रण

पौधों को आवश्यक पोषक तत्व नियंत्रित मात्रा में दिए जा सकते हैं। इससे पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाए रखने में मदद मिलती है।

5. वर्षभर उत्पादन की संभावना

ग्रीनहाउस या नियंत्रित वातावरण के साथ हाइड्रोपोनिक्स खेती में मौसम के प्रभाव को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इससे कुछ फसलों का उत्पादन लंबे समय तक किया जा सकता है।

6. शहरी क्षेत्रों में उपयोग

शहरों में जहाँ कृषि भूमि सीमित होती है, वहाँ छतों,

बालकनी, ग्रीनहाउस और नियंत्रित वातावरण वाली इकाइयों में हाइड्रोपोनिक्स खेती की जा सकती है। इससे स्थानीय स्तर पर ताजी सब्जियों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

हाइड्रोपोनिक्स खेती की चुनौतियाँ

हाइड्रोपोनिक्स खेती के अनेक लाभ हैं, लेकिन इसके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। इसकी शुरुआती स्थापना में पारंपरिक खेती की तुलना में अधिक निवेश की आवश्यकता हो सकती है। पंप, पाइप, जलाशय, सेंसर, प्रकाश व्यवस्था और अन्य उपकरणों की जरूरत पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त, किसानों को श्वा, पोषक तत्वों की सांद्रता, जल की गुणवत्ता, तापमान और ऑक्सीजन जैसे कारकों की नियमित निगरानी करनी होती है। बिजली या पंपिंग प्रणाली में खराबी होने पर पौधों पर तेजी से प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए इस तकनीक के सफल संचालन के लिए तकनीकी जानकारी और उचित प्रशिक्षण आवश्यक है।

भारत में हाइड्रोपोनिक्स का भविष्य

भारत में तेजी से बढ़ते शहरीकरण, जल संकट और सीमित कृषि भूमि के कारण आधुनिक कृषि तकनीकों की उपयोगिता बढ़ रही है। हाइड्रोपोनिक्स तकनीक किसानों, उद्यमियों और शहरी कृषि से जुड़े लोगों के लिए नए अवसर पैदा कर सकती है। हालाँकि, इसे पारंपरिक कृषि का पूर्ण विकल्प मानने के बजाय एक पूरक और परिस्थितानुसार उपयोगी कृषि पद्धति के रूप में देखना अधिक उचित है। स्थानीय जलवायु, फसल, बाजार, ऊर्जा लागत, तकनीकी ज्ञान और प्रारंभिक निवेश जैसे कारकों के आधार पर इसकी व्यवहार्यता तय की जानी चाहिए।

निष्कर्ष

हाइड्रोपोनिक्स खेती आधुनिक कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण तकनीकी विकास है। यह कम भूमि में नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत फसल उत्पादन, जल के कुशल उपयोग और शहरी क्षेत्रों में कृषि की संभावनाओं को बढ़ा सकती है। इसके साथ ही, उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी ज्ञान और निरंतर निगरानी जैसी चुनौतियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

भविष्य में यदि वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रशिक्षण, स्थानीय तकनीकी समाधान और किसानों के लिए उचित सहायता को बढ़ावा दिया जाए, तो हाइड्रोपोनिक्स खेती भारत की बदलती कृषि आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस प्रकार, यह तकनीक कम संसाधनों में अधिक और नियंत्रित उत्पादन की दिशा में आधुनिक कृषि के एक नए स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है।



❧ **आकांक्षा** शोध छात्रा, सेंटर ऑफ फूड टेक्नोलॉजी इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- 211002

प्रस्तावना-भोजन मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। बढ़ती जनसंख्या, तेजी से हो रहे शहरीकरण, बदलती जीवनशैली और खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग के कारण विश्वभर में खाद्य उत्पादन, प्रसंस्करण और वितरण में निरंतर वृद्धि हो रही है। खाद्य उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ खाद्य पदार्थों की सफाई, कटाई, छंटई, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, विपणन तथा घरेलू उपयोग के दौरान बड़ी मात्रा में खाद्य अपशिष्ट भी उत्पन्न होता है। फल एवं सब्जियों के छिलके, बीज, गूदे के अवशेष, अनाज की भूसी, दालों के प्रसंस्करण से निकलने वाले उप-उत्पाद तथा डेयरी और खाद्य उद्योग से निकलने वाले विभिन्न अवशेष प्रायः अनुपयोगी समझकर फेंक दिए जाते हैं। सामान्य रूप से जिस पदार्थ को हम 'खाद्य अपशिष्ट' कहते हैं, उसमें वास्तव में अनेक उपयोगी पोषक एवं जैव-सक्रिय घटक मौजूद हो सकते हैं। फलों और सब्जियों के छिलकों तथा बीजों में आहार फाइबर, विटामिन, खनिज, पॉलीफेनॉल, फ्लेवोनॉयड, कैरोटेनॉयड और अन्य एंटीऑक्सीडेंट पाए जा सकते हैं। इसी प्रकार कई कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण उप-उत्पाद प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा खनिजों के स्रोत हो सकते हैं। इसलिए खाद्य अपशिष्ट को केवल कचरा मानकर फेंक देना संसाधनों की बर्बादी है।

खाद्य अपशिष्ट क्या है? खाद्य अपशिष्ट से आशय उन खाद्य पदार्थों या खाद्य पदार्थों के उन भागों से है जो उत्पादन से लेकर उपभोग तक किसी चरण में मानव उपयोग से बाहर हो जाते हैं। यह अपशिष्ट खेत से लेकर उपभोक्ता की रसोई तक किसी भी स्तर पर उत्पन्न हो सकता है। कृषि स्तर पर खराब या क्षतिग्रस्त फल-सब्जियां, प्रसंस्करण उद्योग में निकलने वाले छिलके एवं बीज, बाजारों में खराब होने वाले खाद्य पदार्थ और घरों में बचा हुआ भोजन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। यदि इन पदार्थों का उचित प्रबंधन नहीं किया जाए तो इनके अपघटन से दुर्गंध, सूक्ष्मजीवी वृद्धि और पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो सकती है। जैविक अपशिष्ट के अनुचित निपटान से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भी योगदान हो सकता है। इसके विपरीत, यदि इन्हीं पदार्थों को वैज्ञानिक तरीके से एकत्रित, सुरक्षित और प्रसंस्कृत किया जाए, तो इन्हें उपयोगी खाद्य सामग्री और मूल्यवर्धित उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है।

खाद्य अपशिष्ट में छिपा पोषण-खाद्य प्रसंस्करण से निकलने वाले अनेक उप-उत्पादों में महत्वपूर्ण पोषक एवं जैव-सक्रिय घटक मौजूद होते हैं। विशेष रूप से फलों और सब्जियों के छिलके तथा बीज कई उपयोगी घटकों के स्रोत हो सकते हैं।

* आहार फाइबर खाद्य अपशिष्ट के मूल्यवर्धन का एक महत्वपूर्ण आधार है। फलों एवं सब्जियों के छिलकों में फाइबर की अच्छी मात्रा हो सकती है। इनसे प्राप्त फाइबर को बिस्कुट, ब्रेड, नूडल्स, स्नैक, सीरियल और अन्य खाद्य पदार्थों में शामिल करके उनके पोषण मूल्य में वृद्धि की जा सकती है। * एंटीऑक्सीडेंट यौगिक भी अनेक खाद्य उप-उत्पादों में पाए जाते हैं। पॉलीफेनॉल, फ्लेवोनॉयड और कैरोटेनॉयड जैसे यौगिकों का उपयोग कार्यात्मक खाद्य पदार्थों के विकास में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अनार, अंगूर, खट्टे फलों तथा कुछ सब्जियों के उप-उत्पादों में जैव-सक्रिय घटक पाए जा सकते हैं। * इसके अतिरिक्त, कुछ उप-उत्पादों में विटामिन और खनिज भी उपलब्ध होते हैं। उचित प्रसंस्करण के बाद इनका उपयोग पोषण संवर्धन के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार दालों, तिलहनों और कुछ खाद्य

खाद्य अपशिष्ट का उपयोग- नवाचार, पोषण और सतत विकास

बीजों से प्राप्त उप-उत्पाद प्रोटीन के संभावित स्रोत हो सकते हैं।

फलों एवं सब्जियों के छिलकों से उपयोगी उत्पाद- फल और सब्जियां हमारे दैनिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, लेकिन इनके प्रसंस्करण के दौरान बड़ी मात्रा में छिलके, बीज और गूदे के अवशेष उत्पन्न होते हैं। इन उप-उत्पादों को सुखाकर और पीसकर फूड पाउडर बनाया जा सकता है। संतरे और नींबू के छिलकों से प्राप्त पाउडर का उपयोग बेकरी उत्पादों, पेय पदार्थों तथा अन्य खाद्य पदार्थों में किया जा सकता है। केले के छिलके को उचित उपचार एवं सुखाने के बाद फाइबर-युक्त सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार अनार के छिलके, सेब के छिलके और अन्य फलों के उप-उत्पादों पर भी खाद्य विज्ञान के क्षेत्र में शोध किया जा रहा है। इन पाउडरों को बिस्कुट, ब्रेड, केक, कुकीज, नमकीन, सूप, इंस्टेंट मिक्स और स्नैक उत्पादों में सीमित मात्रा में शामिल किया जा सकता है। इससे एक ओर खाद्य अपशिष्ट कम होता है, वहीं दूसरी ओर उत्पाद में फाइबर तथा अन्य उपयोगी घटकों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। फलों से रस निकालने के बाद बचा हुआ गूदा भी मूल्यवान कच्चा माल हो सकता है। इसे सुखाकर पाउडर बनाया जा सकता है अथवा जैम, स्प्रेड, फरूट बार और फाइबर-युक्त खाद्य उत्पादों में उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार जिस सामग्री को पहले कचरा समझकर फेंक दिया जाता था, वह नए खाद्य उत्पाद के विकास में उपयोगी बन सकती है।

फलों के बीजों का उपयोग-फलों के बीज भी खाद्य अपशिष्ट का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। अनेक बीजों में तेल, प्रोटीन, फाइबर और जैव-सक्रिय घटक पाए जा सकते हैं। उचित सफाई, सुखाने और प्रसंस्करण के बाद कुछ बीजों को खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है। तरबूज, कद्दू और अन्य खाद्य बीजों को साफ करके सुखाने के बाद पाउडर या अन्य मूल्यवर्धित सामग्री के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कुछ बीजों से खाद्य तेल प्राप्त करने की संभावना भी होती है। हालांकि, किसी भी बीज या उप-उत्पाद को मानव खाद्य के रूप में उपयोग करने से पहले उसकी सुरक्षा, पोषण संरचना और संभावित एंटी-न्यूट्रिशनल घटकों का वैज्ञानिक मूल्यांकन आवश्यक है।

अनाज एवं दालों के उप-उत्पादों का मूल्यवर्धन-अनाजों की मिलिंग के दौरान प्राप्त भूसी और अन्य उप-उत्पादों में फाइबर तथा अन्य पोषक घटक पाए जा सकते हैं। गेहूं की भूसी का उपयोग फाइबर-समृद्ध ब्रेड, बिस्कुट और कुकीज में किया जा सकता है। इसी प्रकार चावल एवं अन्य अनाजों के उप-उत्पादों के उपयोग की भी संभावनाएं हैं। दालों के प्रसंस्करण से प्राप्त कुछ उप-उत्पादों का उपयोग प्रोटीन एवं फाइबर आधारित खाद्य उत्पादों के विकास में किया जा सकता है। आधुनिक खाद्य तकनीक के माध्यम से इन्हें स्नैक, एक्सट्रूडेड उत्पाद, इंस्टेंट मिक्स तथा अन्य मूल्यवर्धित उत्पादों में शामिल किया जा सकता है।

डेयरी उद्योग के उप-उत्पादों का उपयोग- डेयरी उद्योग खाद्य उप-उत्पादों के मूल्यवर्धन के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। पनीर, चीज और अन्य डेयरी उत्पादों के निर्माण के दौरान प्राप्त दूध इसका प्रमुख उदाहरण है। दूध में लैक्टोज, प्रोटीन, खनिज और अन्य पोषक तत्व पाए जाते हैं। यदि इसे बिना उचित उपचार के बड़ी मात्रा में पर्यावरण में छोड़ दिया जाए तो इसकी जैविक ऑक्सीजन मांग अधिक होने के कारण पर्यावरण पर नकारात्मक

प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए दूध को अपशिष्ट के बजाय उपयोगी खाद्य संसाधन के रूप में देखना आवश्यक है। दूध से विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ, प्रोटीन युक्त पेय, किण्वित पेय और अन्य खाद्य उत्पाद विकसित किए जा सकते हैं। डेयरी उद्योग में छाछ, स्किम मिल्क तथा अन्य सह-उत्पादों का भी उचित तकनीकी प्रसंस्करण द्वारा मूल्यवर्धन किया जा सकता है।

खाद्य अपशिष्ट से उत्पाद बनाने की आधुनिक तकनीकें- खाद्य अपशिष्ट को उपयोगी खाद्य उत्पाद में बदलने के लिए सही प्रसंस्करण तकनीक का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। सुखाना सबसे सरल तकनीकों में से एक है। सुखाने से नमी कम होती है और सामग्री की भंडारण स्थिरता बढ़ाई जा सकती है। पाउडरीकरण द्वारा सूखे उप-उत्पादों को महीन पाउडर में बदला जा सकता है, जिसे विभिन्न खाद्य उत्पादों में आसानी से मिलाया जा सकता है। एक्सट्रूजन तकनीक का उपयोग प्रोटीन और फाइबर युक्त सामग्री से स्नैक एवं नाश्ता उत्पाद बनाने में किया जा सकता है। यह तकनीक खाद्य सामग्री की बनावट और उपयोगिता में परिवर्तन के लिए उपयोगी है। किण्वन तकनीक द्वारा कुछ खाद्य उप-उत्पादों के गुणों में सुधार किया जा सकता है। किण्वन से स्वाद, पाचनशीलता और कुछ कार्यात्मक गुणों में परिवर्तन संभव है। उपयुक्त सूक्ष्मजीवों का चयन इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण होता है। इसके अलावा, माइक्रोएन्कैप्सुलेशन जैसी आधुनिक तकनीक संवेदनशील जैव-सक्रिय यौगिकों, तेलों और फ्लेवर घटकों को संरक्षित करने में उपयोगी हो सकती है। भविष्य में खाद्य उप-उत्पादों से प्राप्त मूल्यवान घटकों को स्थिर रूप में खाद्य उत्पादों में शामिल करने के लिए ऐसी तकनीकों की भूमिका बढ़ सकती है।

खाद्य अपशिष्ट के मूल्यवर्धन से आर्थिक लाभ- खाद्य अपशिष्ट का मूल्यवर्धन आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि खाद्य उद्योग उप-उत्पादों को फेंकने के बजाय उनका उपयोग नए उत्पादों के विकास में करता है, तो कच्चे माल की लागत कम की जा सकती है और अतिरिक्त आय के स्रोत विकसित किए जा सकते हैं। स्थानीय स्तर पर फल-सब्जी प्रसंस्करण, फूड पाउडर निर्माण, बेकरी उत्पाद, फाइबर-समृद्ध स्नैक, पेय पदार्थ और अन्य मूल्यवर्धित खाद्य उत्पादों के माध्यम से छोटे उद्यम एवं स्टार्टअप विकसित किए जा सकते हैं। इससे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी बढ़ सकते हैं। किसानों के लिए भी यह दृष्टिकोण उपयोगी हो सकता है। यदि प्रसंस्करण के दौरान उत्पन्न उप-उत्पादों का स्थानीय स्तर पर मूल्यवर्धन किया जाए, तो कृषि उत्पादों से प्राप्त कुल आर्थिक मूल्य में वृद्धि हो सकती है।

पर्यावरण संरक्षण और सर्कुलर इकोनॉमी-* खाद्य अपशिष्ट का मूल्यवर्धन पर्यावरण संरक्षण से सीधे जुड़ा हुआ है। जब खाद्य अपशिष्ट को उपयोगी उत्पादों में बदल दिया जाता है, तो उसे खुले में फेंकने या लैंडफिल में भेजने की आवश्यकता कम होती है। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम करने में सहायता मिलती है। * यह प्रक्रिया सर्कुलर इकोनॉमी की अवधारणा को बढ़ावा देती है। सर्कुलर इकोनॉमी में संसाधनों का अधिकतम और लंबे समय तक उपयोग करने तथा अपशिष्ट को न्यूनतम करने पर जोर दिया जाता है। खाद्य उद्योग में यह मॉडल 'उत्पादन-उपयोग-अपशिष्ट' की पारंपरिक व्यवस्था को बदलकर 'उत्पादन-उपयोग-पुनः उपयोग-मूल्यवर्धन' की दिशा में ले जा सकता है।



अमरेश कुमार विषय-मधुमक्खी पालन प्रो.

राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

व्याख्यान 2: मधुमक्खियां: मधुमक्खी पालन का इतिहास (Honey bees: History of bee keeping) मधुमक्खियों और उनकी उपयोगिता को प्रागैतिहासिक काल से जाना जाता है। वेदों, रामायण और कुरान में मधुमक्खियों का उल्लेख मिलता है। 1851 में रेड एल. एल. लैंगशोथ द्वारा मूवेबल फ्रेम हाइव की खोज के बाद आधुनिक मधुमक्खी पालन संभव हो गया। भारत में मधुमक्खी पालन (beekeeping) 1882 में बंगाल में शुरू किया गया था। रेड न्यूटन ने 1911 में दक्षिण भारत में मधुमक्खी पालन शुरू किया। लेकिन फिर भी भारत मधुमक्खी पालन में अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से काफी पीछे है।

मधुमक्खियों की प्रजातियां (Bee species)

1. मधुमक्खियों की पांच महत्वपूर्ण प्रजातियां (five important species) इस प्रकार हैं
2. एपिस डॉर्सटा (Apis dorsata): रॉक मधुमक्खी - एपिडे।
3. एपिस सेराना इंडिका (Apis cerana indica): भारतीय छत्ता मधुमक्खी - एपिडे।
4. एपिस फ्लोरिया (Apis florea): छोटी मधुमक्खी- एपिडे।
5. एपिस मेलिफेरा (Apis mellifera): यूरोपीय या इतालवी मधुमक्खी एपिडे।
6. मेलिपोना इरिडिपेनिस (Melipona irridipennis): डैमर मधुमक्खी, मेलिपोरिडे स्टिंगलेस मधुमक्खी।

एपिस डॉर्सटा- 1. वे खुले में सिंगल कंधी बनाते हैं (लगभग 6 फीट लंबी और 3 फीट गहरी)। 2. वे अक्सर कॉलोनी की जगह बदलते रहते हैं। 3. रॉक मधुमक्खियां क्रूर होती हैं और पालना मुश्किल होता है। 4. वे लगभग 36 किलोग्राम शहद/कंधी/वर्ष का उत्पादन करते हैं।

वर्णित मधुमक्खियों में मधुमक्खियां सबसे बड़ी हैं।

एपिस फ्लोरिया- 1. वे झाड़ियों, हेजेज, इमारतों, गुफाओं, खाली मामलों आदि की शाखाओं में हथेली के आकार के खुले में भी कंधी बनाते हैं। 2. वे लगभग 1/2 किलोग्राम शहद/वर्ष/छत्ता का उत्पादन करते हैं। 3. वे रियर करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे अक्सर अपना स्थान बदलते हैं। मधुमक्खियों का आकार 4 एपिस प्रजातियों में सबसे छोटा है। (भारतीय मधुमक्खी से भी छोटा / smaller than Indian bee)। 4. वे केवल मैदानी इलाकों में वितरित होते हैं और 450 मीटर से ऊपर की पहाड़ियों में नहीं।

एपिस सेराना इंडिका (भारतीय मधुमक्खी/एशियाई मधुमक्खी / Indian bee/Asian bee): 1. वे पेड़ों और अंधेरे में गुहाओं पर कई समानांतर कंधी बनाते हैं। 2. मधुमक्खियां एपिस फ्लोरा (Apis florea) से बड़ी होती हैं लेकिन एपिस मेलिफेरा (Apis mellifera) से छोटी होती हैं। 3. वे लगभग 5 किलोग्राम शहद/वर्ष/छत्ता का उत्पादन करते हैं। 4. उनमें झुंड और भागने का खतरा अधिक होता है। 5. वे भारत/एशिया के मूल निवासी हैं।

एपिस मेलिफेरा (इतालवी मधुमक्खी या यूरोपीय मधुमक्खी / Italian bee or European bee): 1. वे अंधेरे में गुहाओं में कई समानांतर कंधी भी बनाते हैं। 2. वे भारतीय मधुमक्खियों से बड़ी हैं लेकिन रॉक मधुमक्खियों से छोटी हैं। 3. इन्हें यूरोपीय देशों (इटली/Italy) से आयात किया गया है। 4. वे औसतन 35 किग्रा/छत्ता/वर्ष की उपज देते

मधुमक्खियां - मधुमक्खी पालन का इतिहास



हैं। 5. उनमें झुंड और भागने का खतरा कम होता है।

मधुमक्खी की जातियां-प्रत्येक मधुमक्खी कॉलोनी में एक अकेली रानी, कुछ सौ ड्रोन और मधुमक्खियों की कई हजार श्रमिक जातियां शामिल होती हैं। रानी एक उपजाऊ, कार्यात्मक मादा है, कार्यकर्ता एक बाँझ मादा है और ड्रोन एक नर कीट है।

रानी के कर्तव्य-1. एकमात्र व्यक्ति जो कॉलोनी में अंडे देता है (सभी मधुमक्खियों की माँ / Mother of all bees)। 2. एपिस मेलिफेरा में प्रति दिन 2000 तक (2000/day in Apis mellifera) अंडे देती है। 3. उभरने के पांच से दस दिन बाद, वह एक या एक से अधिक वैवाहिक उड़ानों में ड्रोन के साथ संभोग करती है। 4. जब उसका स्पर्मथिका शुक्राणुओं से भर जाता है, तो वह अंडे देना शुरू कर देगी और अधिक संभोग नहीं करेगी। वह 3 साल तक जीवित रहती है। 4. रानी की मॉडबुलर ग्रंथि के स्राव को रानी का पदार्थ कहा जाता है।

5. रानी पदार्थ यदि पर्याप्त मात्रा में मौजूद हो तो निम्नलिखित कार्य करता है- a) कॉलोनियों के झुंड और भागने को रोकें। b) श्रमिकों में अंडाशय के विकास को रोकें। c) कॉलोनी सामंजस्य बनाए रखा जाता है। 8. रानी आवश्यकता के आधार पर निषेचित या बाँझ अंडे दे सकती है।

ड्रोन के कर्तव्य 1. उनका महत्वपूर्ण कर्तव्य रानी को निषेचित करना है। 2. वे छत्ते के तापमान को बनाए रखने में भी मदद करते हैं। 3. वे अमृत/पराग एकत्र नहीं कर सकते और उनके पास डंक नहीं होता है।

एक कार्यकर्ता के कर्तव्य-1. लगभग 6 सप्ताह के उनके वयस्क जीवन काल को विभाजित किया जा सकता है- a) पहले तीन सप्ताह घर के काम। b) बाकी जीवन- घर के बाहर का कर्तव्य।

घरेलू कर्तव्य में शामिल हैं- a. मोम ग्रंथियों से मोम स्राव के साथ कंधी बनाएँ। b. हाइपोफेरॉन्जियल ग्रंथि से स्रावित शाही जेली (royal jelly) के साथ युवा लार्वा को खिलाएँ। c. बड़े लार्वा को मधुमक्खी-रोटी (पराग शहद) (bee-bread: pollen+honey) खिलाएँ। d. रानी को खाना खिलाना और उपस्थित रहना। e. ड्रोन को खाना खिलाना। f. छत्ते की सफाई, हवादार और ठंडा करना। g. छत्ते की रखवाली। h. अमृत को वाष्पित करना और शहद का भंडारण करना।

बाहरी कर्तव्य: 1. अमृत, पराग, प्रोपोलिस और पानी एकत्र करना। 2. शहद के पेट में शहद पकाना।

मधुमक्खी का व्यवहार-a) झुंड- झुंड कॉलोनी गुणन का एक प्राकृतिक तरीका है जिसमें कॉलोनी का एक हिस्सा नई कॉलोनी बनाने हेतु एक नई साइट पर माइग्रेट करता है। झुंड तब होता है जब एक कॉलोनी काफी ताकत बनाती है या जब रानी द्वारा स्रावित रानी का पदार्थ एक निश्चित स्तर से नीचे गिर जाता है। झुंड प्रजातियों के फैलाव और निरंतरता के लिए मधुमक्खियों में एक शक्तिशाली प्रवृत्ति है।

झुंड में शामिल कदम: 1. मजबूत कॉलोनियां झुंड की वृत्ति विकसित करती हैं। 2. ड्रोन बूड का विकास और बड़ी संख्या में ड्रोन का उभरना झुंड का पहला संकेत है। 3. कंधी के तल पर नई रानी कोशिकाएँ बनाई जाती हैं। 4. प्यूपेशन के बाद रानी कोशिकाओं को सील कर दिए जाने पर पुरानी रानी 1/3 या आधी कॉलोनी की ताकत के साथ छत्ते से बाहर चली जाती है। 5. वे पहले पास की झाड़ी में बस जाते हैं और एक पेंडेंट क्लस्टर में लटक जाते हैं। 6. स्काउट मधुमक्खियाँ उपनिवेशीकरण के लिए उचित स्थान की तलाश में जाती हैं और बाद में पूरी कॉलोनी उपयुक्त स्थल पर चली जाती है। 7. पुरानी रानी के साथ मूल कॉलोनी का पहला झुंड जो आता है उसे प्राथमिक झुंड कहा जाता है। 8. नई रानी जो उभरती है वह रानी कोशिका के अंदर मौजूद रानी के अन्य सभी चरणों को मार देती है। 9. कभी-कभी नई रानी को अन्य रानियों के चरणों को नष्ट करने की अनुमति नहीं दी जाती है। 10. इस मामले में नई रानी श्रमिकों के एक समूह के साथ छत्ता छोड़ देती है। इसे आफ्टर स्वार्म या कास्ट कहा जाता है।

सुपरसेड्योर: जब एक पुरानी रानी पर्याप्त अंडे देने में असमर्थ होती है, तो उसे सुपरसेड्योर रानी द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा। या जब वह अपनी सुपरमेथिका में शुक्राणुओं से बाहर भागती है, और कई अनिषेचित अंडे देती है जिनसे केवल ड्रोन निकलते हैं। इस मामले में, एक या 2 रानी कोशिकाओं का निर्माण कंधी के बीच में किया जाता है, न कि नीचे। एक निश्चित समय पर नई और पुरानी दोनों रानियाँ एक साथ दिखाई देती हैं। बाद में पुरानी रानी गायब हो जाती है।

आपातकालीन रानी: रानी की मृत्यु की स्थिति में कार्यकर्ता कोशिकाओं में अंडों (2½ दिन से कम पुराने / less than 2½ days old) का चयन किया जाता है और कोशिका को रानी कोशिका की तरह बढ़ाया जाता है। इसे प्रचुर मात्रा में शाही जेली खिलाया जाता है और रानी में बदल दिया जाता है। इस मामले में कंधी के बीच में कई रानी कोशिकाएँ बनाई जाती हैं। आपातकालीन रानी कोशिकाओं से बाहर आने वाली पहली रानी कोशिकाओं के अंदर रानी के अन्य चरणों को मार देती है और फिर संभोग के लिए जाती है। संभोग के बाद वे उपजाऊ अंडे देते हैं।

कार्यकर्ता का लेइंग करना: रानी के नुकसान की स्थिति में और 2½ दिन से कम पुराने कार्यकर्ता अंडों की अनुपस्थिति की स्थिति में नई रानी पैदा करने की संभावना खो जाती है। इस मामले में, कार्यकर्ता अंडे देना शुरू कर देता है। चूंकि कार्यकर्ता संभोग नहीं कर सकता, वे अनिषेचित अंडे देते हैं। इन अंडों से केवल ड्रोन निकलते हैं। इसके अलावा, एक कार्यकर्ता प्रति कोशिका एक से अधिक अंडे देता है और लार्वा के बीच प्रतिस्पर्धा होती है, स्टेटेड ड्रोन पैदा होते हैं।

कॉलोनी की गंध: हर कॉलोनी की एक विशिष्ट गंध होती है। यह कार्यकर्ता मधुमक्खियों के अंतिम उदर खंड में मौजूद वासोनोव ग्रंथि के स्राव की गंध से लाया जाता है और कॉलोनियों की गंध को पहचानकर उसी छत्ते में लौट आता है।

छत्ता का तापमान रखरखाव: तापमान कम करने के लिए गर्म मौसम में पंखों को हिलाकर लाया जाता है। ठंडे मौसम में वे बूड पर बैठते हैं और गर्मी के नुकसान को रोकते हैं।



अमित कुमार मौर्य, तनिष मौर्य
महेश सिंह और परवीन कुमार जैन
तीर्थकर महावीर कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर
साईसेज, तीर्थकर महावीर विश्वविद्यालय
(टीएमयू), मुरादाबाद-244001 (उ.प्र.)

बेरोजगार युवाओं के लिए वरदान: ढींगरी (ऑयस्टर) मशरूम की खेती

भूसा या धान का पुआल सबसे उपयुक्त माध्यम माना जाता है। भूसे को स्वच्छ पानी में 10-12 घंटे भिगोया जाता है। इसके बाद रोगानुमुक्त करने के लिए दो तरीके अपनाए जाते हैं-

रासायनिक विधि- 100 लीटर पानी में 100-125 मिली फार्मेलिन और 7-10 ग्राम बाविस्टिन मिलाकर भूसे को 12 घंटे डुबोकर रखा जाता है।

गर्म पानी विधि- भूसे को 80°C तापमान वाले गर्म पानी में 45 से 60 मिनट तक उबाला जाता है।

चरण 2-नमी नियंत्रण- उपचारित भूसे को साफ फर्श पर फैलाकर अतिरिक्त पानी निकाला जाता है। भूसे में नमी का स्तर 60% से 65% होना चाहिए। परीक्षण के लिए भूसे को मुट्ठी में दबाने पर पानी की बूंदें न टपके, लेकिन हाथ में नमी का स्पष्ट अहसास हो।

चरण 3-बीजाई और बैग भरना- उपयुक्त नमी वाले भूसे में 2% से 3% की दर से मशरूम का स्पॉन (बीज) मिलाया जाता है (यानी 100 किग्रा गीले भूसे में 2 से 3 किग्रा बीज)। इसे पॉलीथीन बैग (14x18 इंच) में परतों में भरकर कसकर बांध दिया जाता है और 10-15 छोटे हवादार छिद्र किए जाते हैं।

चरण 4-कवकजाल प्रसार- भरे हुए बैगों को एक अंधेरे कमरे में रखा जाता है जहाँ तापमान 20°C से 28°C और आर्द्रता 70% से 80% हो। 15 से 20 दिनों में पूरा भूसा सफेद कवकजाल से ढक जाता है।

चरण 5: फलने की अवस्था-बैग के पूरी तरह सफेद होने पर पॉलीथीन को फाड़कर हटा दिया जाता है। कमरे में ताजी हवा, हल्का प्रकाश और 85% से 90% आर्द्रता बनाए रखने के लिए दीवारों व फर्श पर पानी का छिड़काव किया जाता है। 3-5 दिनों में छोटे अंकुर निकल आते हैं जो 2-3 दिनों में पूर्ण आकार ले लेते हैं।

चरण 6-तुड़ाई और भण्डारण- जब मशरूम के किनारे ऊपर की ओर मुड़ने लगें, तो उन्हें हल्के से घुमाकर (Twist करके) तोड़ लिया जाता है। एक बैग से 3 से 4 बार फसल ली जा सकती है। 1 किग्रा सूखे भूसे से लगभग 800 ग्राम से 1 किग्रा तक ताजा मशरूम प्राप्त होता है।

4. अनुकूल वातावरणीय आवश्यकताएं
सफल उत्पादन के लिए कमरे के भीतर सही वातावरण बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है-

पैरामीटर	कवकजाल प्रसार अवस्था	फलने की अवस्था
तापमान	22°C - 28°C	20°C - 26°C
सापेक्षिक आर्द्रता	70% - 80%	85% - 90%
प्रकाश	पूर्ण अंधेरा	मंद प्राकृतिक या कृत्रिम प्रकाश
हवा का आवागमन	कम हवा (CO ₂ का उच्च स्तर)	ताजी हवा (CO ₂ निष्कासन आवश्यक)

5. आर्थिक विश्लेषण और आय की संभावना - यदि कोई युवा छोटे पैमाने पर 100 किग्रा सूखे भूसे का उपयोग करके शुरुआत करता है, तो उसका संभावित वित्तीय विवरण इस प्रकार होगा-

लागत एवं आय विवरण (100 किग्रा सूखे भूसे के आधार पर)-

1. अनुमानित लागत	
गेहूँ का भूसा (100 kg)-	₹. 800 - ₹. 1,000
स्पॉन / मशरूम बीज (3-4 kg)-	₹. 400 - ₹. 500
रसायन एवं पॉलीथीन बैग-	₹. 300 - ₹. 400
अन्य विविध व्यय-	₹. 300
रु. कुल लागत-	₹. 1,800 - ₹. 2,200

2. अनुमानित उत्पादन एवं आय

* कुल ताजा मशरूम उत्पादन	80 kg - 100 kg
* औसत बाजार दर (ताजा मशरूम)	₹. 150 - ₹. 200 प्रति kg
* कुल बिक्री-	₹. 12,000 - ₹. 16,000
3. कुल लाभ-	₹. 10,000 - ₹. 13,000 (मात्र 30-40 दिनों में)

विशेष टिप (सूखा मशरूम बाजार): 10 किग्रा ताजे मशरूम से लगभग 1 किग्रा सूखा ढींगरी मशरूम प्राप्त होता है। बाजार में सूखा मशरूम ₹. 800 से ₹. 1,500 प्रति किग्रा तक आसानी से बिकता है, जिससे लाभ का मार्जिन और बढ़ जाता है।

6. विपणन और मूल्य संवर्धन- मशरूम उत्पादन के साथ-साथ सही मार्केट रणनीति अपनाना व्यवसाय की सफलता के लिए जरूरी है-

स्थानीय एवं थोक बाजार: स्थानीय सब्जी मंडियों, सुपरमार्केट, होटलों, मैरिज हॉलों और रेस्तरां से सीधे संपर्क करके ताजा मशरूम की आपूर्ति करें।

मूल्य संवर्धित उत्पाद: ताजे मशरूम के अलावा इसका पाउडर बनाकर सूप मिक्स, कुकीज, नूडल्स, भुजिया और अचार बनाने वाली खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों को बेचा जा सकता है।

डिजिटल मार्केटिंग और ब्रांडिंग: FSSAI रजिस्ट्रेशन/लाइसेंस प्राप्त करके अपने ब्रांड के तहत ड्राई मशरूम पैकेट्स को Amazon, Flipkart व सोशल मीडिया के माध्यम से देशभर में बेचें।

बायो-फर्टिलाइजर से अतिरिक्त आय: फसल लेने के बाद बचा हुआ भूसा एक बेहतरीन जैविक खाद का काम करता है, जिसे ऑर्गेनिक फार्मिंग करने वाले किसानों या नर्सरी को बेचा जा सकता है।

7. सावधानियां और जोखिम प्रबंधन
संक्रमण से बचाव: हरे रंग की फफूंद (Trichoderma spp.) या काली फफूंद सबसे बड़ा खतरा होती है। इससे बचने के लिए भूसे का विसंक्रमण पूरी निष्ठा से करें।

आर्द्रता एवं तापमान नियंत्रण: कम आर्द्रता होने पर मशरूम की छतरी सूखने लगती है, जबकि पानी का छिड़काव अत्यधिक करने से मशरूम सड़ सकता है।

स्वच्छता एवं स्वच्छता: मशरूम कक्ष में प्रवेश करने से पहले हाथों को सैनिटाइज करें और जूते-चप्पल बाहर ही उतारें।

परिचय- भारत जैसे विशाल देश में जहाँ ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसरों की तलाश कर रहे युवाओं की संख्या काफी अधिक है, वहाँ ढींगरी मशरूम (ऑयस्टर मशरूम) की वैज्ञानिक खेती एक क्रांति बनकर उभरी है। यह एक ऐसा कृषि-आधारित व्यवसाय है जिसे बहुत कम पूंजी, कम जगह और न्यूनतम संसाधनों के साथ शुरू किया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो मशरूम न तो पौधा है और न ही जानवर; यह कवक जगत का हिस्सा है। वैज्ञानिक भाषा में ढींगरी मशरूम को Pleurotus species कहा जाता है। इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके उत्पादन के लिए उपजाऊ जमीन या खेत की जरूरत नहीं होती, बल्कि यह फसल अवशेषों (जैसे गेहूँ का भूसा या धान पुआल) पर उगती है।

1. पोषण मूल्य- ढींगरी मशरूम में प्रकाश संश्लेषण नहीं होता, क्योंकि इसमें क्लोरोफिल अनुपस्थित रहता है। यह एक मृतोपजीवी कवक है, जो कृषि अपशिष्टों में मौजूद लिग्निन और सेलुलोज को तोड़कर अपने लिए पोषण प्राप्त करता है।

पोषण (प्रति 100 ग्राम शुष्क भार में)

प्रोटीन (20% - 35%): उच्च गुणवत्ता वाले आवश्यक अमीनो एसिड से भरपूर जो शरीर के विकास के लिए जरूरी हैं।

फाइबर (8%-12%): पाचन स्वास्थ्य को दुरुस्त रखता है और कब्ज जैसी समस्याओं से राहत दिलाता है।

कार्बोहाइड्रेट (50%- 60%): कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स के साथ, जो मधुमेह रोगियों हेतु अत्यंत सुखित है।

फैट/वसा (1%-2%): अत्यंत कम वसा और शून्य कोलेस्ट्रॉल।

विटामिन एवं खनिज: विटामिन B-कॉम्प्लेक्स (B1, B2, B3, B9), विटामिन D, आयरन, कैल्शियम, पोटेशियम और सेलेनियम से समृद्ध।

विशेष औषधीय तत्व- ढींगरी मशरूम में लोवास्टेटिन नामक प्राकृतिक तत्व पाया जाता है, जो रक्त में खराब कोलेस्ट्रॉल को कम करता है। इसके अलावा इसमें मौजूद बीटा-ग्लूकन रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

2. बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार का वरदान क्यों?-ढींगरी मशरूम की खेती बेरोजगार युवाओं के लिए केवल जीविकोपार्जन का जरिया नहीं, बल्कि एक सफल उद्यमी बनने का एक बेहतरीन अवसर है। कम लागत, त्वरित रिटर्न, न्यूनतम भूमि आवश्यकता और उच्च पोषण मूल्य के कारण यह व्यवसाय आधुनिक युग की कृषि क्रांति का अग्रदूत है। यदि युवा सही तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त करके और योजनाबद्ध तरीके से इसकी शुरुआत करें, तो वे न केवल स्वयं आत्मनिर्भर बन सकते हैं बल्कि अन्य युवाओं को भी रोजगार प्रदान कर सकते हैं।

3. ढींगरी मशरूम उगाने की चरणबद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया
चरण 1-माध्यम का चुनाव और उपचार-गेहूँ का



डॉ. हनुमान प्रसाद पांडे (मृदा वैज्ञानिक)

डॉ. मनोज कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)

डॉ. जी.डी. गुप्ता (मतस्य वैज्ञानिक)

डॉ. एस.के. वर्मा (वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष)

कृषि विज्ञान केंद्र, मनकापुर, गोंडा, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

भारत ने वर्ष 2024-25 में 354 मिलियन टन का रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन प्राप्त किया है। हालांकि, यह मात्रात्मक सफलता मानव कुपोषण और मृदा के बिगड़ते जैविक स्वास्थ्य के दोहरे संकट को छुपाती है, जो इसकी कृषि पद्धति की दीर्घकालिक संधारणीयता के लिये खतरा है। इसके लिये पुनर्जीवी पद्धतियों की ओर संक्रमण की आवश्यकता है। इसके लिये दीर्घकालिक कृषि संधारणीयता और राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु मृदा-केंद्रित नीतियों को परिशुद्ध प्रौद्योगिकी के साथ एकीकृत करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारतीय कृषि की दीर्घकालिक संधारणीयता के लिये मृदा क्यों आवश्यक है?

इनपुट उपयोग दक्षता का अनुकूलन: स्वस्थ मृदा पोषक तत्वों के परिशुद्ध अनुप्रयोग को संभव बनाती है, जिससे उर्वरकों की दक्षता में काफी सुधार होता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के आँकड़ों से पता चलता है कि मृदा परीक्षण पर आधारित पोषक तत्वों का प्रयोग किसानों को लक्षित पैदावार प्राप्त करने में सक्षम बनाता है, जबकि यूरिया व अन्य रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग को 8%-10% तक कम करता है, जो सीधे तौर पर लघु किसानों के लिये शुद्ध लाभ मार्जिन को बढ़ाता है।

जल सुरक्षा और नमी प्रतिधारण क्षमता में वृद्धि: मृदा जैविक कार्बन मृदा की जल धारण क्षमता का प्राथमिक कारक है। कार्बनिक पदार्थों से भरपूर मृदा स्पंज की तरह कार्य करती है, जो अनियमित वर्षा के दौरान नमी को बनाए रखती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ (SOC) की मात्रा में 1% की वृद्धि से प्रति एकड़ जल धारण क्षमता में 25,000 गैलन तक की बढ़ोतरी हो सकती है। यह वृद्धि वर्षा आधारित और शुष्क भूमि कृषि प्रणालियों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो भारत के निचले बोए गए क्षेत्र के 50% से अधिक हिस्से के अंतर्गत आती हैं।

जलवायु परिवर्तन अनुकूलन की नींव: स्वस्थ, जैव विविधता से भरपूर मृदा, हीट वेव और असामयिक भारी वर्षा जैसी चरम मौसमी घटनाओं के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण सुरक्षा कवच के रूप में काम करती है। * जैविक पदार्थों से समृद्ध, स्वस्थ मृदा वायुमंडलीय कार्बन की विशाल मात्रा को अवशोषित करती है, जिससे भू-मंडलीय तापवृद्धि को सीधे तौर पर कम करने में सहायता मिलती है। साथ ही यह सुदृढ़ पादप वृद्धि तथा जैव-विविधता को प्रोत्साहित करती है, जिससे कृषि प्रणालियाँ कीटों, रोगों तथा तापमान में उतार-चढ़ाव का सामना करने में सक्षम बनती हैं।

* **जैविक क्षमता का संरक्षण:** राइजोस्फीयर (पौधों की जड़ों के आसपास की संकीर्ण मृदा-पट्टी) पोषक तत्वों के प्राकृतिक अवशोषण को सुविधाजनक बनाने के लिये एक

वर्तमान मृदा स्वास्थ्य संकट एवं आवश्यक समाधान

समृद्ध सूक्ष्मजीव समुदाय पर निर्भर करता है। * लाभकारी सूक्ष्मजीव फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने और वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सहायता करते हैं, जिससे कुत्रिम इनपुट पर निर्भरता कम हो जाती है। * शोध दर्शाते हैं कि गोबर खाद अथवा कम्पोस्ट जैसे कार्बनिक उपायों का समावेशन सूक्ष्मजीवी सक्रियता को प्रोत्साहित करता है, जो उच्च उत्पादकता वाली फसल किस्मों की आनुवंशिक उत्पादन क्षमता को साकार करने के लिये आवश्यक है।

* **सतत आर्थिक संधारणीयता:** जब मृदा के स्वास्थ्य को दीर्घकालिक पूंजीगत परिसंपत्ति के रूप में माना जाता है तो अत्यधिक रासायनिक इनपुट से जुड़ी लागत कम हो जाती है, जिससे ग्रामीण आय अधिक स्थिर हो जाती है।

पोषण सुरक्षा में सुधार: मृदा की गुणवत्ता खाद्य फसलों के सूक्ष्म पोषक तत्वों के घनत्व से आंतरिक रूप से जुड़ी हुई है। * जस्ता तथा लौह जैसे आवश्यक खनिजों से रहित मृदा कम पोषण मूल्य वाली फसलें उत्पन्न करती है, जिससे जनसंख्या में 'प्रच्छन्न भुखमरी' की समस्या बढ़ती है। उदाहरण के लिये, वैश्विक खाद्य सुरक्षा एवं पोषण स्थिति 2025, के अनुसार, 5 वर्ष से कम आयु के 18.7% बच्चे कुपोषण से पीड़ित हैं तथा 15-49 वर्ष की 50% से अधिक महिलाएँ एनीमिया से ग्रस्त हैं।

भूमि क्षरण तटस्थता की दिशा में प्रगति: भारत मरुस्थलीकरण से निपटने संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (NCCD), का हस्ताक्षरकर्ता होने के नाते, वर्ष 2030 तक भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने के लिये प्रतिबद्ध है। * एक सुदृढ़ मृदा पारिस्थितिकी तंत्र संरचनात्मक संधारणीयता तथा जल धारण क्षमता को बढ़ाकर भूमि क्षरण को रोकता है तथा अपरदन एवं सूखे के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित करता है। * इसके लिये स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप उपायों जैसे सघन कृषि क्षेत्रों में उप-मृदा की कठोर परतों को तोड़ने हेतु छेनी तकनीक का प्रयोग की आवश्यकता है ताकि कृषि योग्य भूमि भावी पीढ़ियों के लिये उत्पादक बनी रहे।

भारतीय कृषि-भूमि में मृदा स्वास्थ्य में गिरावट के प्रमुख कारण क्या हैं?

असंतुलित उर्वरक नीति और पोषक तत्वों का दोहन: भारत की उर्वरक व्यवस्था, जिसमें ऐतिहासिक रूप से यूरिया सब्सिडी को प्राथमिकता दी जाती है, ने फॉस्फोरस, पोटेशियम और आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की कीमत पर नाइट्रोजन के अत्यधिक उपयोग को प्रोत्साहित किया है। * इससे आदर्श NPK अनुपात 4:2:1 विवृत होकर अधिक असंतुलित अवस्था में पहुँच गया है कुछ क्षेत्रों में यह प्रायः 7:3:1 से भी अधिक हो जाता है * उच्च उपज वाली किस्में के बीज पर्याप्त पुनर्पुर्ति के बिना निरंतर पोषक तत्वों का निष्कर्षण करते हैं। इसके परिणाम स्वरूप 'पोषक तत्व क्षरण' की स्थिति उत्पन्न हुई है, जिसमें निष्कासन और पुनःपुर्ति के बीच प्रतिवर्ष अनुमानतः 8 से 10 मिलियन टन NPK का अंतर बना हुआ है।

सघन एकल फसल प्रणाली (चावल-गेहूँ चक्र): हरित क्रांति मॉडल, विशेष रूप से भारत-गंगा के मैदानों में

प्रचलित चावल-गेहूँ फसल प्रणाली, ने मृदा को गंभीर रूप से कमजोर कर दिया है। यह मृदा के पोषक तत्वों को नष्ट कर देता है और मृदा के प्राकृतिक पुनर्जनन चक्र को बाधित करता है। * मृदा स्वास्थ्य कार्ड (SHC) के 2024-25 के आकलन से पता चलता है कि भारत की 10% से भी कम मृदा में ही उच्च या पर्याप्त नाइट्रोजन (N) है, केवल 45% में पर्याप्त फॉस्फोरस (P) है और 32% में पर्याप्त पोटेशियम (K) है। * इसके परिणाम स्वरूप मृदा की जैव विविधता में कमी आई है तथा कीटों एवं रोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है, जिससे आगे रासायनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता हुई है और मृदा की उर्वरता में गिरावट का एक दुष्चक्र शुरू हो गया है।

अस्थिर सिंचाई पद्धतियाँ: अवैज्ञानिक सिंचाई प्रबंधन भौतिक एवं रासायनिक मृदा क्षरण का एक प्रमुख कारण है। अत्यधिक फ्लड इरिगेशन, विशेष रूप से नहरों से सिंचित क्षेत्रों में, जलभराव और द्वितीयक लवणीकरण का कारण बनती है। अध्ययनों के अनुसार, भारत की लगभग 85 लाख हेक्टेयर भूमि लवणता और क्षारीयता से प्रभावित है, जो मृदा की संरचना को क्षतिग्रस्त करती है तथा जड़ों के विकास को बाधित करती है, जिससे समय के साथ भूमि के विशाल भू-भाग अनुत्पादक हो जाते हैं।

अत्यधिक जुताई और मृदा संघनन: गहन जुताई एवं कटाई के लिये भारी मशीनों के व्यापक उपयोग से मृदा संघनन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, विशेषकर मृदा प्रोफाइल की ऊपरी 20-50 सेंटीमीटर परत में। * मृदा के संघनन से उसमें वायु संचार, जल अंतर्प्रवाह और सूक्ष्मजीवों की गतिशीलता कम हो जाती है। इस भौतिक क्षरण से मृदा के कण टूट जाते हैं, जिससे मृदा का कटाव बढ़ जाता है और उसकी समग्र संरचनात्मक अखंडता कम हो जाती है।

मृदा जैविक कार्बन (SOC) की हानि-SOC उस 'बंधनकारी माध्यम' के रूप में कार्य करता है जो मृदा कणों को जोड़े रखता है तथा सूक्ष्मजीवी जीवन का समर्थन करता है। सत्र 2024-25 के मृदा स्वास्थ्य कार्ड (SHC) आकलन से पता चलता है कि भारत की केवल 25% मृदाओं में ही पर्याप्त SOC स्तर मौजूद है। पंजाब और हरियाणा में कई क्षेत्रों में SOC घटकर मात्र 0.2-0.4% रह गया है। * इस गिरावट का मुख्य कारण जैविक खाद का अपर्याप्त उपयोग और फसल अवशेषों (पराली) का दहन लगभग 100 मिलियन टन प्रति वर्ष है, जो जैविक परत को नष्ट कर देता है तथा मृदा की नमी बनाए रखने की क्षमता को कम कर देता है।

मृदा अपरदन: मृदा अपरदन भारत में भूमि अवनयन का सबसे प्रभावशाली रूप बना हुआ है।

* भारत में लगभग 147 मिलियन हेक्टेयर भूमि भू-क्षरण से प्रभावित है, जिसमें से लगभग 94 मिलियन हेक्टेयर जल अपरदन और 9 मिलियन हेक्टेयर पवन अपरदन से प्रभावित है। * वनों की कटाई और सार्वजनिक चरागाहों के रूपांतरण से यह नुकसान और भी बढ़ जाता है, जिससे मृदा तीव्र मानसूनी वर्षा के प्रत्यक्ष प्रभाव के लिये खुली रह जाती है।



डॉ. जितेंद्र कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ
(पशु चिकित्सा विज्ञान)

डॉ. अभिषेक यादव विषय वस्तु
विशेषज्ञ (कीट/सूत्रकृमि)

डॉ. संजीत कुमार वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं
अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहांव, बलिया
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

आज के समय में बढ़ती बेरोजगारी, सीमित कृषि भूमि और खेती की बढ़ती लागत के कारण ग्रामीण परिवारों के लिए ऐसे व्यवसाय की आवश्यकता है, जिसे कम स्थान और सीमित पूंजी में शुरू करने के नियमित आय प्राप्त की जा सके। मुर्गी पालन ऐसा ही एक लाभकारी व्यवसाय है, जिसे किसान खेती के साथ-साथ अपनाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। मुर्गियों से मुख्य रूप से अंडा और मांस प्राप्त होता है। इसके अलावा मुर्गी की बीट को जैविक खाद के रूप में खेतों में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार मुर्गी पालन न केवल आय का साधन है, बल्कि कृषि एवं पशुपालन आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मुर्गी पालन क्यों है लाभकारी? मुर्गीपालन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लिए बहुत अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं होती। छोटे किसान और भूमिहीन परिवार भी सीमित संख्या में मुर्गियां पालकर इसकी शुरुआत कर सकते हैं।

मुर्गी पालन के प्रमुख लाभ हैं * कम स्थान में व्यवसाय शुरू किया जा सकता है। * अंडे और मांस की बाजार में लगातार मांग रहती है। * मुर्गियां अपेक्षाकृत कम समय में उत्पादन देना शुरू कर देती हैं। * छोटे स्तर से शुरुआत करके धीरे-धीरे व्यवसाय बढ़ाया जा सकता है। * परिवार के सदस्य मिलकर इसका संचालन कर सकते हैं। * महिलाओं और युवाओं के लिए स्वरोजगार का अच्छा अवसर है। * मुर्गी की खाद खेतों के लिए उपयोगी जैविक खाद है।

मुर्गी पालन शुरू करने से पहले इन बातों का रखें ध्यान- मुर्गी पालन शुरू करना आसान है, लेकिन इसे वैज्ञानिक तरीके से करना बहुत जरूरी है। केवल मुर्गियां खरीद लेना पर्याप्त नहीं है। सफल मुर्गी पालन हेतु पहले यह तय करना चाहिए कि आप अंडा उत्पादन करना चाहते हैं, मांस उत्पादन करना चाहते हैं या देशी मुर्गी पालन करना चाहते हैं। इसके बाद शेड, चूजे, दाना, पानी, टीकाकरण, स्वास्थ्य प्रबंधन और बाजार की उचित योजना बनानी चाहिए।

अंडा या मांसकृषि प्रकार का पालन करें?

1. लेयर मुर्गी पालन- यदि आपका उद्देश्य अंडा उत्पादन है तो लेयर मुर्गियां उपयुक्त रहती हैं। इनके लिए संतुलित आहार, पर्याप्त कैल्शियम, स्वच्छ पानी और उचित प्रकाश प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है।

2. ब्रॉयलर मुर्गी पालन- ब्रॉयलर मुर्गियों को मुख्य रूप से मांस उत्पादन के लिए पाला जाता है। इनकी वृद्धि तेज होती है और उचित आहार एवं प्रबंधन मिलने पर कम अवधि में बिक्री योग्य वजन प्राप्त किया जा सकता है।

3. देशी एवं ग्रामीण मुर्गी पालन- देशी मुर्गियों की ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छी मांग रहती है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल

वैज्ञानिक मुर्गी पालन: ग्रामीण स्वरोजगार का सशक्त माध्यम

उन्नत देशी पक्षियों को अपनाकर किसान कम स्तर से व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। अच्छे चूजे ही सफलता की पहली सीढ़ी हैं मुर्गी पालन में शुरुआत अच्छी गुणवत्ता वाले चूजों से होती है। चूजे हमेशा विश्वसनीय एवं प्रमाणित स्रोत से खरीदने चाहिए। स्वस्थ चूजे सामान्यतः सक्रिय, साफ-सुथरे और अच्छी प्रतिक्रिया देने वाले होते हैं। कमजोर या बीमारी के लक्षण वाले चूजों को खरीदने से भविष्य में मृत्यु दर और उपचार खर्च बढ़ सकता है।

मुर्गी शेड कैसा होना चाहिए? मुर्गियों के लिए साफ, सूखा, हवादार और सुरक्षित शेड आवश्यक है। शेड ऐसी जगह बनाना चाहिए जहां पानी जमा न हो।

शेड में * पर्याप्त हवा का आवागमन हो। * बारिश का पानी अंदर न आए। * फर्श सूखा और साफ रहे। * पर्याप्त प्रकाश की व्यवस्था हो। * चूहों एवं जंगली पक्षियों से सुरक्षा हो। * गर्मियों में तापमान कम करने की व्यवस्था हो। * सर्दियों में ठंडी हवा से बचाव हो। * मुर्गियों की संख्या के अनुसार पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो। भीड़भाड़ वाला शेड मुर्गियों में तनाव, बीमारी और उत्पादन में कमी का कारण बन सकता है।

संतुलित आहार से बढ़ेगा उत्पादन- मुर्गी के शरीर की वृद्धि, रोग प्रतिरोधक क्षमता और अंडा या मांस उत्पादन के लिए संतुलित आहार आवश्यक है। आहार में ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन और अन्य पोषक तत्व उचित मात्रा में होने चाहिए। लेयर मुर्गियों के लिए कैल्शियम विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि अंडे के खोल के निर्माण के लिए पर्याप्त कैल्शियम आवश्यक होता है। ब्रॉयलर को उनकी उम्र और उत्पादन अवस्था के अनुसार उपयुक्त स्टार्टर, ग्रोअर और फिनिशर आहार दिया जाता है। सस्ता दाना हमेशा लाभकारी नहीं होता, गुणवत्तापूर्ण और संतुलित दाना ही बेहतर उत्पादन देता है।

स्वच्छ पानी-मुर्गी पालन का सबसे जरूरी आधार- मुर्गियों को हर समय स्वच्छ और ताजा पानी उपलब्ध होना चाहिए। पानी की कमी से भोजन का सेवन, वृद्धि और उत्पादन प्रभावित हो सकता है। पानी के बर्तनों को नियमित रूप से साफ करें और उनमें गंदगी, शैवाल या फफूंद जमा न होने दें। गर्मियों में पानी की आवश्यकता विशेष रूप से बढ़ जाती है।

बीमारी से बचाव इलाज से बेहतर है- मुर्गी पालन में बीमारी फैलने के बाद उपचार करने की तुलना में बीमारी को रोकना अधिक लाभकारी है। इसके लिए टीकाकरण और जैव-सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मुर्गियों में रानीखेत रोग, गम्बोरो रोग, कॉक्सिडियोसिस, संक्रामक ब्रोंकाइटिस आदि रोग आर्थिक नुकसान पहुंचा सकते हैं। इसलिए स्थानीय पशु चिकित्सक या पशुपालन विभाग की सलाह के अनुसार टीकाकरण कार्यक्रम अपनाया जाए। किसी भी बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर बीमार पक्षियों को अलग करें और पशु चिकित्सक की सलाह लें। बिना सलाह के दवाओं और एंटीबायोटिक का उपयोग नहीं करना चाहिए।

जैव-सुरक्षा को न करें नजरअंदाज- मुर्गी फार्म में बीमारी का प्रवेश रोकने के लिए जैव-सुरक्षा जरूरी है। * अनावश्यक लोगों का फार्म में प्रवेश सीमित करें। * बाहर से आने वाले लोगों और वाहनों पर नियंत्रण रखें। * फार्म में फुटबाथ की व्यवस्था करें। * शेड और उपकरणों की नियमित सफाई करें। * जंगली पक्षियों और चूहों को दूर रखें। * बीमार पक्षियों को अलग रखें।

* मृत पक्षियों का सुरक्षित निपटान करें। * अलग-अलग आयु के पक्षियों को यथासंभव अलग रखें।

गर्मी में मुर्गियों को कैसे बचाएं? गर्मियों में अत्यधिक तापमान मुर्गियों के लिए गंभीर समस्या बन सकता है। इसे हीट स्ट्रेस कहा जाता है। इसमें मुर्गियां हांफने लगती हैं, पानी अधिक पीती हैं और दाना कम खाती हैं। परिणामस्वरूप वृद्धि और अंडा उत्पादन प्रभावित हो सकता है। * पर्याप्त स्वच्छ पानी उपलब्ध रखें। * शेड में हवा का अच्छा आवागमन रखें। * सीधी धूप से मुर्गियों को बचाएं। * आवश्यकता के अनुसार कूलिंग व्यवस्था करें। * अत्यधिक भीड़ न रखें। * गर्म समय में मुर्गियों को अनावश्यक रूप से पकड़ने से बचें।

बरसात में रखें विशेष सावधानी- बरसात के मौसम में शेड में नमी बढ़ जाती है। गीली लिटर और गंदा वातावरण रोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर सकता है। * शेड को सूखा रखें। * गीली लिटर तुरंत बदलें। * पानी के रिसाव को रोकें। * शेड के आसपास जलभराव न होने दें। * नियमित रूप से सफाई एवं कीटाणुशोधन करें।

मुर्गी की बीट भी है उपयोगी- मुर्गी पालन से निकलने वाली बीट को बेकार न समझें। इसमें पौधों के लिए उपयोगी पोषक तत्व होते हैं। उचित तरीके से कम्पोस्ट बनाकर इसका उपयोग खेतों और बगीचों में जैविक खाद के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार मुर्गी पालन को खेती के साथ जोड़कर कचरे को उपयोगी संसाधन में बदला जा सकता है।

खर्च और आमदनी का हिसाब रखें- लाभकारी मुर्गी पालन के लिए प्रत्येक खर्च और आमदनी का रिकॉर्ड रखना बहुत जरूरी है। चूजों, दाने, दवाइयों, टीकाकरण, बिजली, श्रम, परिवहन और अन्य खर्चों का हिसाब रखें। साथ ही अंडे की संख्या, मृत पक्षियों की संख्या, दाने की खपत और बिक्री का रिकॉर्ड भी रखें। जिस किसान को अपने उत्पादन और खर्च का सही हिसाब पता होता है, वह अपने व्यवसाय को अधिक प्रभावी ढंग से चला सकता है।

बाजार की योजना पहले बनाएं- मुर्गी पालन शुरू करने से पहले बाजार की जानकारी लेना जरूरी है। अंडे और मुर्गियों की बिक्री कहाँ होगी, स्थानीय बाजार में मांग कितनी है और वर्तमान कीमत क्या है? इन बातों का पता पहले लगा लेना चाहिए। स्थानीय दुकानदारों, होटल, रेस्टोरेंट, अंडा विक्रेताओं और सीधे उपभोक्ताओं से संपर्क करके बाजार तैयार किया जा सकता है।

छोटे स्तर से शुरुआत करें- नए व्यक्ति को शुरुआत में बहुत बड़ी संख्या में मुर्गियां पालने के बजाय छोटे स्तर से शुरुआत करनी चाहिए। इससे मुर्गी पालन की तकनीक, बीमारी की पहचान, दाना प्रबंधन और बाजार व्यवस्था को समझने का अवसर मिलता है। अनुभव प्राप्त होने के बाद धीरे-धीरे पक्षियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

महिलाओं और युवाओं के लिए सुनहरा अवसर- मुर्गी पालन ग्रामीण महिलाओं और युवाओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी व्यवसाय हो सकता है। घर के आसपास उपलब्ध स्थान का उपयोग करके छोटे स्तर पर इसे शुरू किया जा सकता है। स्वयं सहायता समूहों और किसान समूहों के माध्यम से सामूहिक मुर्गी पालन भी किया जा सकता है।



✍ मयंक कुमार पीएच.डी. शोध छात्र

✍ डॉ. अनिल कुमार सिंह सह-प्राध्यापक,

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, चन्द्रशेखर आजाद
कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

बुंदेलखंड केवल भौगोलिक दृष्टि से ही विशिष्ट क्षेत्र नहीं है, बल्कि यहां की मिट्टियों में भी उल्लेखनीय विविधता पाई जाती है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में फैले इस क्षेत्र की कृषि मुख्यतः वर्षा पर निर्भर है और यहां वर्षा की अनिश्चितता, लंबे शुष्क काल, मृदा अपरदन तथा जल की कमी कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है। बुंदेलखंड क्षेत्र में स्थानीय रूप से मार, काबर, परवा और राकर चार प्रमुख मृदा प्रकारों का उल्लेख मिलता है। आज चुनौती केवल मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने की नहीं है, बल्कि मृदा में उपलब्ध पानी को रोकने, जैविक कार्बन बढ़ाने, पोषक तत्वों का संतुलन बनाए रखने और भूमि क्षरण को रोकने की भी है। इसलिए बुंदेलखंड में मृदा प्रबंधन को केवल उर्वरक प्रबंधन तक सीमित न रखकर मृदा-जल-पोषक तत्व के समन्वित प्रबंधन के रूप में देखने की आवश्यकता है।

बुंदेलखंड की मिट्टियों की पहचान- बुंदेलखंड की मिट्टियों का स्वरूप स्थलाकृति, मूल शैल, जल निकास तथा मृदा निर्माण की परिस्थितियों के अनुसार बदलता है। सामान्यतः मार और काबर को काली मिट्टी समूह, जबकि परवा और राकर को लाल/हल्की मिट्टी समूह से जोड़ा जाता है। उपलब्ध क्षेत्रीय अध्ययनों में परवा का विस्तार लगभग 38.5 प्रतिशत, काबर 31.4 प्रतिशत, राकर 17.6 प्रतिशत और मार 12.4 प्रतिशत बताया गया है।

1. मार मिट्टी- मार गहरी, चिकनी तथा सामान्यतः काली रंग की मिट्टी है। इसमें नमी धारण करने की क्षमता अच्छी होती है तथा गीली होने पर फूलने और सूखने पर सिकुड़ने की विशेषता दिखाई देती है। सूखने पर इसमें दरारें विकसित हो सकती हैं। ऐसी मिट्टी में जल निकास तथा समय पर जुताई महत्वपूर्ण हो जाती है। मार मिट्टी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी जल धारण क्षमता है, लेकिन यही गुण अत्यधिक नमी की स्थिति में समस्या भी बन सकता है। इसलिए ऐसी मिट्टी में जल निकास, उचित जुताई और खेत की समतलीकरण जैसी गतिविधियों का महत्व बढ़ जाता है।

2. काबर मिट्टी- काबर भी बुंदेलखंड की प्रमुख काली मिट्टी है। इसकी बनावट अपेक्षाकृत चिकनी से लेकर चिकनी-दोमट तक हो सकती है और सूखने पर यह कठोर ढेलों का रूप ले सकती है। क्षेत्रीय स्रोतों के अनुसार काबर और मार दोनों ही गहरी, महीन बनावट वाली मिट्टियां हैं तथा गीली और सूखी अवस्था में इनके आयतन में परिवर्तन होता है। काबर मिट्टी में उचित समय पर खेत की तैयारी, जैविक पदार्थों का प्रयोग और जल प्रबंधन महत्वपूर्ण हैं। अत्यधिक गीली अवस्था में जुताई करने से मिट्टी की संरचना प्रभावित हो सकती है, जबकि बहुत सूखने के बाद जुताई करने पर बड़े ढेले बन सकते हैं।

3. परवा मिट्टी- परवा अपेक्षाकृत हल्की बनावट वाली मिट्टी है। कई क्षेत्रों में यह दोमट से बलुई-दोमट स्वरूप में मिलती है। इसकी जल निकास क्षमता अपेक्षाकृत अच्छी हो सकती है, लेकिन हल्की बनावट के कारण नमी और पोषक तत्वों के संरक्षण की चुनौती रहती है। उपलब्ध क्षेत्रीय अध्ययनों में परवा को बुंदेलखंड की प्रमुख मिट्टियों में सबसे व्यापक बताया गया है। परवा मिट्टी में जैविक खाद, फसल अवशेष, मल्लिचंग और वर्षा जल के अधिकतम अवशोषण की तकनीकें उपयोगी हो सकती हैं।

बुंदेलखंड की प्रमुख मिट्टियों का संकट एवं प्रबंधन

4. राकर मिट्टी: राकर सामान्यतः ऊंचाई वाले, ढालदार तथा अधिक अपरदन-प्रवण क्षेत्रों में पाई जाती है। यह अपेक्षाकृत मोटी बनावट, कम गहराई और अधिक पारगम्यता वाली हो सकती है। ऐसे क्षेत्रों में वर्षा का पानी तेजी से बह जाने तथा ऊपरी उपजाऊ मृदा के हटने का खतरा अधिक रहता है इसलिए राकर मिट्टी के लिए मृदा एवं जल संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन प्राथमिकताओं में शामिल होना चाहिए।

बुंदेलखंड की मिट्टियों के सामने प्रमुख संकट

1. मृदा अपरदन: बुंदेलखंड की असमतल भूमि, वर्षा की तीव्र घटनाएं तथा ढाल वाले क्षेत्र मृदा अपरदन की संभावना बढ़ाते हैं। विशेषकर राकर और परवा जैसी हल्की मिट्टियों में बहते पानी के साथ ऊपरी उपजाऊ मृदा के हटने की समस्या गंभीर हो सकती है। बाबिना जलागम, झांसी के एक अध्ययन में विभिन्न मृदा श्रृंखलाओं की अपरदनशीलता में स्पष्ट अंतर पाया गया और लाल मृदा से जुड़ी श्रृंखलाएं काली मिट्टी की तुलना में अधिक अपरदनशील पाई गईं। मृदा अपरदन का अर्थ केवल मिट्टी का हटना नहीं है; इसके साथ कार्बनिक पदार्थ, पोषक तत्व और ऊपरी उपजाऊ परत भी खेत से बाहर चली जाती है।

2. जल की कमी और नमी का असमान वितरण- बुंदेलखंड का कृषि तंत्र वर्षा की मात्रा के साथ-साथ उसके समय और वितरण पर अत्यधिक निर्भर करता है। ICAR के अनुसार क्षेत्र का औसत वार्षिक वर्षा क्षेत्र और स्थान के अनुसार लगभग 750-1100 mm के बीच है, फिर भी वर्षा की अनिश्चितता और शुष्क अवधि कृषि के लिए चुनौती बनी रहती है इसलिए यहां समस्या हमेशा केवल "कम वर्षा" नहीं है, बल्कि वर्षा के पानी को खेत में रोककर मिट्टी की नमी में बदलने की भी है।

3. मृदा जैविक कार्बन में कमी: मृदा का जैविक कार्बन मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। बुंदेलखंड जैसे वर्षा-आधारित क्षेत्र में जैविक पदार्थों की कमी होने पर मिट्टी की जल एवं पोषक तत्वों को रोकने की क्षमता प्रभावित हो सकती है इसलिए FYM, कम्पोस्ट, फसल अवशेष तथा हरी खाद का पुनर्चक्रण मृदा स्वास्थ्य सुधार की महत्वपूर्ण रणनीति बन सकता है।

4. पोषक तत्वों का असंतुलन: किसी एक या दो प्रमुख पोषक तत्वों पर अत्यधिक निर्भरता के बजाय खेत की वास्तविक पोषक स्थिति के अनुसार उर्वरक प्रबंधन आवश्यक है। आज मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन में soil-test-based balanced fertilization को विशेष महत्व दिया जा रहा है। ICAR के हालिया अभियानों में भी मृदा परीक्षण, संतुलित उर्वरक उपयोग तथा जैविक स्रोतों के समन्वय पर जोर दिया गया है।

समाधान क्या है?

मृदा परीक्षण से शुरू हो मृदा प्रबंधन: हर खेत की मिट्टी समान नहीं होती। इसलिए एक ही उर्वरक मात्रा को पूरे क्षेत्र के लिए लागू करना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है। मृदा परीक्षण के आधार पर ह, कृच तथा आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की स्थिति जानकर उर्वरक की मात्रा तय करना अधिक प्रभावी दृष्टिकोण है।

"पहले मिट्टी की जांच, फिर उर्वरक का चयन।"

जैविक पदार्थ बढ़ाना होगा: बुंदेलखंड की मिट्टियों में जैविक पदार्थ बढ़ाने के लिए अच्छी तरह सड़ी हुई सड़कूरा प्रयोग, कम्पोस्ट एवं

वर्मी-कम्पोस्ट, फसल अवशेषों को खेत में वापस करना, हरी खाद, दलहनी फसलों को फसल चक्र में शामिल करना, जैव उर्वरकों का उचित उपयोग, कृषि एवं पशुपालन को एकीकृत करना। ऐसे उपाय मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने के साथ उसकी संरचना और जल धारण क्षमता सुधारने में योगदान कर सकते हैं। वर्तमान ICAR कार्यक्रमों में भी FYM, कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक और फसल अवशेष पुनर्चक्रण को मृदा स्वास्थ्य सुधार के महत्वपूर्ण घटकों के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है।

खेत का पानी खेत में रोकना होगा: बुंदेलखंड में "पानी खेत में, मिट्टी खेत में" का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए खेत की मेड़बंदी, कंटूर बॉण्डिंग, समतलीकरण, छोटी जल-संग्रह संरचनाएं, खेत तालाब, मल्लिचंग, रिज-फरो जैसी तकनीकें, जलागम आधारित प्रबंधन, उपयुक्त स्थानों पर चेक डैम आदि अपनाए जा सकते हैं। ICAR के गढ़कुंडार-डबर जलागम मॉडल ने बुंदेलखंड में जल संरक्षण और वर्षा जल के बेहतर उपयोग की संभावनाएं प्रदर्शित की हैं।

राकर और ढालदार भूमि में संरक्षण सर्वोच्च प्राथमिकता: राकर जैसी मिट्टियों में केवल अधिक उर्वरक डालना समाधान नहीं है। यदि ऊपरी मिट्टी ही बहकर निकल रही है तो पहले भूमि संरक्षण आवश्यक है। ऐसे क्षेत्रों में कंटूर आधारित खेती + घास/वनस्पति पट्टी + मेड़बंदी + मल्लिचंग + वृक्ष आधारित कृषि का संयोजन उपयोगी हो सकता है।

मार और काबर में जल निकास: मार और काबर जैसी भारी मिट्टियों में जहां जल धारण क्षमता अच्छी होती है, वहीं अधिक नमी की स्थिति में खेत में जलभराव और जुताई संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। अतः खेत की ढाल, जल निकास, समय पर जुताई तथा उपयुक्त फसल चयन पर ध्यान देना आवश्यक है।

एकीकृत मृदा प्रबंधन ही भविष्य: बुंदेलखंड में मृदा प्रबंधन को चार अलग-अलग समस्याओं के रूप में देखने के बजाय एक एकीकृत प्रणाली के रूप में अपनाना होगा।

मृदा परीक्षण → संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन → FYM + कम्पोस्ट + हरी खाद + फसल अवशेष → जल संरक्षण एवं मृदा अपरदन नियंत्रण → उपयुक्त फसल एवं फसल चक्र → मृदा जैविक स्वास्थ्य में सुधार → जल एवं पोषक तत्व उपयोग दक्षता में वृद्धि → स्थायी कृषि उत्पादकता। यह दृष्टिकोण बुंदेलखंड में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि ICAR की भूमि-संसाधन योजना में भी क्षेत्र के लिए मृदा विशेषताओं, जल उपलब्धता, सिंचाई और स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर उपयुक्त भूमि उपयोग एवं फसल प्रणाली निर्धारित करने पर जोर दिया गया है।

निष्कर्ष- बुंदेलखंड की मार, काबर, परवा और राकर मिट्टियां केवल कृषि उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि इस क्षेत्र की खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा का आधार हैं। इनके सामने मृदा अपरदन, जल की कमी, कम जैविक पदार्थ, पोषक तत्वों का असंतुलन और जलवायु की अनिश्चितता जैसी अनेक चुनौतियां हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल अधिक उर्वरक या अधिक सिंचाई में नहीं है। मृदा परीक्षण आधारित पोषण, जैविक पदार्थों की वापसी, फसल विविधीकरण, मृदा एवं जल संरक्षण, जलागम प्रबंधन और स्थानीय मिट्टी के अनुरूप फसल चयन को एक साथ अपनाना होगा।

"मिट्टी बचेगी तो पानी बचेगा, पानी बचेगा तो खेती बचेगी और खेती बचेगी तो बुंदेलखंड की समृद्धि सुनिश्चित होगी।"



✍ **प्रखर राय** (सस्य विज्ञान विभाग) कृषि संकाय,
 प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया**

✍ **डॉ. अखिलेश कुमार सिंह**
 (सहायक प्रोफेसर) कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह
 (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

धान की कटाई का समय शुरू होते ही किसान को अगली फसल गेहूं की तैयारी भी शुरू कर देनी चाहिए। धान की कटाई में देरी होने का सीधा असर गेहूं की बुवाई पर पड़ता है, इसलिए खेत खाली होते ही बिना अनावश्यक जुताई में समय गंवाए बुवाई की तैयारी करना जरूरी है। सबसे पहले खेत में बचे धान के अवशेषों का उचित प्रबंधन करें। पराली को जलाने के बजाय उसे बारीक काटकर खेत में फैलाएं और मिट्टी में मिलाएं।

अवशेषों के जल्दी अपघटन के लिए प्रमाणित सूक्ष्मजीवी डीकम्पोजर का प्रयोग किया जा सकता है। पूसा डीकम्पोजर के लिए एक कैप्सूल से तैयार घोल को लगभग 25 लीटर पानी में तैयार कर करीब एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव किया जाता है। इसके प्रयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी रहना जरूरी है। जहां गेहूं की बुवाई में बहुत कम समय बचा हो, वहां सुपर सीडर या हैप्पी सीडर जैसी

धान की कटाई के साथ शुरू करें रबी की तैयारी

गेहूं की अच्छी फसल के लिए अभी से जुटें किसान

मशीनों से धान के अवशेषों के बीच सीधे गेहूं की बुवाई की जा सकती है। इससे खेत तैयार करने में लगने वाला समय और लागत दोनों कम किए जा सकते हैं।

गेहूं की फसल की सफलता में सही समय पर बुवाई सबसे महत्वपूर्ण बातों में से एक है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में सामान्य परिस्थितियों में गेहूं की समय पर बुवाई नवंबर के मध्य तक पूरी कर लेना लाभकारी रहता है। यदि धान की कटाई देर से होने के कारण गेहूं की बुवाई नवंबर के अंत या उसके बाद करनी पड़ रही हो, तो किसान को सामान्य अवधि वाली किस्म के बजाय देर से बुवाई के

बचाव में मदद मिलती है। बुवाई से पहले मिट्टी की जांच करा लेना बेहतर है। सामान्य सिंचित गेहूं में स्थानीय सिफारिश के अनुसार लगभग 120-60-40 किलोग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैश प्रति हेक्टेयर का पोषण स्तर रखा जा सकता है। यदि यही मात्रा यूरिया, डीएपी और एमओपी से देनी हो तो लगभग 260 किलोग्राम यूरिया, 130 किलोग्राम डीएपी और 65 किलोग्राम एमओपी प्रति हेक्टेयर की जरूरत होगी। हालांकि वास्तविक मात्रा मिट्टी की जांच, खेत की स्थिति और क्षेत्रीय अनुशंसा के अनुसार तय करना अधिक उचित है। नाइट्रोजन को एक साथ देने के

बजाय फसल की जरूरत के अनुसार बांटकर देना अधिक प्रभावी रहता है।

बुवाई के बाद गेहूं की फसल में पानी और खरपतवार प्रबंधन पर नजर रखें। पहली सिंचाई सामान्यतः बुवाई के लगभग 20-25 दिन बाद, कल्ले निकलने की अवस्था में महत्वपूर्ण होती है। इसके बाद मौसम, मिट्टी और उपलब्ध पानी के अनुसार सिंचाई करें। खेत में पानी खड़ा न रहने दें। खरपतवारों की शुरुआती अवस्था में पहचान कर नियंत्रण करना जरूरी है, क्योंकि गेहूं की शुरुआत में खरपतवार पोषक तत्व, पानी और प्रकाश के लिए फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं। संकरी और चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के अनुसार

उपयुक्त शाकनाशी का चयन करें और उसकी मात्रा हमेशा संबंधित उत्पाद के लेबल तथा स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या कृषि विज्ञान केंद्र की अनुशंसा के अनुसार रखें। जहां संभव हो, फसल चक्र और उचित खेत प्रबंधन के माध्यम से खरपतवारों का दबाव भी कम किया जा सकता है।

धान की कटाई के बाद किसान के पास समय कम होता है, लेकिन यही समय अगली फसल की मजबूत नींव रखने का होता है। पराली जलाने के बजाय उसका खेत में उचित प्रबंधन करें, नमी बचाएं, समय पर गेहूं की बुवाई करें और यदि बुवाई देर से हो रही है तो उपयुक्त देर से बोई जाने वाली किस्म, बढ़ी हुई बीज दर और समय बचाने वाली बुवाई तकनीक अपनाएं। स्वस्थ और प्रमाणित बीज, संतुलित पोषण, सही समय पर सिंचाई तथा शुरुआती खरपतवार नियंत्रण पर ध्यान देकर किसान गेहूं की फसल को बेहतर शुरुआत दे सकता है।



लिए अनुशंसित किस्म का चयन करना चाहिए। ऐसी स्थिति में बीज दर भी बढ़ाकर लगभग 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखना उपयोगी रहता है और कतार दूरी लगभग 18 सेंटीमीटर रखी जा सकती है। देर से बोई गई फसल को जल्दी स्थापित करने के लिए खेत में पर्याप्त नमी और उचित बीज गहराई बनाए रखना जरूरी है। बहुत देर होने पर केवल बीज दर बढ़ाना समाधान नहीं है; सही किस्म और समय बचाने वाली बुवाई विधि का चुनाव भी जरूरी है।

बीज की गुणवत्ता पर भी किसान को विशेष ध्यान देना चाहिए। अपने क्षेत्र के लिए अनुशंसित, प्रमाणित और साफ बीज का उपयोग करें। सामान्य समय पर बुवाई में लगभग 100 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है, जबकि देर से बुवाई में इसे लगभग 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक रखा जा सकता है। बीज उपचार करने से शुरुआती अवस्था में बीज एवं मृदाजनित रोगों से



शिवानंद प्रजापति एमएससी छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संकाय प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जु भैया) विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया

हिमांशु प्रजापति, रोहित कुमार

सहायक प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संकाय प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जु भैया)

विश्वविद्यालय प्रयागराज (उ.प्र.)

सारांश (Abstract)

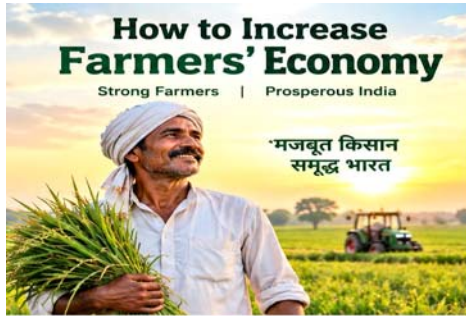
कृषि परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना सतत ग्रामीण विकास, गरीबी उन्मूलन और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक रूप से केवल उत्पादन बढ़ाने पर केंद्रित कृषि नीतियों का ध्यान अब शुद्ध कृषि आय (Net Farm Returns) को अधिकतम करने पर केंद्रित हो रहा है। यह लेख किसानों की आय बढ़ाने के लिए प्रमुख रणनीतियों का विश्लेषण करता है- उत्पादकता में वृद्धि, संसाधन-उपयोग दक्षता, उच्च मूल्य वाली फसलों का विविधीकरण, कटाई के बाद की आपूर्ति श्रृंखला का अनुकूलन, जोखिम प्रबंधन, संस्थागत ऋण तक पहुंच और गैर-कृषि आय सृजन। आधुनिक सटीक तकनीक (Precision Technology) को लक्षित नीतिगत सुधारों के साथ एकीकृत करके, छोटे किसान लागत कम कर सकते हैं, बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त कर सकते हैं और जलवायु तथा आर्थिक अनिश्चितताओं के प्रति लचीलापन बढ़ा सकते हैं।

1. प्रस्तावना (Introduction)

विकासशील देशों में आज भी कृषि लाखों छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका का मुख्य साधन है। हरित क्रांति के बाद से कुल कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि के बावजूद, बढ़ती इनपुट लागत (खाद, बीज, सिंचाई), कटाई के बाद होने वाले भारी नुकसान, बाजार की अनिश्चितता और जलवायु परिवर्तन के कारण किसानों की वास्तविक आय में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है।

ग्रामीण संकट को दूर करने और किसानों की आय में स्थिरता लाने के लिए, नीति निर्माताओं को सकल कृषि उत्पादन (Gross Agricultural Output) के बजाय शुद्ध कृषि लाभप्रदता (Net Farm Profitability) पर ध्यान केंद्रित करना होगा। किसानों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए आपूर्ति-पक्ष की बाधाओं (जैसे मृदा क्षरण और जल संकट) और मांग-पक्ष की समस्याओं (जैसे प्रत्यक्ष बाजार पहुंच और प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव) दोनों का समाधान करना आवश्यक है।

किसानों की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने की रणनीतियां



2. कृषि आय बढ़ाने के प्रमुख रणनीतिक स्तंभ

2.1 उत्पादकता वृद्धि और सटीक खेती (Precision Farming): जलवायु-अनुकूल और उच्च उपज वाले बीजों को अपनाने के साथ-साथ मृदा सेंसर, ड्रोन-आधारित छिड़काव और आधुनिक कृषि यंत्रों के उपयोग से किसान संसाधनों की बर्बादी को कम करते हुए प्रति हेक्टेयर उपज में सुधार कर सकते हैं।

2.2 संसाधनों की दक्षता द्वारा लागत में कमी- मृदा स्वास्थ्य कार्ड (Soil Health Card) के आधार पर संतुलित उर्वरक प्रबंधन महंगे रसायनों के अत्यधिक उपयोग को रोकता है। ड्रिप और स्प्रींकलर जैसी सूक्ष्म-सिंचाई प्रणालियों (Micro-irrigation) को अपनाने से पानी की खपत में 50% तक की कमी आती है और बिजली का खर्च घटता है।

2.3 फसल और उद्यम विविधीकरण- पारंपरिक खाद्यान्न फसलों के साथ-साथ भूमि के एक हिस्से पर उच्च मूल्य वाली कृषि (जैसे बागवानी, सब्जियां, फूल और मसाले) करने से प्रति एकड़ अधिक आय प्राप्त होती है। इसके अलावा, पशुपालन, डेयरी, मधुमक्खी पालन और मत्स्य पालन जैसे सहायक व्यवसायों को जोड़ने से पूरे वर्ष नियमित आय सुनिश्चित होती है।

2.4 किसान उत्पादक संगठन (FPO) और मूल्य संवर्धन- किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के

गठन से छोटे किसानों को थोक दरों पर कृषि सामग्री खरीदने और सीधे खरीदारों को बेचने की सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति मिलती है। इसके अलावा, प्राथमिक प्रसंस्करण, छंटाई, ग्रेडिंग और कोल्ड स्टोरेज जैसी सुविधाएं किसानों को उत्पाद का बेहतर मूल्य प्रदान करती हैं।

2.5 जोखिम प्रबंधन और संस्थागत ऋण तक पहुंच- किफायती फसल बीमा योजनाओं का विस्तार प्राकृतिक आपदाओं और मौसम की मार से होने वाले नुकसान से सुरक्षा प्रदान करता है। वहीं, कम ब्याज दरों पर संस्थागत ऋण की उपलब्धता किसानों को साहूकारों के चक्रवृद्धि ब्याज के जाल से बचाती है।

3. निष्कर्ष (Conclusion)

किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए प्रौद्योगिकी, बुनियादी ढांचे और नीतिगत स्तर पर समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है। केवल उत्पादन बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है; दीर्घकालिक आर्थिक सुधार उत्पादन लागत को घटाने, उच्च-लाभ वाले बाजारों में विविधता लाने, कटाई के बाद के नुकसान को न्यूनतम करने और छोटे किसानों को सीधे आधुनिक आपूर्ति श्रृंखलाओं से जोड़ने पर निर्भर करता है। निर्वाह कृषि (Subsistence Agriculture) को व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य उद्यम में बदलना ग्रामीण समुदायों में स्थायी आर्थिक स्थिरता लाने के लिए अनिवार्य है।



✍ **शाडिणजय सिंह, सुचिस्मिता साहू** शोध छात्र, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

✍ **स्नेहा सिंह** सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शामली

✍ **अर्गुतिका गुप्ता** शोध छात्रा कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में तिलहनी फसलों का कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें राई-सरसों कम लागत, कम पानी की आवश्यकता और अपेक्षाकृत अच्छी बाजार मांग के कारण किसानों हेतु लाभकारी फसल मानी जाती है लेकिन लगातार जुताई, फसल अवशेषों को खेत से हटाना, असंतुलित उर्वरक प्रयोग तथा सिंचाई हेतु बढ़ती लागत खेती की लाभप्रदता को प्रभावित कर रही है। ऐसी स्थिति में संरक्षण खेती राई-सरसों की उत्पादकता बनाए रखते हुए लागत घटाने और मिट्टी की गुणवत्ता सुधारने का प्रभावी विकल्प बन सकती है।

संरक्षण खेती का उद्देश्य केवल जुताई कम करना नहीं है, बल्कि मिट्टी, पानी, फसल अवशेष और उपलब्ध संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन करना है। इसके अंतर्गत न्यूनतम या शून्य जुताई, खेत में फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, फसल विविधीकरण और समय पर बुवाई जैसी तकनीकों को अपनाया जाता है। राई-सरसों की खेती में इन उपायों को अपनाकर किसान डीजल, श्रम, समय और सिंचाई की लागत को कम कर सकते हैं।

संरक्षण खेती की आवश्यकता—परंपरागत खेती में खेत तैयार करने के लिए कई बार जुताई और पाटा चलाया जाता है। इससे मिट्टी की ऊपरी परत बार-बार टूटती है और लंबे समय में उसकी संरचना प्रभावित हो सकती है। साथ ही, प्रत्येक जुताई में मशीनरी, डीजल और श्रम पर अतिरिक्त खर्च होता है। इसके विपरीत संरक्षण खेती में खेत की अनावश्यक जुताई को कम करके मिट्टी को प्राकृतिक अवस्था में रखने का प्रयास किया जाता है। राई-सरसों की बुवाई में विशेष रूप से गेहूं, धान या अन्य खरीफ फसल के बाद खेत की उपलब्ध नमी का उपयोग किया जा सकता है। उचित मशीनों से सीधे या कम जुताई में बुवाई करने से खेत तैयार करने में लगने वाला समय घटता है। इससे किसान फसल की बुवाई उपयुक्त समय पर कर पाता है और समय पर बुवाई का लाभ उत्पादन में भी दिखाई देता है। संरक्षण खेती में फसल अवशेषों का प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। धान या अन्य फसलों के अवशेषों को जलाने के बजाय उन्हें खेत में ही उचित तरीके से व्यवस्थित करना चाहिए। अवशेष धीरे-धीरे सड़कर मिट्टी में जैविक पदार्थ बढ़ाते हैं और मिट्टी की नमी को लंबे समय तक बनाए रखने में मदद करते हैं।

राई-सरसों की बुवाई से पहले खेत में उपलब्ध अवशेषों को समान रूप से फैलाकर जीरो-टिल या उपयुक्त सीड-कम-फर्टिलाइजर ड्रिल से बुवाई की जा सकती है। इससे खेत में अवशेषों की एक सुरक्षात्मक परत बनती है, जो सूर्य की तेज गर्मी और हवा के प्रभाव से मिट्टी की नमी के नुकसान को कम करती है। फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन खरपतवार नियंत्रण में भी सहायक हो सकता है। हालांकि, अत्यधिक अवशेष होने पर बुवाई मशीन के संचालन में परेशानी हो सकती है। इसलिए अवशेषों की मात्रा और वितरण के अनुसार मशीन का सही समायोजन आवश्यक है।

जीरो-टिलेज से घटाएं खेती की लागत—राई-सरसों की समय

राई-सरसों में संरक्षण खेती अपनाकर बढ़ाएं मुनाफा

पर बुवाई के लिए जीरो-टिल सीड ड्रिल उपयोगी तकनीक है। इसमें खेत को पारंपरिक तरीके से तैयार करने की आवश्यकता कम हो जाती है। किसान पिछली फसल की कटाई के बाद उपलब्ध नमी में सीधे बीज एवं उर्वरक की बुवाई कर सकता है। इस तकनीक से खेत तैयार करने में लगने वाले कई जुताई कार्यों की बचत होती है। डीजल की खपत और मशीनरी पर होने वाला खर्च घटता है तथा किसान की मेहनत भी कम होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बुवाई में देरी की संभावना कम होती है। समय पर बोई गई राई-सरसों में पौधों को अनुकूल तापमान और नमी मिलती है। इससे पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर हो सकती है तथा फसल को अपनी उत्पादन क्षमता प्रदर्शित करने का अधिक अवसर मिलता है।

उचित बीज एवं उर्वरक प्रबंधन—संरक्षण खेती में केवल मशीन बदलना पर्याप्त नहीं है। अच्छी फसल के लिए प्रमाणित और उपयुक्त किस्म के बीज का चयन, बीज दर का निर्धारण तथा संतुलित पोषण प्रबंधन भी आवश्यक है। किसान को मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश तथा आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग फसल की वृद्धि के लिए जरूरी है। आवश्यकता से अधिक नाइट्रोजन डालने से लागत बढ़ने के साथ-साथ पौधों में असंतुलित वृद्धि और रोग-कीट की समस्या बढ़ सकती है। जीरो-टिल मशीन से बुवाई करते समय बीज और उर्वरक की उचित गहराई एवं दूरी बनाए रखना चाहिए। मशीन का कैलिब्रेशन बुवाई से पहले कर लेना चाहिए, ताकि खेत में बीज और उर्वरक समान मात्रा में वितरित हों।

मिट्टी में नमी संरक्षण का लाभ—राई-सरसों अपेक्षाकृत कम पानी में अच्छी फसल देने वाली फसल है, लेकिन महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर पर्याप्त नमी उपलब्ध होना आवश्यक है। संरक्षण खेती में फसल अवशेषों और कम जुताई के कारण मिट्टी की नमी को संरक्षित करने में सहायता मिलती है। खेत की सतह पर अवशेष रहने से पानी का वाष्पीकरण कम हो सकता है। वर्षा या सिंचाई का पानी मिट्टी में बेहतर ढंग से समा सकता है। इससे उपलब्ध पानी का अधिक प्रभावी उपयोग होता है। जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां फसल की महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। अनावश्यक सिंचाई से बचकर किसान पानी, बिजली और श्रम की बचत कर सकता है।

खरपतवार एवं कीट प्रबंधन—संरक्षण खेती में खरपतवार प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। कम जुताई की स्थिति में कुछ खरपतवार खेत में बने रह सकते हैं। इसलिए बुवाई से पहले खेत की स्थिति का निरीक्षण करना और आवश्यकता के अनुसार यांत्रिक अथवा अनुशंसित खरपतवार प्रबंधन उपाय अपनाना चाहिए। खरपतवार नियंत्रण के लिए केवल रसायनों पर निर्भर रहने के बजाय फसल चक्र, उचित बुवाई समय, फसल अवशेष प्रबंधन और यांत्रिक उपायों का समन्वित प्रयोग अधिक प्रभावी हो सकता है। इसी प्रकार सरसों में माहू, आरामखी और अन्य कीटों की नियमित निगरानी करनी चाहिए। खेत में कीट की आर्थिक क्षति स्तर से संबंधित स्थिति को ध्यान में रखकर ही आवश्यक नियंत्रण उपाय अपनाना चाहिए। इससे अनावश्यक कीटनाशक प्रयोग कम किया जा सकता है और उत्पादन लागत भी नियंत्रित रहती है।

फसल विविधीकरण से बढ़ेगा लाभ—संरक्षण खेती को केवल एक फसल तक सीमित नहीं रखना चाहिए। धान-गेहूं प्रणाली में लगातार एक जैसी फसल लेने से मिट्टी के पोषक तत्वों का असंतुलन

और कुछ कीट-रोगों की समस्या बढ़ सकती है। इसलिए उपलब्ध परिस्थितियों के अनुसार फसल विविधीकरण को बढ़ावा देना उपयोगी है। धान के बाद गेहूं के स्थान पर कुछ क्षेत्रों में राई-सरसों जैसी तिलहनी फसलों को शामिल करने से किसानों को अतिरिक्त आय का अवसर मिल सकता है। इससे खाद्य तेलों के घरेलू उत्पादन को भी बढ़ावा मिलता है और कृषि प्रणाली अधिक विविध एवं टिकाऊ बनती है।

किसान समूहों और कस्टम हायरिंग की भूमिका—संरक्षण खेती की मशीनें छोटे किसानों के लिए महंगी हो सकती हैं। इसलिए प्रत्येक किसान के लिए मशीन खरीदना आवश्यक नहीं है। किसान समूह, किसान उत्पादक संगठन, सहकारी समितियां और कस्टम हायरिंग केंद्र ऐसी मशीनों को किराये पर उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जीरो-टिल सीड ड्रिल, हैपी सीडर, सुपर सीडर तथा अन्य उपयुक्त कृषि मशीनों की सामुदायिक उपलब्धता से छोटे और सीमांत किसान भी संरक्षण खेती अपना सकते हैं। मशीनों का साझा उपयोग लागत कम करने के साथ-साथ तकनीक के प्रसार को भी तेज कर सकता है।

किसानों के लिए प्रमुख सावधानियां—संरक्षण खेती अपनाने समय किसान को स्थानीय मिट्टी, फसल प्रणाली और उपलब्ध संसाधनों के अनुसार तकनीक का चयन करना चाहिए। पहली बार अपनाने पर विशेषज्ञों या कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं से तकनीकी सलाह लेना उपयोगी रहेगा। मशीन की सही सेटिंग, बीज की गुणवत्ता, बुवाई की गहराई, उर्वरक की मात्रा और खरपतवार प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बिना जानकारी के किसी तकनीक की नकल करने के बजाय खेत की परिस्थितियों के अनुसार उसका प्रयोग करना अधिक लाभकारी होगा।

संरक्षण खेती में कृषि प्रसार की भूमिका—संरक्षण खेती के विस्तार में कृषि प्रसार तंत्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विभाग, विश्वविद्यालय, किसान उत्पादक संगठन तथा अन्य संस्थाएं किसानों को तकनीकी प्रशिक्षण, प्रदर्शन और सलाह उपलब्ध करा सकती हैं। गांव स्तर पर फंटेलाइन प्रदर्शन, खेत दिवस, किसान प्रशिक्षण, मशीन प्रदर्शन और सफल किसानों के अनुभवों का आदान-प्रदान किया जाना चाहिए। यदि किसान अपने ही क्षेत्र में संरक्षण खेती के लाभ को देखकर समझते हैं, तो नई तकनीक अपनाने की संभावना बढ़ जाती है। कृषि प्रसार कार्यकर्ता किसानों को केवल तकनीक बताने के बजाय उनकी स्थानीय समस्याओं को समझकर समाधान उपलब्ध कराने में सहयोग कर सकते हैं। मोबाइल फोन, व्हाट्सएप समूह और डिजिटल कृषि सलाह के माध्यम से बुवाई समय, मौसम, कीट प्रबंधन और बाजार संबंधी जानकारी भी समय पर पहुंचाई जा सकती है।

निष्कर्ष—राई-सरसों की खेती में संरक्षण कृषि केवल लागत घटाने की तकनीक नहीं है, बल्कि यह मिट्टी, पानी, ऊर्जा और पर्यावरण के संरक्षण के साथ लाभकारी खेती की दिशा में एक समग्र दृष्टिकोण है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष प्रबंधन, समय पर बुवाई, संतुलित पोषण, वैज्ञानिक सिंचाई और समन्वित कीट-खरपतवार प्रबंधन को अपनाकर किसान अपनी खेती को अधिक टिकाऊ बना सकते हैं। विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए मशीनों की सामुदायिक उपलब्धता, कस्टम हायरिंग केंद्रों और किसान समूहों को मजबूत करना आवश्यक है। कृषि वैज्ञानिकों, प्रसार कार्यकर्ताओं और किसानों के बीच बेहतर समन्वय से संरक्षण खेती का प्रभावी प्रसार किया जा सकता है। इस प्रकार राई-सरसों में संरक्षण खेती अपनाकर कम लागत, बेहतर संसाधन उपयोग, मिट्टी की सेहत और टिकाऊ आय इन सभी लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।



❧ **नीतू चौधरी** विद्यावाचस्पति, कीट विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान, कृषि महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

प्रस्तावना: कृषि फसलों में कीटों का प्रकोप उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक है। परंपरागत रूप से कीट नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों का अधिक उपयोग किया जाता रहा है। इससे तत्काल कीट नियंत्रण तो प्राप्त होता है, लेकिन इनके अत्यधिक एवं असंतुलित उपयोग से खेती की लागत बढ़ने के साथ-साथ मित्र कीटों को नुकसान, कीटों में प्रतिरोधकता तथा पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

इन समस्याओं के समाधान के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management – IPM) एक वैज्ञानिक, आर्थिक और पर्यावरण-अनुकूल दृष्टिकोण है। इसमें कीट नियंत्रण के लिए केवल रासायनिक दवाओं पर निर्भर न रहकर कृषि, यांत्रिक, जैविक, भौतिक तथा आवश्यकतानुसार रासायनिक उपायों का समन्वित उपयोग किया जाता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन क्या है?

एकीकृत कीट प्रबंधन ऐसी प्रबंधन प्रणाली है जिसमें फसल में कीटों की नियमित निगरानी की जाती है और आर्थिक क्षति स्तर को ध्यान में रखते हुए उचित नियंत्रण उपाय अपनाए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य प्रत्येक कीट को पूरी तरह समाप्त करना नहीं, बल्कि उसकी संख्या को आर्थिक नुकसान की सीमा से नीचे रखना है।

IPM का मूल सिद्धांत है— "पहले रोकथाम, फिर निगरानी और आवश्यकता होने पर उचित नियंत्रण।"

एकीकृत कीट प्रबंधन के प्रमुख घटक

1. **स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग**—कीट एवं रोगों से मुक्त, प्रमाणित और अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का चयन करना IPM की पहली कड़ी है। स्वस्थ पौधों में कीटों के प्रति सहनशीलता अधिक होती है और फसल का प्रारंभिक विकास बेहतर होता है।

2. **खेत की स्वच्छता**— खेत में फसल अवशेष, खरपतवार और संक्रमित पौधों को अनावश्यक रूप से पड़े रहने देने से कई कीटों को आश्रय मिलता है। इसलिए खेत की नियमित सफाई तथा संक्रमित पौधों और अवशेषों का उचित प्रबंधन आवश्यक है।

3. **फसल चक्र एवं फसल विविधीकरण**— एक ही खेत में लगातार एक ही फसल उगाने से विशेष कीटों की संख्या बढ़ सकती है। फसल चक्र अपनाने से कीटों के जीवन चक्र में बाधा आती है और उनकी संख्या को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

4. **समय पर बुवाई**—फसल की समय पर बुवाई करने से पौधों की प्रारंभिक अवस्था में कीटों के अत्यधिक प्रकोप से बचाव किया जा सकता है। स्थानीय कृषि जलवायु के अनुसार अनुशंसित बुवाई समय का पालन करना लाभकारी होता है।

5. **यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण**—कीटों को हाथ से चुनकर नष्ट करना, संक्रमित पौधों को हटाना, प्रकाश प्रपंच तथा चिपचिपे प्रपंच का उपयोग करना आदि यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण के प्रभावी उपाय हैं। पीले चिपचिपे प्रपंच का उपयोग विशेष रूप से रस चूसने वाले छोटे कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण में किया जाता है, जबकि कुछ परिस्थितियों में नीले चिपचिपे प्रपंच का उपयोग भी किया जाता है।

6. **जैविक नियंत्रण**—जैविक नियंत्रण में कीटों के प्राकृतिक

एकीकृत कीट प्रबंधन : टिकाऊ एवं सुरक्षित खेती की प्रभावी रणनीति



शत्रुओं का उपयोग किया जाता है। इनमें परभक्षी कीट, परजीवी कीट तथा कुछ सूक्ष्मजीव महत्वपूर्ण हैं।

उदाहरण के लिए— * लैडीबर्ड बीटल जैसे परभक्षी कीट माहू जैसे कीटों को खाते हैं। * ट्राइकोग्रामा जैसे परजीवी कीट कुछ हानिकारक कीटों के अंडों को परजीवीकृत करते हैं। * कुछ जैव-कीटनाशी सूक्ष्मजीव भी विशिष्ट कीटों के नियंत्रण में उपयोगी होते हैं।

जैविक नियंत्रण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे फसल में उपस्थित अनेक मित्र जीवों का संरक्षण किया जा सकता है।

7. **वनस्पति आधारित उपाय**—नीम आधारित उत्पादों एवं अन्य अनुमोदित वनस्पति-आधारित कीटनाशी पदार्थों का उपयोग कई कीटों के प्रबंधन में किया जा सकता है। इनका उपयोग अनुशंसित मात्रा एवं उचित समय पर किया जाना चाहिए।

8. **प्रतिरोधी किस्मों का चयन**— जहां उपलब्ध हों, वहां कीट प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों का चयन करना कीट प्रबंधन का प्रभावी एवं कम लागत वाला उपाय है। इससे कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने में सहायता मिलती है।

कीटों की नियमित निगरानी क्यों जरूरी है? IPM में निगरानी सबसे महत्वपूर्ण चरणों में से एक है। किसान को खेत का नियमित निरीक्षण करना चाहिए और पौधों पर कीटों की संख्या, अंडे, लार्वा तथा कीटों से होने वाली क्षति पर ध्यान देना चाहिए।

इसके लिए

* खेत का नियमित भ्रमण करें।

* पौधों की पत्तियों और नई वृद्धि की जांच करें।

* चिपचिपे एवं फेरोमोन प्रपंचों की सहायता से कीटों की निगरानी करें।

* कीटों की संख्या और फसल क्षति का रिकॉर्ड रखें।

* आवश्यकता के अनुसार कृषि विशेषज्ञ की सलाह लें।

आर्थिक क्षति स्तर का महत्व—IPM में प्रत्येक कीट दिखाई देने पर तुरंत कीटनाशक का छिड़काव करना उचित नहीं माना जाता। जब कीटों की संख्या ऐसी स्थिति तक पहुंचने लगे जहां उनसे होने वाली संभावित क्षति नियंत्रण की लागत के बराबर या उससे अधिक हो सकती है, तब नियंत्रण उपाय अपनाना अधिक आर्थिक होता है। इस अवधारणा को आर्थिक क्षति स्तर (Economic Threshold Level – ETL) से जोड़ा जाता है। विभिन्न फसलों और कीटों के लिए यह स्तर अलग-अलग होता है।

रासायनिक नियंत्रण का विवेकपूर्ण उपयोग—जब अन्य उपाय पर्याप्त न हों और कीट आर्थिक क्षति स्तर से ऊपर पहुंच जाएं, तब आवश्यकता के अनुसार अनुशंसित कीटनाशक का प्रयोग किया जा सकता है।

रासायनिक नियंत्रण अपनाने समय

* केवल अनुशंसित कीटनाशक का उपयोग करें। * लेबल पर दी गई मात्रा और निर्देशों का पालन करें। * एक ही रसायन का बार-बार उपयोग न करें। * अलग-अलग प्रभाव-तंत्र वाले अनुमोदित कीटनाशकों का उचित रोटेशन करें।

* अनावश्यक मिश्रण से बचें।

* छिड़काव के दौरान सुरक्षा निर्देशों का पालन करें।

* कटई से पहले निर्धारित प्रतीक्षा अवधि का पालन करें।

IPM के प्रमुख लाभ

एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाने से किसान को कई लाभ प्राप्त हो सकते हैं—

1. कीटों से होने वाले आर्थिक नुकसान में कमी।
2. कीटनाशकों के अनावश्यक उपयोग में कमी।
3. खेती की लागत को नियंत्रित करने में सहायता।
4. मित्र कीटों एवं प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण।
5. पर्यावरण पर रासायनिक दवाव में कमी।
6. कीटों में रासायनिक प्रतिरोध विकसित होने की संभावना को कम करने में सहायता।
7. कृषि उपज की गुणवत्ता एवं सुरक्षित खाद्य उत्पादन को बढ़ावा।
8. दीर्घकाल में टिकाऊ कृषि प्रणाली का विकास।

किसान के लिए IPM की सरल कार्ययोजना

पहला चरण— रोकथाम—स्वस्थ बीज, उचित फसल चक्र, समय पर बुवाई और खेत की स्वच्छता अपनाएं।

दूसरा चरण— निगरानी—खेत का नियमित निरीक्षण करें और प्रपंचों की सहायता से कीटों की स्थिति देखें।

तीसरा चरण— पहचान—हानिकारक कीट और मित्र कीट में अंतर पहचानें।

चौथा चरण— निर्णय—कीटों की संख्या और फसल क्षति के आधार पर नियंत्रण की आवश्यकता निर्धारित करें।

पांचवां चरण— नियंत्रण—पहले यांत्रिक, जैविक एवं अन्य गैर-रासायनिक उपायों को प्राथमिकता दें। आवश्यकता होने पर अनुशंसित रासायनिक नियंत्रण अपनाएं।

छठा चरण— मूल्यांकन—नियंत्रण के बाद खेत का पुनः निरीक्षण करें और देखें कि कीटों की संख्या एवं फसल क्षति में कितना परिवर्तन आया है।

निष्कर्ष: एकीकृत कीट प्रबंधन आधुनिक एवं टिकाऊ कृषि का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका उद्देश्य कीटों का पूर्ण उन्मूलन नहीं, बल्कि उनकी संख्या को ऐसी सीमा में रखना है जिससे फसल को आर्थिक नुकसान न हो। नियमित निगरानी, उचित कृषि पद्धतियां, जैविक नियंत्रण, यांत्रिक उपाय और आवश्यकता पड़ने पर विवेकपूर्ण रासायनिक नियंत्रण—इन सभी का संतुलित उपयोग IPM को प्रभावी बनाता है। किसानों द्वारा एकीकृत कीट प्रबंधन अपनाने से उत्पादन लागत को नियंत्रित करने, प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने और सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है।



डॉ. संगीता चौधरी, डॉ. अनिल जाखड़
विद्या वाचस्पति शस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र
कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)-303329

सारांश

बीज किसी भी फसल उत्पादन प्रणाली का आधार होता है और इसकी गुणवत्ता सीधे अंकुरण, पौध स्थापना, वृद्धि एवं अंतिम उपज को प्रभावित करती है। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियां जैसे सूखा, कम तापमान, लवणता तथा मृदा की खराब स्थिति बीज अंकुरण और पौध स्थापना को प्रभावित करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में बीज सशक्तिकरण तकनीकें बीज की शारीरिक एवं जैव रासायनिक क्षमता को बढ़ाकर बेहतर अंकुरण, तेज पौध विकास और उच्च उत्पादकता प्राप्त करने में सहायक होती हैं। बीज सशक्तिकरण में विभिन्न तकनीकें जैसे बीज प्राइमिंग, बीज कोटिंग, बीज कंडीशनिंग, बायो-प्राइमिंग, हार्मोनल प्राइमिंग, ओस्मो-प्राइमिंग और नैनो-प्राइमिंग शामिल हैं। ये तकनीकें बीज में चयापचय गतिविधियों को सक्रिय करती हैं, एंजाइम क्रियाशीलता बढ़ाती हैं तथा अंकुरण की गति और एकरूपता में सुधार करती हैं। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन और संसाधनों की कमी को देखते हुए बीज सशक्तिकरण तकनीकें सतत कृषि उत्पादन, जल उपयोग दक्षता और फसल स्थापना सुधारने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यह लेख प्रमुख बीज सशक्तिकरण तकनीकों, उनके सिद्धांतों, कृषि महत्व, लाभों और भविष्य की संभावनाओं पर चर्चा करता है।

परिचय

उच्च गुणवत्ता वाला बीज सफल फसल उत्पादन की पहली आवश्यकता है। अच्छे बीज में उच्च अंकुरण क्षमता, अधिक जीवन शक्ति, रोग प्रतिरोधक क्षमता और प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता होती है। हालांकि, खेत परिस्थितियों में कम नमी, उच्च तापमान, लवणता, पोषक तत्वों की कमी और रोगजनकों के कारण बीज अंकुरण और पौध स्थापना प्रभावित हो सकती है। बीज सशक्तिकरण एक ऐसी तकनीक है जिसमें बीज की प्राकृतिक क्षमता को बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक उपचार किए जाते हैं। इसका उद्देश्य बीज के अंकुरण प्रतिशत, अंकुरण की गति, पौध वृद्धि और फसल उत्पादकता में सुधार करना है।

बीज सशक्तिकरण की अवधारणा

बीज सशक्तिकरण का अर्थ है-ऐसी पूर्व-बुवाई तकनीकों का उपयोग जिनसे बीज की जैविक और शारीरिक क्षमता में सुधार किया जा सके।

इसके प्रमुख उद्देश्य हैं- * तेज और समान अंकुरण प्राप्त करना। * पौध स्थापना में सुधार करना। * प्रारंभिक वृद्धि को बढ़ावा देना। * पर्यावरणीय तनाव सहनशीलता बढ़ाना। * रोगों से सुरक्षा प्रदान करना।

प्रमुख बीज सशक्तिकरण तकनीकें

1. **बीज प्राइमिंग**-बीज प्राइमिंग सबसे लोकप्रिय

खेत फसलों में बीज सशक्तिकरण तकनीकें: सतत एवं बेहतर फसल उत्पादन के लिए एक कृषि वैज्ञानिक दृष्टिकोण

और प्रभावी बीज सशक्तिकरण तकनीक है। इसमें बीजों को नियंत्रित मात्रा में पानी या घोल में भिगोया जाता है ताकि अंकुरण से संबंधित जैव रासायनिक प्रक्रियाएं सक्रिय हो जाएं, लेकिन मूलांकुर बाहर न निकले।

बीज प्राइमिंग के प्रकार

(a) **हाइड्रो-प्राइमिंग**-इसमें बीजों को केवल पानी में भिगोया जाता है।

लाभ * अंकुरण दर में वृद्धि। * कम लागत वाली तकनीक। * छोटे किसानों के लिए उपयोगी।

(b) **ओस्मो-प्राइमिंग**-इसमें बीजों को KNO₃, PEG (Polyethylene glycol), CaCl₂ आदि घोलों से उपचारित किया जाता है।

प्रभाव

* बीज में जल अवशोषण नियंत्रित होता है।

* अंकुरण की एकरूपता बढ़ती है।

* तनाव सहनशीलता में वृद्धि होती है।

(c) **हार्मोनल प्राइमिंग**-इसमें पौध वृद्धि नियामकों जैसे- Gibberellic acid (GA₃), Salicylic acid, Auxin, Cytokinin का उपयोग किया जाता है। GA₃ बीज अंकुरण के दौरान एंजाइम सक्रियता बढ़ाकर प्रारंभिक वृद्धि में सहायता करता है।

2. **बायो-प्राइमिंग**- बायो-प्राइमिंग में बीजों को लाभकारी सूक्ष्मजीवों से उपचारित किया जाता है।

प्रमुख सूक्ष्मजीव-Rhizobium, Azotobacter, Azospirillum, Pseudomonas fluorescens, Trichoderma spp.

लाभ

* रोग नियंत्रण।

* पोषक तत्व उपलब्धता में वृद्धि।

* पौध वृद्धि को बढ़ावा।

3. **बीज कोटिंग**-इस तकनीक में बीज की सतह पर सुरक्षात्मक पदार्थ, पोषक तत्व या सूक्ष्मजीव लगाए जाते हैं।

प्रकार: Polymer coating, Nutrient coating, Microbial coating यह तकनीक बीजों की सुरक्षा और खेत में समान वितरण में सहायक होती है।

4. **नैनो-प्राइमिंग**- नैनो तकनीक का उपयोग बीज उपचार में तेजी से बढ़ रहा है।

प्रयुक्त पदार्थ-Nano ZnO, Nano SiO₂, Nano TiO₂

लाभ

* एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि में वृद्धि। * तनाव

सहनशीलता में सुधार। * बेहतर अंकुरण।

खेत फसलों में बीज सशक्तिकरण का महत्व

1. **अंकुरण एवं पौध स्थापना में सुधार**
बीज प्राइमिंग से- अंकुरण जल्दी होता है। पौध संख्या समान रहती है। प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

2. **सूखा सहनशीलता में वृद्धि**- प्राइमिंग तकनीकें पौधों में एंटीऑक्सीडेंट एंजाइम गतिविधि बढ़ाती हैं, जिससे सूखे जैसी परिस्थितियों में पौधे बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

3. **पोषक तत्व उपयोग दक्षता**- बायोप्राइमिंग और पोषक तत्व प्राइमिंग से पौधों में पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है।

4. **रोग प्रबंधन**-लाभकारी सूक्ष्मजीव आधारित बीज उपचार प्रारंभिक रोग संक्रमण को कम करते हैं।

5. **प्रमुख फसलों में उपयोग**- गेहूं-हाइड्रोप्राइमिंग और Zn प्राइमिंग से अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि में सुधार। धान-प्राइमिंग से कम तापमान और सूखे की स्थिति में बेहतर स्थापना, मूंगफली-बायोप्राइमिंग से जड़ विकास एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि। मूंग एवं अन्य दलहन-GA₃, KNO₃ और Rhizobium आधारित प्राइमिंग से अंकुरण एवं उपज में सुधार।

चुनौतियां

1. विभिन्न फसलों के लिए उचित प्राइमिंग प्रोटोकॉल की कमी।

2. बड़े स्तर पर तकनीक अपनाने में कठिनाई।

3. भंडारण अवधि पर प्रभाव।

4. किसानों में तकनीकी जानकारी का अभाव।

5. लागत और उपलब्धता की समस्या।

भविष्य की संभावनाएं

* स्मार्ट बीज उपचार तकनीकों का विकास।

* नैनो-बायो आधारित बीज प्राइमिंग।

* AI आधारित बीज गुणवत्ता परीक्षण।

* जलवायु परिवर्तन अनुकूल बीज तकनीक।

* जैव उर्वरक एवं जैव उत्तेजक पदार्थों का एकीकरण।

निष्कर्ष

बीज सशक्तिकरण तकनीकें आधुनिक कृषि में बीज गुणवत्ता सुधारने और फसल उत्पादकता बढ़ाने की प्रभावी रणनीति हैं। बीज प्राइमिंग, बायोप्राइमिंग, नैनो-प्राइमिंग और बीज कोटिंग जैसी तकनीकें कम लागत में बेहतर पौध स्थापना, तनाव सहनशीलता और संसाधन उपयोग दक्षता प्रदान करती हैं। भविष्य में इन तकनीकों का उपयोग जलवायु स्मार्ट और सतत कृषि प्रणालियों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगा।



आशीष कुमार (सहायक प्रोफेसर), विधि
विभाग, APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान)

कृषि ऋण और कानूनी प्रावधान-क्रेडिट योजनाओं और वसूली प्रक्रियाओं के लिए कानूनी नियम

प्रस्तावना- कृषि क्षेत्र भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है। यह क्षेत्र देश की कुल जीडीपी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए, किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। कृषि ऋण, क्रेडिट योजनाएं और वसूली प्रक्रियाएं इन सबका उद्देश्य किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। हालांकि, इन योजनाओं का प्रभावी संचालन तभी संभव है, जब इनके पीछे मजबूत कानूनी प्रावधान मौजूद हों। इस लेख में, हम विस्तार से चर्चा करेंगे कि कृषि ऋण और संबंधित क्रेडिट योजनाओं के लिए कौन-कौन से कानूनी नियम लागू होते हैं। साथ ही, वसूली प्रक्रियाओं में कौन-कौन से प्रावधान शामिल हैं, यह भी समझेंगे।

कृषि ऋण का परिचय और उसकी महत्ता- कृषि ऋण का अर्थ है, वह वित्तीय सहायता जो किसान अपनी कृषि गतिविधियों हेतु प्राप्त करता है। यह ऋण विभिन्न उद्देश्यों हेतु लिया जा सकता है, जैसे बीज, उर्वरक, मशीनरी, सिंचाई, और फसल बीमा। भारत में, कृषि ऋण का मुख्य स्रोत बैंक, सहकारी समितियां और वित्तीय संस्थान हैं। इन ऋणों का उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाना, कृषि उत्पादन में वृद्धि करना और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करना है। कृषि ऋण का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि यह किसानों को प्राकृतिक आपदाओं, बाजार की अनिश्चितताओं और लागत में वृद्धि जैसी चुनौतियों से लड़ने में मदद करता है। इसके अलावा, यह ऋण किसानों को नई तकनीकों को अपनाने और आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग करने का अवसर भी प्रदान करता है।

कृषि ऋण के प्रकार और योजनाएं- कृषि ऋण विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें मुख्य रूप से शॉर्ट टर्म, मीडियम टर्म और लॉन्ग टर्म ऋण शामिल हैं।

शॉर्ट टर्म ऋण: यह ऋण फसल की खेती के दौरान आवश्यक होता है। इसमें बीज, उर्वरक, कीटनाशक, और सिंचाई जैसी लागतें शामिल हैं। यह ऋण आमतौर पर एक वर्ष के भीतर चुकाया जाता है।

मीडियम टर्म ऋण: यह ऋण मुख्य रूप से कृषि मशीनरी, भूमि सुधार, और सिंचाई परियोजनाओं के लिए लिया जाता है। इसकी अवधि आमतौर पर 1 से 5 वर्ष के बीच होती है।

लॉन्ग टर्म ऋण: यह ऋण बड़े पैमाने पर कृषि भूमि के विकास, जल संसाधन प्रबंधन और कृषि व्यवसाय के विस्तार के लिए लिया जाता है। इसकी अवधि 5 से अधिक वर्षों की हो सकती है।

प्रमुख क्रेडिट योजनाएं- भारत सरकार और राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों को ऋण सुविधा प्रदान करती हैं। इनमें प्रमुख योजनाएं हैं-

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN)- यह योजना किसानों को सीधे वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

* **कृषि विकास योजना-** इसमें किसानों को ऋण पर सब्सिडी दी जाती है।

* **सहकारी ऋण योजना-** सहकारी समितियों के माध्यम से ऋण वितरण किया जाता है।

* **बैंक ऋण योजना-** राष्ट्रीयकृत और निजी बैंक भी कृषि ऋण प्रदान करते हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों को सस्ते और आसान ऋण की सुविधा देना है, ताकि वे अपनी कृषि गतिविधियों को सुगमता से चला सकें।

कानूनी प्रावधान और नियम: कृषि ऋण और क्रेडिट योजनाओं के संचालन के लिए भारत में कई कानूनी और नियम बनाए गए हैं। इनका उद्देश्य ऋण की वसूली, किसानों के अधिकारों का संरक्षण, और वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करना है।

ऋण वसूली अधिनियम, 1993: यह अधिनियम विशेष रूप से ऋण वसूली हेतु बनाया गया है। इसमें, बैंक और वित्तीय संस्थान को अधिकार प्राप्त हैं कि वे अपने ऋण की वसूली हेतु विशेष प्रक्रिया अपना सकते हैं। इसमें, ऋण वसूली के लिए विशेष अदालतें और प्रक्रिया निर्धारित की गई हैं।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (NADP): यह योजना केंद्र सरकार द्वारा संचालित है। इसमें, किसानों को ऋण देने के साथ-साथ, उनके अधिकारों का संरक्षण भी सुनिश्चित किया जाता है। इसमें, ऋण की वसूली के लिए उचित प्रक्रिया और नियम बनाए गए हैं।

सहकारी समितियों का कानूनी ढांचा- सहकारी समितियों के माध्यम से ऋण वितरण के लिए, भारतीय सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1912 और 1965 के अधिनियम लागू हैं। इन नियमों के तहत, सहकारी समितियों को ऋण देने, वसूली करने और किसानों के अधिकारों का संरक्षण करने का अधिकार प्राप्त है।

बैंकिंग नियम और दिशा निर्देश- भारतीय रिजर्व बैंक ने भी कई दिशानिर्देश जारी किए हैं। इनमें, ऋण की सीमा, वसूली की प्रक्रिया, और किसानों के अधिकारों का संरक्षण शामिल है। RBI ने यह सुनिश्चित किया है कि बैंक और वित्तीय संस्थान, ऋण वसूली के दौरान किसी भी तरह का अत्याचार न करें।

वसूली प्रक्रियाएं और कानूनी उपाय- कृषि ऋण की वसूली के लिए विभिन्न प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं। इन प्रक्रियाओं का उद्देश्य, ऋणदाता को उसका पैसा वापस प्राप्त करना है, साथ ही किसानों के अधिकारों का भी संरक्षण करना है।

सामान्य वसूली प्रक्रिया- सबसे पहले, ऋणदाता किसान से संपर्क करता है। यदि भुगतान में देरी होती है, तो वे नोटिस भेजते हैं। यदि फिर भी भुगतान नहीं होता, तो वसूली के लिए कानूनी कदम उठाए जाते हैं। इसमें, अदालत में मामला दर्ज किया जाता है।

ऋण वसूली के लिए विशेष अदालतें- भारतीय कानून में, ऋण वसूली के लिए विशेष अदालतें स्थापित की गई हैं। इन अदालतों का उद्देश्य, वसूली प्रक्रिया को तेज और पारदर्शी बनाना है। इन अदालतों में, ऋणदाता अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं।

संपत्ति जप्ती और बिक्री: यदि ऋण का भुगतान नहीं होता, तो बैंक

या ऋणदाता संपत्ति जब्त कर सकते हैं। इसके बाद, उस संपत्ति को नीलामी के माध्यम से बेचकर ऋण वसूला जाता है। यह प्रक्रिया, कानून के तहत पूरी पारदर्शिता के साथ की जाती है।

किसानों के अधिकार और संरक्षण: किसानों को भी अपने अधिकारों का ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई ऋणदाता उनके साथ अनुचित व्यवहार करता है, तो वे तुरंत संबंधित कानून प्रवर्तन एजेंसियों से संपर्क कर सकते हैं। इसके अलावा, सरकार ने कई योजनाएं शुरू की हैं, ताकि किसानों को वसूली के दौरान कोई अत्याचार न हो।

कानूनी चुनौतियां और समाधान: कृषि ऋण वसूली के दौरान कई बार कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इनमें प्रमुख हैं, किसानों का आर्थिक संकट, वसूली के दौरान अत्याचार, और कानून का दुरुपयोग। इन समस्याओं का समाधान निकालने हेतु, सरकार और न्यायपालिका ने कई कदम उठाए हैं।

किसानों का आर्थिक संकट: किसानों की आर्थिक स्थिति अक्सर कमजोर होती है। इससे, वे ऋण का भुगतान नहीं कर पाते। इस समस्या का समाधान, ऋण माफी योजनाओं और व्याज में छूट के माध्यम से किया गया है।

वसूली के दौरान अत्याचार: कई बार, ऋण वसूली के नाम पर किसानों का शोषण होता है। इस समस्या से निपटने के लिए, सरकार ने वसूली प्रक्रिया में पारदर्शिता और नियम कड़े किए हैं। साथ ही, किसानों को जागरूक करने के लिए अभियान चलाए गए हैं।

कानून का दुरुपयोग: कुछ ऋणदाता, कानून का दुरुपयोग कर सकते हैं। इस स्थिति में, किसानों को अपने अधिकारों का संरक्षण करना चाहिए। इसके लिए, वे संबंधित अदालतों और सरकारी संस्थानों से संपर्क कर सकते हैं।

निष्कर्ष: अंत में, यह कहा जा सकता है कि कृषि ऋण और क्रेडिट योजनाओं के लिए भारत में मजबूत कानूनी प्रावधान आवश्यक हैं। इन नियमों का उद्देश्य, न केवल ऋण की वसूली को सुनिश्चित करना है, बल्कि किसानों के अधिकारों का संरक्षण भी है। यदि इन प्रावधानों का सही तरीके से पालन किया जाए, तो यह प्रणाली अधिक प्रभावी और न्यायसंगत बन सकती है। साथ ही, किसानों को भी चाहिए कि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहें और किसी भी अनुचित व्यवहार के खिलाफ तुरंत कदम उठाएं। इस तरह, हम एक समृद्ध और सशक्त कृषि क्षेत्र का निर्माण कर सकते हैं, जो देश की आर्थिक प्रगति में सहायक हो।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक



प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी
प्रकार के खाद बीज
एवं कीटनाशक
द्वार्डियां उचित रेट
पर मिलती हैं



पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)



शैफाली तंवर (विद्यावाचस्पति शोधकर्ता)
उद्यान विज्ञान विभाग

दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत (विद्यावाचस्पति शोधकर्ता) शस्य विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सारांश: जलवायु परिवर्तन कृषि एवं बागवानी उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभर रहा है। बढ़ता तापमान, वर्षा की अनियमितता, सूखा, लू, पाला, ओलावृष्टि तथा कीट एवं रोगों के बदलते प्रकोप फल फसलों की वृद्धि, पुष्पन, फल-सेट, उपज एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर रहे हैं। फल फसलें अपने बहुवर्षीय स्वभाव के कारण बदलती जलवायु के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होती हैं। दूसरी ओर, फल वृक्ष कार्बन संचयन, मृदा संरक्षण, जैव विविधता एवं किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए भविष्य के फल उत्पादन को जल, मृदा, ऊर्जा एवं जैव संसाधनों के कुशल उपयोग पर आधारित टिकाऊ एवं जलवायु-स्मार्ट प्रणाली के रूप में विकसित करना आवश्यक है।

जलवायु: सहिष्णु किस्मों एवं उपयुक्त रूटस्टॉक का चयन, सूक्ष्म सिंचाई, मल्टिचिंग, जैविक एवं एकीकृत पोषण प्रबंधन, वर्षा जल संचयन, संरक्षित खेती, कैनेपी प्रबंधन, एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन तथा सटीक बागवानी तकनीकों को अपनाकर जलवायु जोखिम को कम किया जा सकता है। विशेष रूप से राजस्थान जैसे शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में बेर, आँवला, करौंदा, बेल एवं अनार जैसी अपेक्षाकृत सूखा-सहिष्णु फसलों के साथ उच्च-मूल्य वाली फसलों की वैज्ञानिक एवं संरक्षित खेती किसानों के लिए नई आर्थिक संभावनाएँ उत्पन्न कर सकती है।

मुख्य शब्द: जलवायु परिवर्तन, टिकाऊ फल उत्पादन, जलवायु-सहिष्णु किस्मों, सूक्ष्म सिंचाई, जैविक पोषण, संरक्षित खेती, सटीक बागवानी

प्रस्तावना: भारत में बागवानी कृषि अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा एवं ग्रामीण रोजगार का महत्वपूर्ण आधार है। फल विटामिन, खनिज, रेशे, एंटीऑक्सीडेंट तथा अन्य जैव सक्रिय यौगिकों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हालाँकि फल उत्पादन मौसम एवं प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर है और तापमान तथा वर्षा में छोटे परिवर्तन भी पुष्पन, फल-सेट, फल विकास एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में बदलाव, जल उपलब्धता में कमी तथा चरम मौसम की घटनाओं की आवृत्ति बढ़ रही है। समशीतोष्ण फलों में शीत आवश्यकता पूरी न होने से असमान पुष्पन एवं कम फल-सेट की समस्या हो सकती है, जबकि उष्ण एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान एवं जल संकट प्रमुख सीमाएँ बन सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन का फल फसलों पर प्रभाव

बढ़ता तापमान: अत्यधिक तापमान प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, पुष्पन एवं फल विकास को प्रभावित करता है तथा फूल झड़ने, परागण में कमी, कम फल-सेट और फल की गुणवत्ता में गिरावट का कारण बन सकता है।

वर्षा की अनियमितता एवं सूखा: लंबे समय तक वर्षा न होने से जल तनाव उत्पन्न होता है, जबकि अल्प अवधि में अत्यधिक वर्षा जलभराव, जड़ सड़न एवं पोषक तत्वों के नुकसान का कारण बन सकती है। बढ़ते वाष्पीकरण के कारण सिंचाई जल की आवश्यकता भी बढ़ सकती है।

जलवायु परिवर्तन के दौर में टिकाऊ फल उत्पादन की संभावनाएं एवं रणनीतियाँ



कीट एवं रोग: तापमान एवं आद्रता में परिवर्तन से कीटों और रोगजनकों के जीवन चक्र तथा प्रसार में बदलाव हो सकता है। इससे नए क्षेत्रों में कीट एवं रोगों का प्रकोप बढ़ने की संभावना रहती है।

फल गुणवत्ता: जलवायु परिस्थितियाँ फल के आकार, रंग, स्वाद, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ, अम्लता, एंटीऑक्सीडेंट एवं अन्य गुणवत्ता विशेषताओं को प्रभावित कर सकती हैं। अतः टिकाऊ उत्पादन का उद्देश्य केवल अधिक उपज नहीं, बल्कि गुणवत्तापूर्ण एवं सुरक्षित फल उत्पादन भी होना चाहिए।

टिकाऊ एवं जलवायु-स्मार्ट फल उत्पादन की प्रमुख रणनीतियाँ

1. **जलवायु-सहिष्णु किस्मों एवं उपयुक्त रूटस्टॉक:** उच्च तापमान, सूखा, लवणता एवं कम शीत आवश्यकता जैसी परिस्थितियों को सहन करने वाली किस्मों का चयन जलवायु अनुकूलन की प्रभावी रणनीति है। स्थानीय जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों के अनुरूप उपयुक्त रूटस्टॉक का उपयोग भी जल, पोषक तत्व एवं अजैविक तनाव सहनशीलता बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

2. **सूक्ष्म सिंचाई एवं फर्टिगेशन:** ड्रिप एवं माइक्रो-स्प्रिंकलर प्रणालियों द्वारा पौधों के जड़ क्षेत्र में आवश्यक मात्रा में जल पहुँचाया जा सकता है जिससे जल की बर्बादी कम होती है। फर्टिगेशन के माध्यम से पोषक तत्वों की आपूर्ति अधिक दक्षता से की जा सकती है।

3. **मल्टिचिंग एवं मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन:** सूखी घास, पत्तियों एवं फसल अवशेषों जैसे जैविक मलच से वाष्पीकरण एवं खरपतवार कम होते हैं तथा मृदा नमी और तापमान को संतुलित रखने में सहायता मिलती है। FYM, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, हरी खाद एवं जैव उर्वरकों का संतुलित उपयोग मृदा में कार्बनिक पदार्थ, जल धारण क्षमता एवं जैविक गतिविधि को बढ़ा सकता है।

4. **वर्षा जल संचयन:** फार्म पॉण्ड, छोटे जलाशय, कट्टर बँडिंग एवं अन्य जल संरक्षण संरचनाओं के माध्यम से वर्षा जल को संचित कर महत्वपूर्ण वृद्धि अवस्थाओं पर पूरक सिंचाई के रूप में उपयोग किया जा सकता है। शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में यह जल सुरक्षा एवं उत्पादन स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

5. **संरक्षित खेती एवं कैनेपी प्रबंधन:** नेट हाउस, शेड नेट, पॉलीहाउस एवं अन्य कम लागत वाली संरचनाएँ अत्यधिक तापमान, ओलावृष्टि एवं असामयिक वर्षा से संवेदनशील फलों की रक्षा कर सकती हैं। उचित छंटाई एवं प्रशिक्षण से प्रकाश एवं वायु संचार बेहतर होता है तथा फल गुणवत्ता और रोग प्रबंधन में सहायता मिलती है।

6. **एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन:** नियमित निगरानी, जैविक नियंत्रण, फेरोमोन एवं चिपचिपे ट्रेप, रोगरोधी किस्मों तथा आवश्यकता आधारित रसायनों का समन्वित उपयोग बदलती जलवायु में प्रभावी कीट एवं रोग प्रबंधन सुनिश्चित कर सकता है। इससे उत्पादन लागत एवं रासायनिक अवशेषों को भी कम किया जा सकता है।

7. **सटीक एवं डिजिटल बागवानी:** सेंसर, मौसम निगरानी, रिमोट सेंसिंग, ड्रोन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) एवं डिजिटल निर्णय सहायता प्रणालियाँ भविष्य की स्मार्ट बागवानी का महत्वपूर्ण हिस्सा होंगी। इन तकनीकों द्वारा मृदा नमी, पौध स्वास्थ्य, मौसम एवं सिंचाई की आवश्यकता की निगरानी कर संसाधनों का अधिक दक्ष उपयोग किया जा सकता है।

राजस्थान के संदर्भ में संभावनाएं: ● राजस्थान का बड़ा भाग शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क जलवायु से प्रभावित है, जहाँ कम एवं अनियमित वर्षा, उच्च तापमान और सीमित जल उपलब्धता फल उत्पादन की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। ऐसी परिस्थितियों में बेर, आँवला, करौंदा, बेल एवं अनार जैसी अपेक्षाकृत सूखा-सहिष्णु फल फसलों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बढ़ावा दिया जा सकता है। ● इन फसलों के साथ सूक्ष्म सिंचाई, वर्षा जल संचयन, मल्टिचिंग, जैविक पदार्थों का उपयोग तथा वैज्ञानिक कैनेपी प्रबंधन अपनाने से उत्पादन की स्थिरता बढ़ाई जा सकती है। दूसरी ओर, स्ट्रॉबेरी जैसी उच्च-मूल्य वाली फसलों के लिए संरक्षित एवं नियंत्रित वातावरण वाली प्रणालियाँ विशेष अवसर प्रदान करती हैं। इससे प्रतिकूल मौसम से सुरक्षा के साथ गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य में सुधार की संभावना रहती है। ● फल आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली भी किसानों की आय को स्थिर करने का प्रभावी माध्यम हो सकती है। फल वृक्षों के साथ दलहन, सब्जियाँ, मसाले, पशुपालन अथवा अन्य उपयुक्त घटकों को जोड़कर विभिन्न स्रोतों से आय प्राप्त की जा सकती है।

भविष्य की संभावनाएं: आने वाले समय में फल उत्पादन को केवल "अधिक उत्पादन" के बजाय "अधिक उत्पादन + संसाधन दक्षता + गुणवत्ता + जलवायु सहनशीलता" के दृष्टिकोण से विकसित करना आवश्यक होगा। इसके लिए निम्न क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए— * जलवायु-सहिष्णु एवं कम-चिह्नित वाली किस्मों का विकास। * सूखा एवं लवणता सहनशील रूटस्टॉक का चयन। * कम जल में अधिक उत्पादन देने वाली सिंचाई तकनीकों का विस्तार। * जैविक एवं प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित पोषण प्रबंधन। * कम लागत वाली संरक्षित खेती का प्रसार। * मौसम आधारित कीट एवं रोग पूर्वानुमान प्रणाली। * सेंसर एवं डिजिटल तकनीक आधारित स्मार्ट ऑर्चर्ड प्रबंधन। * फल प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देना। * किसानों को बाजार, भंडारण एवं कोल्ड-चेन से जोड़ना। * स्थानीय एवं जलवायु-सहिष्णु फल प्रजातियों का संरक्षण एवं व्यावसायिकरण।

निष्कर्ष: जलवायु परिवर्तन फल उत्पादन के लिए गंभीर चुनौती होने के साथ-साथ नई तकनीकों एवं उत्पादन प्रणालियों के विकास का अवसर भी प्रदान करता है। जलवायु-सहिष्णु किस्मों, उपयुक्त रूटस्टॉक, सूक्ष्म सिंचाई, वर्षा जल संचयन, मल्टिचिंग, जैविक एवं एकीकृत पोषण प्रबंधन, संरक्षित खेती तथा सटीक बागवानी तकनीकों के समन्वित उपयोग से फल उत्पादन को अधिक लचीला एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। विशेष रूप से राजस्थान जैसे शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में स्थानीय रूप से अनुकूलित फल फसलों को बढ़ावा देने के साथ उच्च-मूल्य वाली फसलों की वैज्ञानिक एवं संरक्षित खेती किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भविष्य में "स्वस्थ मृदा, कुशल जल प्रबंधन, उपयुक्त पौध सामग्री और स्मार्ट तकनीक" टिकाऊ फल उत्पादन के प्रमुख स्तंभ होंगे। इनके समन्वित उपयोग से बदलती जलवायु में भी उत्पादक, लाभकारी एवं पर्यावरण-अनुकूल फल उत्पादन प्रणाली विकसित की जा सकती है।



✍ **ऋचा सचान** सहायक प्राध्यापक, प्रसार शिक्षा, कृषि महाविद्यालय जोधपुर, कृषि वि.वि. जोधपुर, (राजस्थान)

✍ **स्नेहा सिंह** सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार विभाग, राष्ट्रीय किसान कॉलेज, शामली, उत्तर प्रदेश

कृषि निर्यात में भारत की बढ़ती भूमिका: वैश्विक बाजार में भारतीय कृषि की नई पहचान और ग्रामीण समृद्धि की दिशा में बढ़ते कदम

भूमिका: भारत को सदियों से कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है। यहाँ की कृषि केवल भोजन उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि करोड़ों किसानों की आजीविका, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय विकास की आधारशिला है। लंबे समय तक भारतीय कृषि का प्रमुख उद्देश्य देश की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। हरित क्रांति के बाद भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना और आज विश्व के सबसे बड़े कृषि उत्पादक देशों में शामिल है। लेकिन वर्तमान समय में भारतीय कृषि एक नए परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। अब लक्ष्य केवल अधिक उत्पादन करना नहीं, बल्कि उच्च गुणवत्ता वाले कृषि उत्पादों को वैश्विक बाजार तक पहुँचाकर किसानों की आय में वृद्धि करना भी है।

विश्व व्यापार के बदलते परिदृश्य में कृषि निर्यात भारत के लिए आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार बनकर उभरा है। भारतीय बासमती चावल, मसाले, आम, अंगूर, केला, अनार, चाय, कॉफी, समुद्री उत्पाद, जैविक उत्पाद और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग विश्व के अनेक देशों में लगातार बढ़ रही है। गुणवत्ता, विविधता और प्रतिस्पर्धी मूल्य के कारण भारतीय कृषि उत्पादों ने अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपनी अलग पहचान बनाई है। हाल के वर्षों में केंद्र सरकार ने कृषि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए अनेक नीतिगत सुधार किए हैं। कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय तथा विभिन्न राज्य सरकारों मिलकर किसानों को वैश्विक बाजार से जोड़ने के लिए निरंतर प्रयास कर रही हैं। इन प्रयासों का प्रभाव अब निर्यात के आँकड़ों में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है।

भारत की कृषि निर्यात यात्रा: आत्मनिर्भरता से वैश्विक नेतृत्व तक-स्वतंत्रता के समय भारत खाद्यान्न के लिए आयात पर निर्भर था। हरित क्रांति, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, उन्नत बीज, वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों और कृषि अनुसंधान ने देश को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया। इसके बाद भारतीय कृषि ने धीरे-धीरे घरेलू आवश्यकताओं से आगे बढ़कर वैश्विक बाजार में प्रवेश करना प्रारम्भ किया। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक, प्रमुख मसाला उत्पादक, चावल निर्यातक तथा अनेक बागवानी फसलों का अग्रणी उत्पादक है। भारतीय मसाले लगभग 180 देशों में पहुँच रहे हैं, जबकि बासमती चावल की मांग मध्य-पूर्व, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में लगातार बढ़ रही है।

वर्तमान परिदृश्य: भारत का कृषि निर्यात क्यों चर्चा में है? वर्ष 2025-26 भारतीय कृषि निर्यात के लिए विशेष महत्व रखता है। वैश्विक आर्थिक अनिश्चितताओं, आपूर्ति श्रृंखला की चुनौतियों तथा जलवायु परिवर्तन जैसी परिस्थितियों के बावजूद भारत ने कृषि निर्यात में निरंतर वृद्धि दर्ज की है। वाणिज्य मंत्रालय के अनुसार वित्तीय वर्ष 2024-25 में भारत का कृषि निर्यात लगभग 51.1 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँचा, जो वर्ष 2020 की तुलना में उल्लेखनीय वृद्धि दर्शाता है। वर्ष 2020 से

2025 के बीच कृषि निर्यात में लगभग 8 प्रतिशत से अधिक की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई। वित्तीय वर्ष 2025-26 के प्रारंभिक आँकड़े भी इस सकारात्मक प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। उपलब्ध सरकारी व्यापार आँकड़ों के अनुसार कृषि निर्यात में निरंतर वृद्धि बनी हुई है और भारत ने वैश्विक व्यापारिक चुनौतियों के बावजूद अपनी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति मजबूत की है। कई कृषि उत्पादों के विशेषकर चावल, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ, फल एवं सब्जियाँ, मसाले तथा पशु उत्पादों के निर्यात में उल्लेखनीय बढ़ोतरी दर्ज की गई है। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि यही गति बनी रही तो भारत निकट भविष्य में कृषि निर्यात के क्षेत्र में नई ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकता है। केंद्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय ने वर्ष 2030 तक कृषि एवं खाद्य उत्पादों के निर्यात को 100 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँचाने का लक्ष्य भी व्यक्त किया है।

कृषि निर्यात का किसानों से क्या संबंध है?- अक्सर यह माना जाता है कि निर्यात का लाभ केवल बड़े व्यापारियों या निर्यात कंपनियों को मिलता है, जबकि वास्तविकता इससे कहीं अधिक व्यापक है। जब किसी कृषि उत्पाद की अंतरराष्ट्रीय बाजार में मांग बढ़ती है, तो उसका सकारात्मक प्रभाव खेत तक पहुँचता है। उच्च गुणवत्ता वाली उपज के लिए किसानों को बेहतर मूल्य मिलने की संभावना बढ़ती है। इससे उत्पादन में निवेश बढ़ता है, आधुनिक तकनीकों को अपनाने की प्रेरणा मिलती है और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी जिले का आम, अंगूर, अनार, बासमती चावल या मसाला निर्यात के लिए चयनित होता है, तो वहाँ किसानों को गुणवत्ता मानकों के अनुरूप उत्पादन, ग्रेडिंग, पैकिंग तथा भंडारण की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इससे केवल निर्यात ही नहीं बढ़ता, बल्कि स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन भी होता है। फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि होती है और कृषि अधिक लाभकारी व्यवसाय बनती है। इसी कारण वर्तमान कृषि नीति में "उत्पादन आधारित कृषि" के स्थान पर "बाजार आधारित कृषि" पर अधिक बल दिया जा रहा है। अब किसानों को यह समझाया जा रहा है कि केवल अधिक उत्पादन पर्याप्त नहीं है; वैश्विक गुणवत्ता मानकों के अनुरूप उत्पादन करना भविष्य की आवश्यकता है।

किन कृषि उत्पादों ने भारत को वैश्विक पहचान दिलाई है? भारत की कृषि विविधता ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। देश के विभिन्न राज्यों की जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियाँ अनेक प्रकार की फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं। आज भारत जिन प्रमुख कृषि उत्पादों का निर्यात कर रहा है, उनमें बासमती एवं गैर-बासमती चावल, मसाले, चाय, कॉफी, ताजे फल एवं सब्जियाँ, जैविक उत्पाद, मूँगफली, तिल, गन्ना आधारित उत्पाद, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ तथा समुद्री उत्पाद प्रमुख हैं। विशेष रूप से चावल भारत के कृषि निर्यात का सबसे बड़ा आधार बना हुआ है। निर्यात प्रतिबंधों में चरणबद्ध ढील और वैश्विक मांग में वृद्धि के बाद भारतीय चावल ने पुनः विश्व बाजार में अपनी मजबूत स्थिति स्थापित की है। इसके साथ ही भारतीय आम, विशेषकर अल्फांसो और दशहरी, मध्य-पूर्व, यूरोप तथा अमेरिका

के बाजारों में लोकप्रिय हो रहे हैं। हाल ही में APEDA ने बताया कि भारतीय आमों का निर्यात 45 से अधिक देशों तक पहुँच चुका है, जो भारतीय बागवानी क्षेत्र की बढ़ती वैश्विक स्वीकार्यता का दर्शाता है।

गुणवत्ता ही बनेगी भविष्य की सबसे बड़ी पूँजी- वैश्विक बाजार में केवल उत्पादन की मात्रा नहीं, बल्कि गुणवत्ता, खाद्य सुरक्षा, ट्रेसिबिलिटी और अंतरराष्ट्रीय मानकों का पालन सबसे महत्वपूर्ण होता है। यूरोप, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में कृषि उत्पादों के आयात के लिए अवशेष सीमा, गुणवत्ता प्रमाणन तथा ट्रेसिबिलिटी की कठोर व्यवस्थाएँ लागू हैं। इसी कारण भारत में अब "फार्म टू फॉरेन मार्केट" की अवधारणा को बढ़ावा दिया जा रहा है। भविष्य में वही किसान निर्यात से अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगा जो गुणवत्तापूर्ण उत्पादन को प्राथमिकता देगा। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय कृषि निर्यात ने जिस गति से विकास किया है, उसने यह स्पष्ट कर दिया है कि कृषि अब केवल घरेलू बाजार तक सीमित गतिविधि नहीं रह गई है। वैश्विक मांग, बेहतर परिवहन सुविधाएँ, डिजिटल व्यापार मंच, गुणवत्ता प्रमाणन और सरकारी प्रोत्साहन योजनाओं ने भारतीय किसानों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों के द्वार खोल दिए हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि किसान यह समझें कि कृषि निर्यात केवल बड़े उद्योगों का विषय नहीं है, बल्कि यह उनके खेत, उनकी फसल और उनकी आय से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ अवसर है।

राजस्थान के किसानों के लिए उभरती संभावनाएं: जब कृषि निर्यात की चर्चा होती है, तो सामान्यतः लोगों का ध्यान पंजाब, महाराष्ट्र या गुजरात जैसे राज्यों पर जाता है, लेकिन राजस्थान भी तेजी से कृषि निर्यात के क्षेत्र में अपनी पहचान बना रहा है। राज्य की भौगोलिक विविधता और विशिष्ट कृषि उत्पाद उसे वैश्विक बाजार में विशेष स्थान दिला सकते हैं। राजस्थान से जीरा, इसबगोल, मेथी, धनिया, सौंफ, ग्वार, बाजरा, मूँग, मोठ तथा विभिन्न औषधीय एवं सुगंधित पौधों की अंतरराष्ट्रीय बाजार में अच्छी मांग है। विशेष रूप से भारतीय मसालों और मोटे अनाज (श्रीअन्न) की बढ़ती वैश्विक लोकप्रियता राजस्थान के किसानों के लिए नए अवसर लेकर आई है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2023 को अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष घोषित किए जाने के बाद बाजरा जैसे मोटे अनाजों की मांग विश्व स्तर पर बढ़ी है। राजस्थान भारत का प्रमुख बाजरा उत्पादक राज्य है। जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण विकसित देशों में भी बाजरा आधारित खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ रही है। यदि किसान संगठित रूप से गुणवत्ता उत्पादन और प्रसंस्करण पर ध्यान दें, तो बाजरा भविष्य में निर्यात आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है। जोधपुर, नागौर, बाड़मेर, जैसलमेर और बीकानेर जैसे क्षेत्रों में उत्पादित जीरा और ग्वार पहले से ही अंतरराष्ट्रीय बाजार में पहचान रखते हैं। विशेष रूप से ग्वार गम की मांग खाद्य उद्योग, फार्मास्यूटिकल उद्योग और तेल एवं गैस क्षेत्र में होने के कारण इसकी निर्यात क्षमता अत्यंत उच्च है।



✍ **नितेश शर्मा** (विषय वस्तु विशेषज्ञ) पशुपालन
✍ **डॉ. महेंद्र सिंह चांदावत** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
✍ **डॉ. निधि प्रसार शिक्षा विशेषज्ञ, कृषि**
विज्ञान केंद्र रायपुर पाली-II, कृषि
विश्वविद्यालय जोधपुर

परिचय-ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षित युवाओं के लिए कृषि एवं पशुपालन केवल पारंपरिक आजीविका का साधन नहीं, बल्कि स्वरोजगार और उद्यमिता का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनता जा रहा है। उचित वैज्ञानिक जानकारी, उन्नत प्रबंधन तकनीकों और बाजार की समझ के साथ बकरी पालन को एक लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित किया जा सकता है। ऐसी ही प्रेरणादायी कहानी है ग्राम बूटीवास, तहसील रायपुर, जिला ब्यावर' के युवा पशुपालक प्रदीप काठात की, जिन्होंने सरकारी नौकरी की तैयारी के बाद बकरी पालन को स्वरोजगार के रूप में अपनाया और आज लगभग 70 बकरियों के साथ करीब 12 लाख की वार्षिक आय अर्जित कर रहे हैं।



पशुपालक का परिचय

नाम- श्री प्रदीप काठात, पिता श्री सोहन काठात, ग्राम-बूटीवास, तहसील- रायपुर, जिला- ब्यावर, राजस्थान, शैक्षणिक योग्यता- बी.ए. स्नातक, प्रशिक्षण संस्थान- कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर, प्रशिक्षण वर्ष- 2024, व्यवसाय- वैज्ञानिक बकरी पालन, वर्तमान बकरी संख्या- लगभग 70, वर्तमान वार्षिक आय- लगभग ₹. 12 लाख

रोजगार की तलाश से उद्यमिता की ओर कदम

श्री प्रदीप काठात ने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सरकारी नौकरी को अपना करियर बनाने का प्रयास किया। उन्होंने प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी की और सरकारी सेवा में जाने के लिए मेहनत की, लेकिन उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। नौकरी नहीं लगने के बाद भी उन्होंने निराश होकर प्रयास छोड़ने के बजाय अपने लिए स्वरोजगार का विकल्प तलाशना शुरू किया। ग्रामीण परिवेश से जुड़े होने के कारण उन्हें पशुपालन की संभावनाओं का अनुभव था। इसी दौरान उन्होंने महसूस किया कि यदि बकरी पालन को पारंपरिक तरीके से करने के बजाय वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक तरीके से किया जाए, तो यह एक अच्छा आय का स्रोत बन सकता है। इसी सोच के साथ उन्होंने कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर के वैज्ञानिकों से संपर्क किया और बकरी पालन की वैज्ञानिक तकनीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी शुरू की।

कृषि विज्ञान केंद्र के प्रशिक्षण ने दिखाई नई राह-वर्ष 2024 में श्री प्रदीप काठात ने कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर द्वारा आयोजित वैज्ञानिक बकरी एवं भेड़ पालन प्रशिक्षण में भाग लिया। यह प्रशिक्षण उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। प्रशिक्षण के दौरान उन्होंने बकरी पालन को केवल पशु पालने के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यावसायिक उद्यम के रूप में समझा। प्रशिक्षण में उन्हें बकरी पालन से संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं की जानकारी दी गई।

प्रशिक्षण के दौरान विशेष रूप से निम्न विषयों पर जानकारी प्राप्त की गई- * बकरियों के लिए उपयुक्त एवं वैज्ञानिक आवास व्यवस्था। * बकरी फार्म के लिए उन्नत नस्लों का चयन। * बकरियों के लिए संतुलित आहार एवं उचित पोषण प्रबंधन। * विभिन्न रोगों की पहचान एवं रोकथाम। * समय पर टीकाकरण एवं स्वास्थ्य प्रबंधन। * बकरियों की स्वच्छता एवं जैव-सुरक्षा। * प्रजनन एवं बच्चों के उचित पालन-पोषण की तकनीक। * बकरी के दूध के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की संभावनाएं। *

वैज्ञानिक बकरी पालन से आत्मनिर्भरता की ओर प्रदीप काठात की प्रेरणादायी यात्रा

बकरियों एवं बकरी उत्पादों के विपणन की व्यवस्था। * बकरी पालन को लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए फार्म प्रबंधन। * बाजार की मांग के अनुसार पशुओं के चयन एवं बिक्री की रणनीति। प्रशिक्षण के दौरान प्राप्त जानकारी ने प्रदीप को पारंपरिक पशुपालन से आगे बढ़कर वैज्ञानिक एवं योजनाबद्ध बकरी पालन करने के लिए प्रेरित किया।

वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर शुरू किया व्यवस्थित बकरी पालन-प्रशिक्षण के बाद श्री प्रदीप काठात ने कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिकों से निरंतर संपर्क बनाए रखा। उन्होंने प्रशिक्षण के दौरान प्राप्त जानकारी को अपने फार्म पर लागू करना शुरू किया। उन्होंने बकरियों के लिए बेहतर आवास व्यवस्था, नस्ल चयन, स्वास्थ्य प्रबंधन, टीकाकरण तथा प्रबंधन संबंधी वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाया। धीरे-धीरे उन्होंने अपने बकरी पालन व्यवसाय का विस्तार किया। जहां एक ओर पारंपरिक बकरी पालन में पशुओं की संख्या को ही सफलता का आधार माना जाता है, वहीं प्रदीप ने पशुओं की गुणवत्ता, स्वास्थ्य, प्रजनन क्षमता और बाजार मूल्य पर भी विशेष ध्यान दिया। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण उनके फार्म की उत्पादकता और आर्थिक लाभ में वृद्धि हुई।

70 बकरियों के साथ लगभग ₹. 12 लाख की वार्षिक आय-वर्तमान में श्री प्रदीप काठात के पास लगभग 70 बकरियां हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन, उचित स्वास्थ्य देखभाल, नस्ल चयन, समय पर टीकाकरण तथा बेहतर विपणन व्यवस्था के माध्यम से वे बकरी पालन से लगभग ₹. 12 लाख की वार्षिक आय अर्जित कर रहे हैं। बकरी पालन से प्राप्त आय ने उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनने में भी सहायता की है। उनकी सफलता इस बात का उदाहरण है कि ग्रामीण क्षेत्र का शिक्षित युवा यदि वैज्ञानिक तकनीक और उचित मार्गदर्शन के साथ पशुपालन को व्यवसाय के रूप में अपनाए, तो वह अपने गांव में ही रोजगार एवं आय का बेहतर साधन विकसित कर सकता है।

सोशल मीडिया को बनाया ज्ञान एवं प्रचार का माध्यम- श्री प्रदीप काठात की विशेषता यह भी है कि वे आधुनिक तकनीक का उपयोग अपने बकरी पालन व्यवसाय के विकास के लिए कर रहे हैं। वर्तमान में वे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग बकरी पालन से संबंधित जानकारी साझा करने और अन्य लोगों को इस व्यवसाय के प्रति जागरूक करने के लिए कर रहे हैं। वे अपने अनुभवों के आधार पर अन्य पशुपालकों को बकरी पालन की व्यवस्थाओं, पशु प्रबंधन तथा व्यवसाय से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर सलाह भी देते हैं। इस प्रकार प्रदीप स्वयं सफल बकरी पालक बनने के साथ-साथ अन्य ग्रामीण युवाओं और पशुपालकों के लिए प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का स्रोत बन रहे हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र से जुड़ाव ने बढ़ाया आत्मविश्वास-श्री प्रदीप के अनुसार, केविके से प्राप्त प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिकों का मार्गदर्शन उनके लिए अत्यंत उपयोगी रहा। प्रशिक्षण से उन्हें यह समझने में मदद मिली कि बकरी पालन को यदि वैज्ञानिक तरीके से किया जाए तो यह ग्रामीण क्षेत्र में एक लाभकारी व्यवसाय बन सकता है। प्रशिक्षण के बाद भी उन्होंने केविके के वैज्ञानिकों से संपर्क बनाए रखा और आवश्यकता के अनुसार तकनीकी सलाह प्राप्त की। इससे उन्हें अपने फार्म पर आने वाली समस्याओं का समाधान करने तथा नई तकनीकों को अपनाने में सहायता मिली।

सफलता की प्रमुख उपलब्धियां- श्री प्रदीप काठात की सफलता को निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है- 1. शिक्षित युवा से सफल पशुपालक तक का सफर

बी.ए. की शिक्षा के बाद सरकारी नौकरी की तैयारी की, लेकिन नौकरी नहीं लगने पर स्वरोजगार को अपनाया।

2. **वैज्ञानिक प्रशिक्षण प्राप्त किया**- वर्ष 2024 में कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर से वैज्ञानिक बकरी एवं भेड़ पालन प्रशिक्षण प्राप्त किया।

3. **वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाया**- आवास, नस्ल चयन, टीकाकरण, स्वास्थ्य एवं फार्म प्रबंधन संबंधी तकनीकों को अपनाया।

4. **बकरी पालन को व्यवसाय के रूप में विकसित किया**- पारंपरिक पशुपालन के बजाय योजनाबद्ध एवं व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाया।

5. **लगभग 70 बकरियों का पालन**- वर्तमान में लगभग 70 बकरियों के साथ व्यवस्थित बकरी पालन कर रहे हैं।

6. **लगभग ₹. 12 लाख वार्षिक आय**-बकरी पालन से वर्तमान में लगभग ₹. 12 लाख की वार्षिक आय अर्जित कर रहे हैं।

7. **सोशल मीडिया का उपयोग**-बकरी पालन से संबंधित जानकारी को सोशल मीडिया के माध्यम से अन्य लोगों तक पहुंचा रहे हैं।

8. **यूट्यूब के माध्यम से जागरूकता**-अपने Explore with GP YouTube चैनल के माध्यम से बकरी पालन के प्रति युवाओं एवं पशुपालकों को प्रेरित कर रहे हैं।

9. **अन्य पशुपालकों को मार्गदर्शन**- अपने अनुभव एवं कृषि विज्ञान केंद्र से प्राप्त तकनीकी ज्ञान के आधार पर अन्य लोगों को बकरी पालन के लिए सलाह दे रहे हैं।

दूसरों के लिए प्रेरणा बने प्रदीप-प्रदीप काठात की कहानी केवल एक व्यक्ति के सफल होने की कहानी नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण युवाओं के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश देती है कि रोजगार के लिए केवल सरकारी नौकरी पर निर्भर रहना आवश्यक नहीं है। यदि किसी युवा में सीखने की इच्छा, मेहनत करने का जज्बा और वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने की क्षमता हो, तो कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में भी स्वरोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध हैं। प्रदीप ने सरकारी नौकरी की तैयारी में अपेक्षित सफलता नहीं मिलने के बाद अपने प्रयासों को समाप्त नहीं किया। उन्होंने कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिकों से मार्गदर्शन प्राप्त किया, प्रशिक्षण लिया और उस ज्ञान को अपने व्यवसाय में लागू किया। आज वे न केवल स्वयं अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं, बल्कि सोशल मीडिया और अपने यूट्यूब चैनल के माध्यम से अन्य लोगों को भी बकरी पालन के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

निष्कर्ष- प्रदीप काठात की सफलता यह सिद्ध करती है कि उचित प्रशिक्षण, वैज्ञानिक तकनीक, निरंतर सीखने की इच्छा और मेहनत के साथ बकरी पालन को एक लाभकारी एवं सम्मानजनक स्वरोजगार के रूप में विकसित किया जा सकता है। वर्ष 2024 में कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर से वैज्ञानिक बकरी एवं भेड़ पालन का प्रशिक्षण लेने वाले प्रदीप आज लगभग 70 बकरियों के साथ करीब ₹. 12 लाख वार्षिक आय अर्जित कर रहे हैं। उन्होंने कृषि विज्ञान केंद्र से प्राप्त तकनीकी ज्ञान को अपने फार्म पर लागू करने के साथ-साथ सोशल मीडिया और ट्वनज्जम के माध्यम से बकरी पालन की जानकारी अन्य लोगों तक पहुंचाने का कार्य भी शुरू किया है। उनकी सफलता ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षित युवाओं के लिए यह संदेश देती है कि "यदि वैज्ञानिक ज्ञान और सही दिशा में प्रयास किया जाए, तो पशुपालन को भी सफल व्यवसाय और आत्मनिर्भरता का मजबूत आधार बनाया जा सकता है।" कृषि विज्ञान केंद्र, रायपुर के वैज्ञानिकों का प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन प्रदीप काठात की इस सफलता की यात्रा में महत्वपूर्ण आधार रहा है।



सरजीत यादव पी.एच.डी. स्कॉलर, प्रसार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

लक्ष्मी मीना पी.एच.डी. स्कॉलर, प्रसार शिक्षा विभाग, एम.पी.यू.ए.टी., उदयपुर (राजस्थान)

परिचय

भारत की कृषि केवल खेत में बीज बोने और फसल काटने तक सीमित नहीं है। खेती को सफल और लाभकारी बनाने के लिए किसान को सही समय पर सही जानकारी, उन्नत बीज, मौसम की जानकारी, मृदा स्वास्थ्य, कीट एवं रोग प्रबंधन, सिंचाई, कृषि यंत्रों तथा बाजार से जुड़ी जानकारी की भी आवश्यकता होती है। देश के कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में वैज्ञानिक लगातार नई कृषि तकनीकों का विकास करते हैं, लेकिन इन तकनीकों का वास्तविक लाभ तभी किसानों तक पहुँच सकता है, जब उन्हें सरल भाषा में समझाया जाए और खेत की परिस्थितियों के अनुसार उपयोग करने का तरीका बताया जाए। इसी महत्वपूर्ण कार्य में कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका सामने आती है। कृषि विज्ञान केंद्र यानी चट्टूय किसान और वैज्ञानिक के बीच ज्ञान, तकनीक और अनुभव के आदान-प्रदान की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है।

कृषि विज्ञान केंद्र किसानों को कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में नवीनतम तकनीकी जानकारी और व्यावहारिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं। इन केंद्रों का उद्देश्य केवल किसानों को जानकारी देना नहीं है, बल्कि किसानों की वास्तविक समस्याओं को समझना, उनके समाधान के लिए उपयुक्त तकनीकों की पहचान करना और उन तकनीकों को खेत तक पहुँचाना भी है। जब किसी किसान को फसल में कीट या रोग की समस्या आती है, मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी दिखाई देती है या मौसम में अचानक बदलाव के कारण फसल प्रभावित होती है, तो वह कृषि विज्ञान केंद्र के विशेषज्ञों से सलाह ले सकता है। इस प्रकार चट्टूय किसानों की समस्याओं को समझकर उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समाधान खोजने में सहायता करता है।

किसान और वैज्ञानिक के बीच चट्टूय की भूमिका दोतरफा होती है। एक ओर वैज्ञानिक नई किस्मों, कृषि यंत्रों, उर्वरक प्रबंधन, जल संरक्षण, कीट एवं रोग नियंत्रण तथा अन्य तकनीकों पर अनुसंधान करते हैं। दूसरी ओर किसान अपने खेत में आने वाली वास्तविक समस्याओं और अपने अनुभवों के आधार पर जानकारी प्रदान करते हैं। कृषि विज्ञान केंद्र इन दोनों के बीच संवाद स्थापित करता है। किसान की समस्या चट्टूय के माध्यम से वैज्ञानिकों तक पहुँचती है और वैज्ञानिकों द्वारा विकसित तकनीक चट्टूय के माध्यम से किसानों तक पहुँचती है। इस प्रकार चट्टूय केवल वैज्ञानिक जानकारी को किसान तक पहुँचाने का माध्यम नहीं है, बल्कि किसान की आवाज को वैज्ञानिकों तक पहुँचाने का भी महत्वपूर्ण माध्यम है। किसी भी नई कृषि तकनीक के बारे में केवल सुनना और उसे अपने खेत में अपनाना अलग-अलग बातें हैं। किसान यह जानना चाहता है कि कोई नई तकनीक उसके खेत, मिट्टी, मौसम और आर्थिक परिस्थितियों में कितनी उपयोगी होगी। कृषि विज्ञान केंद्र इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए खेतों पर तकनीकी प्रदर्शन और परीक्षण आयोजित करते हैं। जब किसान अपने आसपास

कृषि विज्ञान केन्द्र : किसान और वैज्ञानिक के बीच ज्ञान की कड़ी

के खेत में किसी नई किस्म, नई उत्पादन तकनीक, संतुलित उर्वरक प्रयोग, सूक्ष्म सिंचाई या कीट नियंत्रण की विधि को प्रत्यक्ष रूप से देखता है, तो उसके लिए उस तकनीक को समझना और अपनाना आसान हो जाता है। खेत पर किया गया प्रदर्शन किसान के लिए केवल जानकारी नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव का माध्यम बन जाता है।

कृषि विज्ञान केंद्रों का एक महत्वपूर्ण कार्य किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना भी है। इन प्रशिक्षणों में किसानों को फसल उत्पादन, बागवानी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, कृषि यंत्रों के उपयोग, खाद्य प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और अन्य कृषि गतिविधियों से संबंधित जानकारी दी जाती है। प्रशिक्षण की विशेषता यह है कि इसमें किसान अपनी स्थानीय समस्याओं को सीधे विशेषज्ञों के सामने रख सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी किसान की फसल में किसी विशेष कीट या रोग की समस्या है, तो वह उसके बारे में विशेषज्ञ से जानकारी प्राप्त कर सकता है और उचित प्रबंधन उपायों को समझ सकता है। इससे किसान का ज्ञान बढ़ता है और गलत तकनीक अपनाने की संभावना कम होती है। आज के समय में कृषि मौसम और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों से भी प्रभावित हो रही है। असमय बारिश, अत्यधिक गर्मी, सूखा, ओलावृष्टि और तापमान में अचानक बदलाव किसानों के लिए बड़ी चिंता का कारण बन सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में कृषि विज्ञान केंद्र किसानों को मौसम के अनुसार कृषि कार्यों की योजना बनाने में सहायता कर सकते हैं। फसल चयन, बुवाई का समय, सिंचाई प्रबंधन, फसल सुरक्षा और पशुओं की देखभाल जैसे विषयों पर समय पर सलाह किसानों के लिए उपयोगी साबित हो सकती है। जलवायु परिवर्तन के दौर में कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका किसानों को जलवायु-स्मार्ट और अनुकूलन आधारित कृषि तकनीकों से परिचित कराने में भी महत्वपूर्ण हो जाती है। कृषि प्रसार के क्षेत्र में डिजिटल तकनीक ने भी एक नया बदलाव पैदा किया है। पहले कृषि जानकारी मुख्य रूप से किसान बैठकों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कृषि मेलों और व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से किसानों तक पहुँचती थी। अब मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से कृषि संबंधी जानकारी तेजी से किसानों तक पहुँचाई जा सकती है। कृषि विज्ञान केंद्र मोबाइल संदेश, वीडियो, ऑनलाइन प्रशिक्षण और किसान समूहों के माध्यम से कृषि जानकारी साझा कर सकते हैं। किसान भी अपनी फसल की समस्या का फोटो या वीडियो विशेषज्ञों को भेजकर प्रारंभिक सलाह प्राप्त कर सकता है। हालांकि, डिजिटल माध्यमों से मिलने वाली हर जानकारी सही हो, यह जरूरी नहीं है। इसलिए किसानों को कृषि संबंधी सलाह विश्वसनीय और वैज्ञानिक स्रोतों से प्राप्त करनी चाहिए।

कृषि विज्ञान केंद्रों की भूमिका केवल फसल उत्पादन तक

प्रसंस्करण और अन्य गतिविधियों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। KVK किसानों को कृषि के साथ-साथ इन संबद्ध गतिविधियों की तकनीकी जानकारी भी प्रदान कर सकते हैं। इससे किसान अपनी उपलब्ध भूमि, पानी, श्रम और संसाधनों के अनुसार विभिन्न गतिविधियों को अपनाकर अपनी आजीविका को अधिक विविध बना सकता है। इसी प्रकार ग्रामीण युवाओं के लिए कृषि आधारित स्वरोजगार के अवसरों की जानकारी और प्रशिक्षण भी कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से उपलब्ध कराया जा सकता है। ग्रामीण कृषि

व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है। खेती के अनेक कार्यों के साथ-साथ पशुपालन, बीज संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण और घरेलू स्तर पर मूल्य संवर्धन में महिलाएँ महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। इसलिए महिलाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण और तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराना कृषि विकास के लिए आवश्यक है। कृषि विज्ञान केंद्र महिला किसानों और ग्रामीण महिलाओं को उनकी रुचि और स्थानीय संसाधनों के अनुसार विभिन्न कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में प्रशिक्षण देकर उनकी भूमिका को और मजबूत कर सकते हैं।

आज किसानों के सामने केवल जानकारी की कमी की समस्या नहीं है, बल्कि सही और गलत जानकारी में अंतर करना भी एक चुनौती बन गया है। सोशल मीडिया और इंटरनेट पर कृषि से संबंधित बहुत-सी जानकारी उपलब्ध है, लेकिन प्रत्येक सलाह वैज्ञानिक रूप से सही या हर क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो, यह आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए किसी एक क्षेत्र में उपयोगी कोई तकनीक दूसरे क्षेत्र की मिट्टी, जलवायु या फसल के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती। ऐसे में कृषि विज्ञान केंद्र किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार वैज्ञानिक और विश्वसनीय सलाह उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसान भी किसी नई तकनीक को बड़े स्तर पर अपनाने से पहले विशेषज्ञों से सलाह लेकर उसका परीक्षण कर सकता है।

कृषि विज्ञान केंद्रों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए किसान और KVK के बीच नियमित संवाद आवश्यक है। किसानों की वास्तविक समस्याओं पर आधारित प्रशिक्षण, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तकनीकी प्रदर्शन, समय पर मौसम एवं फसल सलाह तथा डिजिटल माध्यमों का प्रभावी उपयोग कृषि प्रसार को अधिक मजबूत बना सकता है। इसके साथ ही सफल किसानों के अनुभवों को दूसरे किसानों तक पहुँचाना भी उपयोगी है। किसान जब अपने ही क्षेत्र के किसी दूसरे किसान को किसी तकनीक का सफलतापूर्वक उपयोग करते हुए देखता है, तो उसके मन में उस तकनीक के प्रति विश्वास बढ़ता है। इस प्रकार किसान-से-किसान सीखने की प्रक्रिया भी कृषि तकनीकों के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।



सीमा होदकासीया, सुमित शेखर, सर्वेन्द्र कुमार
आईसीएआर-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ बड़ी संख्या में किसान अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर हैं। बदलती जलवायु, बढ़ती उत्पादन लागत, श्रमिकों की कमी, पानी की सीमित उपलब्धता तथा फसलों में कीट एवं रोगों की समस्या आज कृषि क्षेत्र के सामने प्रमुख चुनौतियाँ हैं। ऐसी परिस्थितियों में ड्रोन तकनीक कृषि को अधिक आधुनिक, सटीक और टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ड्रोन एक मानवरहित हवाई यान है, जिसे दूर से नियंत्रित किया जा सकता है या पूर्व निर्धारित मार्ग के अनुसार स्वचालित रूप से उड़ाया जा सकता है। कृषि में इसका उपयोग "स्मार्ट खेती" और "सटीक कृषि" को बढ़ावा देने के लिए तेजी से किया जा रहा है।

फसल की निगरानी में उपयोगी

कृषि में ड्रोन का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग फसल की निगरानी करना है। खेत में पैदल घूमकर प्रत्येक पौधे की स्थिति का पता लगाना समय और श्रम दोनों की दृष्टि से कठिन होता है। ड्रोन खेत के ऊपर उड़कर कम समय में बड़े क्षेत्र की तस्वीरें और वीडियो ले सकता है। विशेष कैमरों से प्राप्त तस्वीरों के माध्यम से फसल की वृद्धि, पौधों की संख्या, खेत में खाली स्थान तथा फसल की असमान वृद्धि का पता लगाया जा सकता है। कुछ आधुनिक ड्रोन मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल कैमरों से लैस होते हैं। ये मानव आँखों से दिखाई न देने वाली पौधों की विशेषताओं का भी पता लगाने में सक्षम होते हैं। इससे फसल में तनाव, पोषक तत्वों की कमी, जल की कमी और रोग के प्रारंभिक लक्षणों की पहचान की जा सकती है। इस प्रकार किसान समस्या के बड़े रूप लेने से पहले ही आवश्यक प्रबंधन कर सकता है।

कीटनाशी एवं पोषक तत्वों का छिड़काव

ड्रोन का उपयोग खेतों में कीटनाशी, कवकनाशी, सूक्ष्म पोषक तत्व तथा अन्य कृषि इनपुट के छिड़काव के लिए भी किया जा रहा है। पारंपरिक विधि में किसान को खेत में प्रवेश करके छिड़काव करना पड़ता है, जिससे रसायनों के सीधे संपर्क में आने का जोखिम रहता है। ड्रोन से छिड़काव करने पर किसान खेत से सुरक्षित दूरी पर रहकर कार्य कर सकता है। ड्रोन द्वारा निर्धारित मात्रा और क्षेत्र के अनुसार छिड़काव किया जा सकता है। इससे उन स्थानों पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है जहाँ वास्तव में उपचार की आवश्यकता है। परिणाम स्वरूप कृषि रसायनों के अनावश्यक उपयोग को कम करने, श्रम बचाने और समय की बचत में सहायता मिल सकती है। हालाँकि, ड्रोन से रसायनों का छिड़काव करते समय अनुशंसित मात्रा, मौसम की स्थिति, हवा की गति और बूंदों के आकार का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। गलत तरीके से किया गया छिड़काव फसल, आसपास के जीवों और पर्यावरण को प्रभावित कर सकता है।

सिंचाई प्रबंधन में मददगार

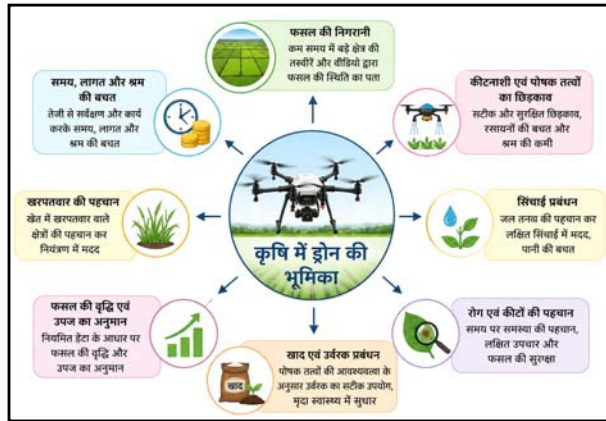
पानी कृषि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण आधार है। कई क्षेत्रों में भूजल स्तर कम होने तथा अनियमित वर्षा के कारण सिंचाई की समस्या बढ़ रही है। ड्रोन से प्राप्त खेत की तस्वीरों और सेंसर आधारित आंकड़ों का उपयोग फसल में जल तनाव की पहचान करने में किया जा सकता है। यदि खेत के किसी हिस्से में पौधे पानी की कमी के कारण कमजोर

कृषि में ड्रोन की भूमिका : स्मार्ट खेती की ओर बढ़ता भारत

हो रहे हैं, तो किसान उस क्षेत्र की पहचान कर लक्षित सिंचाई कर सकता है। इस प्रकार "जहाँ आवश्यकता है, वहाँ पानी" की अवधारणा को बढ़ावा दिया जा सकता है। इससे जल की बचत के साथ-साथ फसल की समान वृद्धि में भी सहायता मिलती है।

रोग एवं कीटों की पहचान

फसल में कीट एवं रोगों का समय पर पता लगाना अच्छी उपज के लिए अत्यंत आवश्यक है। कई बार किसान को रोग का पता तब चलता है जब वह खेत के बड़े हिस्से में फैल चुका होता है। ड्रोन पूरे खेत का



हवाई सर्वेक्षण करके प्रभावित क्षेत्रों की पहचान करने में सहायता कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी खेत में कुछ हिस्सों की फसल का रंग या वृद्धि सामान्य से अलग दिखाई देती है, तो ड्रोन से प्राप्त तस्वीरों के आधार पर उन क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। इसके बाद किसान या कृषि विशेषज्ञ स्थल निरीक्षण करके उचित उपचार की सलाह दे सकता है। इससे पूरे खेत में बिना आवश्यकता के कीटनाशी या कवकनाशी का छिड़काव करने के बजाय लक्षित उपचार संभव हो सकता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

कृषि में उर्वरकों का संतुलित उपयोग उत्पादन और मृदा स्वास्थ्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। खेत में सभी स्थानों पर पोषक तत्वों की उपलब्धता समान नहीं होती। ड्रोन से प्राप्त आंकड़ों को मृदा परीक्षण और फसल की स्थिति के साथ जोड़कर खेत के विभिन्न हिस्सों की आवश्यकता का आकलन किया जा सकता है। इससे सटीक उर्वरक प्रबंधन को बढ़ावा मिल सकता है। भविष्य में ड्रोन, मृदा सेंसर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों के एकीकरण से किसान को यह निर्णय लेने में और अधिक सहायता मिल सकती है कि खेत के किस हिस्से में किस प्रकार के पोषक तत्वों की आवश्यकता है।

फसल की वृद्धि और उपज का अनुमान

ड्रोन द्वारा नियमित अंतराल पर खेत की तस्वीरें लेने से फसल की वृद्धि का रिकॉर्ड तैयार किया जा सकता है। अलग-अलग समय पर प्राप्त तस्वीरों की तुलना करके पौधों की वृद्धि और खेत की स्थिति में होने वाले

बदलावों का आकलन किया जा सकता है। यह जानकारी फसल की संभावित उपज का अनुमान लगाने में भी उपयोगी हो सकती है। इससे किसान को कटाई, भंडारण, परिवहन और बाजार में बिक्री की बेहतर योजना बनाने में सहायता मिल सकती है।

प्राकृतिक एवं टिकाऊ खेती में संभावनाएं

ड्रोन तकनीक का उपयोग केवल आधुनिक कृषि रसायन-आधारित खेती तक सीमित नहीं है। इसे प्राकृतिक खेती और टिकाऊ कृषि में भी उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, खेत की निगरानी, फसल स्वास्थ्य का आकलन, जल प्रबंधन, खरपतवार की पहचान तथा जैविक इनपुट के लक्षित उपयोग में ड्रोन उपयोगी हो सकते हैं। प्राकृतिक खेती में बाहरी इनपुट को कम करना महत्वपूर्ण है। ड्रोन द्वारा फसल की वास्तविक आवश्यकता की पहचान करने से अनावश्यक इनपुट के उपयोग को कम करने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार ड्रोन संसाधन दक्षता और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में उपयोगी तकनीक बन सकता है।

किसानों के लिए चुनौतियाँ

ड्रोन के अनेक लाभ होने के बावजूद इसके उपयोग में कुछ चुनौतियाँ भी हैं। ड्रोन खरीदने और उसके संचालन की प्रारंभिक लागत छोटे किसानों के लिए अधिक हो सकती है। इसके अलावा ड्रोन चलाने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण, बैटरी और रखरखाव की व्यवस्था आवश्यक है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए ड्रोन सेवा केंद्र या कस्टम हायरिंग सेंटर उपयोगी विकल्प हो सकते हैं। किसान स्वयं ड्रोन खरीदने के बजाय आवश्यकता के अनुसार किराये पर ड्रोन सेवा प्राप्त कर सकते हैं। इससे आधुनिक तकनीक छोटे किसानों तक भी पहुँच सकती है।

भविष्य की खेती में ड्रोन

भविष्य में ड्रोन केवल खेत की तस्वीर लेने या छिड़काव करने वाली मशीन नहीं रहेगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, उपग्रह तकनीक, सेंसर और कृषि डेटा के साथ ड्रोन का एकीकरण कृषि निर्णयों को और अधिक सटीक बना सकता है। एक किसान अपने खेत का डिजिटल मानचित्र तैयार कर सकता है, फसल के कमजोर क्षेत्रों की पहचान कर सकता है, रोग और कीटों की प्रारंभिक चेतावनी प्राप्त कर सकता है तथा आवश्यकतानुसार पानी, पोषक तत्व और अन्य कृषि इनपुट का उपयोग कर सकता है। इससे कृषि में कम लागत में अधिक उत्पादन, संसाधनों का बेहतर उपयोग और पर्यावरणीय स्थिरता प्राप्त करने की दिशा में सहायता मिल सकती है।

निष्कर्ष

ड्रोन तकनीक भारतीय कृषि में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। फसल निगरानी, रोग एवं कीट पहचान, सिंचाई प्रबंधन, उर्वरक उपयोग, कीटनाशी छिड़काव और उपज आकलन जैसे अनेक कार्यों में इसका उपयोग कृषि को अधिक सटीक, कुशल और टिकाऊ बना सकता है। हालाँकि, ड्रोन को किसानों तक पहुँचाने के लिए प्रशिक्षण, उचित सेवा व्यवस्था और किरायायती तकनीकी सुविधाओं की आवश्यकता होगी। ड्रोन किसान का विकल्प नहीं, बल्कि किसान के हाथ में एक आधुनिक उपकरण है। यदि इसका वैज्ञानिक और जिम्मेदार तरीके से उपयोग किया जाए, तो यह भारतीय कृषि को पारंपरिक खेती से स्मार्ट और डेटा-आधारित खेती की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।



डॉ. आदित्य, डॉ. जतिंद्र के. साहू ग्रामीण विकास और प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली (आई.आई.टी. दिल्ली)

डॉ. जे.एन. भाटिया कृषि विभाग, श्री गुरु ग्रंथ साहिब विश्वविद्यालय, फतेहगढ़ साहिब, पंजाब।

भारत आज दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा खाद्य उत्पादक देश है, जो फिलहाल चीन के पीछे है। लेकिन भारत की कृषि और खाद्य उत्पादन क्षमता इतनी अपार है कि वह आने वाले वर्षों में दुनिया का नंबर एक खाद्य उत्पादक बन सकता है। भविष्य को देखते हुए, खाद्य और फूड प्रोसेसिंग (खाद्य प्रसंस्करण) क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर निवेश के अभूतपूर्व अवसर उभर रहे हैं। डेयरी, फूड प्रोसेसिंग, पैकेजिंग, फ्रोजन फूड, रखरखाव एवं थर्मो प्रोसेसिंग, फल और सब्जियां, स्पेशलिटी प्रोसेसिंग, मत्स्य पालन, दुग्ध उत्पाद, मीट और पोल्ट्री, डिब्बाबंद भोजन, सॉफ्ट ड्रिंक्स तथा अनाज जैसे विविध उपक्षेत्र तेजी से विस्तार कर रहे हैं। आज स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने के साथ, हेल्दी फूड, ऑर्गेनिक उत्पाद और हेल्थ स्प्लीमेंट्स जैसे नए सेगमेंट भी उपभोक्ताओं के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। हालांकि भारत एक प्रमुख खाद्य उत्पादक देश है, लेकिन वर्तमान में वह अंतर्राष्ट्रीय खाद्य व्यापार में केवल 5% योगदान देता है। यही वह अवसर है जहाँ आने वाले वर्षों में भारत निवेशकों और निर्यातकों के लिए एक विशाल संभावनाओं का समुद्र बन सकता है। नई तकनीकों, अनुसंधान और स्टार्टअप के साथ, भारत के पास खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में वैश्विक नेतृत्व करने का सुनहरा अवसर है। आज उठाए गए कदम भविष्य में भारत को वैश्विक खाद्य नवाचार का केंद्र बना सकते हैं।

भविष्य के भारत में फूड प्रोसेसिंग अवसरों की नई उड़ान-भारत आज दुनिया का सबसे बड़ा गेहूं और धान उत्पादक देश है। इसके अलावा, देश के विभिन्न हिस्सों में नारियल, काजू, अदरक, हल्दी और काली मिर्च जैसी उच्च मूल्य वाली फसलें भी बड़े पैमाने पर उगाई जाती हैं। मूंगफली, फल और सब्जी उत्पादन में भी भारत का स्थान विश्व में दूसरा है। भारत विश्व के कुल फल उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा अकेले प्रदान करता है, और आम व केला उत्पादन में भारत आज भी दुनिया में पहले स्थान पर है। इतनी विशाल कच्चे माल की उपलब्धता के साथ, भारत के फूड प्रोसेसिंग सेक्टर में अपार संभावनाएं मौजूद हैं। सहकारिता आंदोलन और उत्कृष्ट दुग्ध प्रबंधन के चलते भारत आज विश्व का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश बन चुका है। देश में दूध प्रसंस्करण के उच्च स्तर और बढ़ती तकनीकी दक्षता के कारण, इस क्षेत्र में निवेश और नवाचार के लिए व्यापक अवसर हैं। भारत के कुल उपभोक्ता खर्च का लगभग 17 प्रतिशत हिस्सा दूध और उससे बने उत्पादों पर होता है। बढ़ती घरेलू मांग के साथ-साथ वैश्विक बाजारों में भी भारतीय डेयरी उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है, जिससे दुग्ध प्रसंस्करण उद्योग निरंतर विकास कर रहा है। इसी तरह, फल एवं सब्जी प्रसंस्करण क्षेत्र भी जबरदस्त संभावनाएं समेटे हुए है। मीट और पोल्ट्री फार्मिंग के उत्पादों को आधुनिक तकनीकों से प्रोसेस कर अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यात कर भारत अपनी वैश्विक हिस्सेदारी को और भी बढ़ा सकता है। भविष्य को ध्यान में रखते हुए, भारत के विशाल कच्चे माल भंडार का रणनीतिक और वैज्ञानिक तरीके से उपयोग करने की आवश्यकता है। सुनियोजित निवेश, अनुसंधान, स्टार्टअप और आधुनिक तकनीकों के माध्यम से भारत न केवल खाद्य

खाद्य प्रसंस्करण में वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी नवाचार की भूमिका

प्रसंस्करण में आत्मनिर्भर बन सकता है, बल्कि दुनिया का एक अग्रणी और प्रगतिशील खाद्य उत्पादक देश भी बन सकता है। तेजी से बदलती जीवनशैली और उपभोक्ता प्राथमिकताओं के बीच, स्वास्थ्यवर्धक, सुविधाजनक और नवीन खाद्य उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है। यदि भारत इस मांग के अनुरूप उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद तैयार कर सके, तो आने वाले वर्षों में यह देश वैश्विक खाद्य अर्थव्यवस्था में एक निर्णायक भूमिका निभा सकता है।

भविष्य की दृष्टि से फूड प्रोसेसिंग में अपार संभावनाएं- भारत में फूड प्रोसेसिंग उद्योग भविष्य में आर्थिक विकास का एक मुख्य स्तंभ बनने जा रहा है। मौजूदा समय में यह क्षेत्र न केवल कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को मजबूती दे रहा है, बल्कि रोजगार और निर्यात के नए द्वार भी खोल रहा है। आज भारत के घरेलू बाजार में लगभग 1,000 मिलियन उपभोक्ता ऐसे हैं, जिन तक फूड प्रोसेसिंग उत्पादों की प्रभावी पहुंच अभी भी नहीं हो सकती है। वहीं, शहरी एवं बढ़ता मध्य वर्ग – लगभग 350 मिलियन लोगों की बदलती खाद्य आदतें, इस क्षेत्र के लिए एक विशाल बाजार तैयार कर रही हैं। अनुमान है कि जल्द ही उपभोक्ताओं की संख्या में 200 मिलियन की ओर बढ़ोतरी होगी, जो प्रोसेस्ड फूड की मांग को नई ऊंचाइयों तक ले जाएगी। भविष्य में फूड प्रोसेसिंग के सतत विकास के लिए उत्पादन और विकास के बीच के गहरे संबंध को समझना बेहद आवश्यक है। जब तक किसान और प्रोसेसर दोनों फूड प्रोसेसिंग से होने वाले फायदों से पूरी तरह परिचित नहीं होंगे, इस क्षेत्र में व्यापक प्रभाव नहीं दिखेगा। सबसे बड़ी चुनौती है,



उत्पादन की धारणा को सटीक ढंग से लागू करना और इसे अलग-अलग स्थितियों में स्थायी रूप से विकसित करना। विश्व स्तर पर बढ़ती प्रतिस्पर्धा और वैश्वीकरण के इस दौर में भारत को घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में फूड प्रोसेसिंग उद्योग के नए मापदंड स्थापित करने होंगे। उत्पादकता और गुणवत्ता में निरंतर सुधार इस प्रतिस्पर्धा में भारत की स्थिति को सशक्त बनाएगा।

फूड प्रोसेसिंग क्षेत्र भारत सरकार का उद्देश्य-भविष्य की दृष्टि से फूड प्रोसेसिंग क्षेत्र भारत सरकार के लिए एक प्रमुख प्राथमिकता है। इसका उद्देश्य

किसानों की आय को स्थायी रूप से बढ़ाना और उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है। उपभोक्ताओं को स्वाद, पोषण और गुणवत्ता के मामले में विविध विकल्प उपलब्ध कराने के साथ-साथ पारंपरिक खाद्य पदार्थों का पुनरुत्थान भी सुनिश्चित किया जा रहा है। घरेलू और वैश्विक बाजारों में प्रतिस्पर्धा की भावना को बढ़ावा देकर भारतीय प्रक्रिया खाद्य उत्पादों को आकर्षक और विश्वसनीय बनाना लक्ष्य है। खेत से लेकर बाजार तक एकीकृत आपूर्ति श्रृंखला स्थापित करने, वैज्ञानिक आधार पर पारदर्शी मापदंड लागू करने और उद्योग के लिए अनुकूल और सहयोगी नीतियां विकसित करने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। अनुसंधान, नवाचार और स्टार्टअप के सहयोग से फूड प्रोसेसिंग क्षेत्र न केवल कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को मजबूती देगा, बल्कि भारत को वैश्विक खाद्य बाजार में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित करने की दिशा में भी अग्रसर है।



प्रो. दीपक नरवरिया
(B.Sc. कृषि)

Mob. : 8887712163
8982873459

नरवरिया कृषि सेवा केन्द्र

रासायनिक एवं जैविक खाद, हाईब्रीड बीज
कीटनाशक दवाईयाँ, स्पेयर पम्प विक्रेता

इटवा होटल के सामने, पिछोर तिराहा, ग्वालियर रोड, डबरा



☞ **पुष्पेन्द्र यादव** कृषि विस्तार प्रभाग, भाकूअनुप,
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा (नई दिल्ली)

☞ **रिचा यादव** रामा विश्वविद्यालय मंधना, कानपुर

प्रस्तावना: भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ प्रत्येक वर्ष गेहूँ, धान, मक्का, सोयाबीन, कपास, गन्ना, दलहन एवं तिलहन जैसी अनेक फसलों का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। फसल उत्पादन के साथ खेत में पतियाँ, तने, डंठल, भूसा, पराली, फली एवं अन्य जैविक अवशेष भी बड़ी मात्रा में उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः इन्हें फसल अवशेष (Crop Residues) कहा जाता है।

फसल कटाई के बाद इन अवशेषों का उचित प्रबंधन किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। विशेष रूप से धान की पराली को खेत में जलाने की समस्या हर वर्ष चर्चा में रहती है। परंतु वास्तविकता यह है कि फसल अवशेष अपने आप में कोई बेकार पदार्थ नहीं हैं। इनमें कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम तथा अन्य पोषक तत्व मौजूद होते हैं। सही तकनीक से प्रबंधन किया जाए तो यही अवशेष मृदा स्वास्थ्य सुधारने, रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम करने, पशुपालन को बढ़ावा देने, जैविक खाद बनाने और किसान की अतिरिक्त आय का स्रोत बनने में उपयोग किए जा सकते हैं। इसलिए आवश्यकता फसल अवशेष को समस्या मानने की नहीं, बल्कि उसे कृषि संसाधन और संभावित आय-स्रोत के रूप में देखने की है।

फसल अवशेष क्यों महत्वपूर्ण हैं? फसल के पौधे का वह भाग जो कटाई के बाद खेत या खेत के आसपास बच जाता है और जिसका उपयोग खाद्य या बाजार योग्य उत्पाद के रूप में नहीं होता, फसल अवशेष कहलाता है। उदाहरण के लिए धान की पराली, गेहूँ का भूसा, मक्का के डंठल, सोयाबीन एवं दलहन की सूखी पतियाँ तथा कपास के डंठल प्रमुख फसल अवशेष हैं। इन अवशेषों में पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ और पौध पोषक तत्व मौजूद होते हैं। यदि इन्हें खेत में वापस मिलाया जाए तो ये धीरे-धीरे अपघटित होकर मृदा में जैविक कार्बन तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में योगदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, फसल अवशेषों का उपयोग पशु चारा, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, बायोचार्, बायोगैस, ब्रिकेट/पेलेट, मशरूम उत्पादन तथा विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के लिए कच्चे माल के रूप में किया जा सकता है। अर्थात् फसल अवशेष केवल खेत पर बचा हुआ पदार्थ नहीं, बल्कि एक बहुउपयोगी जैविक संसाधन है।

फसल अवशेष जलाना क्यों नहीं है समाधान? कम समय में खेत को अगली फसल के लिए तैयार करने की आवश्यकता के कारण कुछ किसान फसल अवशेषों को जला देते हैं। यह तरीका देखने में आसान और कम लागत वाला लग सकता है, लेकिन इसके दीर्घकालिक नुकसान गंभीर हैं। अवशेष जलाने से वायुमंडल में धुआँ और विभिन्न गैसों एवं सूक्ष्म कण उत्सर्जित होते हैं, जिससे वायु गुणवत्ता प्रभावित होती है। खेत की सतह पर मौजूद जैविक पदार्थ और उपयोगी सूक्ष्मजीव भी प्रभावित हो सकते हैं। इसके अलावा, फसल अवशेषों में मौजूद पोषक तत्वों का एक बड़ा हिस्सा भी नष्ट हो जाता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसान जिस जैविक संसाधन को खेत में वापस डालकर मिट्टी की उर्वरता बढ़ा सकता है, उसे जलाकर नष्ट कर देता है। इसलिए समाधान केवल "पाराली न जलाना" कहने में नहीं है। वास्तविक समाधान यह है कि

फसल अवशेष: समस्या नहीं, संसाधन है-खेत से किसान की आय तक प्रबंधन की नई राह

किसान को ऐसे तकनीकी और आर्थिक विकल्प उपलब्ध कराए जाएँ जिनसे अवशेषों का उपयोग करना उसके लिए व्यावहारिक और लाभकारी हो।

खेत में ही फसल अवशेषों का प्रबंधन

- फसल अवशेष प्रबंधन का पहला और सबसे सरल विकल्प है-अवशेषों को खेत में ही उपयोग करना। इसके लिए उपलब्ध फसल एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न कृषि यंत्रों और तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है।
- धान की कटाई के बाद हैप्पी सीडर, सुपर सीडर, स्ट्रॉ मैनेजमेंट सिस्टम तथा अन्य उपयुक्त यंत्रों की सहायता से अवशेषों को खेत में रखते हुए या मिट्टी में मिलाते हुए अगली फसल की बुवाई की जा सकती है।
- इसी प्रकार श्रेडर, मल्टचर, रोटोवेटर आदि यंत्रों की सहायता से बड़े अवशेषों को छोटे टुकड़ों में काटकर उनका अपघटन तेज किया जा सकता है।
- जहाँ सिंचाई एवं फसल प्रणाली अनुकूल हो, वहाँ अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर इन-सिचु मैनेजमेंट अपनाया जा सकता है। इससे खेत में जैविक पदार्थ की वापसी होती है और मृदा संरचना एवं नमी संरक्षण में मदद मिल सकती है।

फसल अवशेष से कम्पोस्ट और जैविक खाद- फसल अवशेषों को कम्पोस्ट में बदलना किसानों के लिए एक सरल एवं उपयोगी विकल्प है। खेत से प्राप्त सूखे अवशेषों को गोबर, नमी और उचित जैविक अपघटक के साथ मिलाकर कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। वर्मी-कम्पोस्ट के माध्यम से भी फसल अवशेषों का मूल्यवर्धन किया जा सकता है। इससे एक ओर खेत की जैविक सामग्री का पुनर्चक्रण होता है, वहीं दूसरी ओर तैयार खाद का उपयोग स्वयं के खेत में या स्थानीय बाजार में बिक्री के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार फसल अवशेष कचरे से कृषि-इनपुट में परिवर्तित हो जाता है।

पशुपालन से जुड़ा महत्वपूर्ण संसाधन- फसल अवशेषों का एक बड़ा हिस्सा पशु चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है। गेहूँ का भूसा, धान का भूसा तथा विभिन्न फसलों के सूखे अवशेष पशुधन आधारित कृषि प्रणालियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालाँकि सभी फसल अवशेष सीधे पशु चारे के रूप में उपयुक्त नहीं होते। इसलिए उपयोग से पहले उनकी पोषण गुणवत्ता, पाचन क्षमता और सुरक्षा का ध्यान रखना आवश्यक है। उचित प्रसंस्करण एवं पोषण पूरक के साथ कुछ अवशेषों की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। इससे फसल उत्पादन और पशुपालन के बीच एक मजबूत कृषि-पोषक चक्र (Farm Nutrient Cycle) विकसित किया जा सकता है।

फसल अवशेष से ऊर्जा उत्पादन- फसल अवशेषों का उपयोग नवीकरणीय ऊर्जा के उत्पादन में भी किया जा सकता है। धान की पराली, मक्का के डंठल, कपास के अवशेष और अन्य सूखे जैविक पदार्थों से बायोगैस, बायो-CNG, ब्रिकेट और पेलेट जैसे ऊर्जा उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। यदि किसी क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में अवशेष उपलब्ध हों, तो किसान समूह, किसान उत्पादक संगठन (FPO), सहकारी संस्था या स्थानीय उद्यमी

मिलकर अवशेष संग्रहण एवं प्रसंस्करण इकाई स्थापित कर सकते हैं। इस मॉडल में किसान केवल फसल बेचने वाला व्यक्ति नहीं रहता, बल्कि वह कृषि अवशेषों की मूल्य श्रृंखला (Value Chain) का हिस्सा बन जाता है।

फसल अवशेष से किसान की अतिरिक्त आय- फसल अवशेष प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसका आर्थिक पक्ष है। यदि अवशेषों को व्यवस्थित रूप से एकत्रित करके उचित स्थान तक पहुँचाया जाए, तो वे विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चा माल बन सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र में धान की पराली को एकत्र करके बायोमास आधारित ऊर्जा संयंत्र तक पहुँचाया जा सकता है। इसी तरह मक्का के डंठल या अन्य सूखे अवशेषों का उपयोग पेलेट अथवा ब्रिकेट निर्माण में किया जा सकता है। इसमें कस्टम हायरिंग सेंटर, FPO, SHG, सहकारी समिति और ग्रामीण उद्यमी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे किसानों से अवशेष एकत्र करने, बेलिंग, परिवहन, भंडारण और प्राथमिक प्रसंस्करण की व्यवस्था कर सकते हैं।

इससे ग्रामीण क्षेत्रों में केवल किसान की आय ही नहीं बढ़ती, बल्कि स्थानीय रोजगार के नए अवसर भी पैदा होते हैं।

फसल अवशेष प्रबंधन में मशीनरी की भूमिका

- बड़े पैमाने पर फसल अवशेष प्रबंधन के लिए उचित कृषि यंत्रों की उपलब्धता आवश्यक है। लेकिन प्रत्येक किसान के लिए महंगे यंत्र खरीदना आर्थिक रूप से संभव नहीं होता।
- इस स्थिति में कस्टम हायरिंग सेंटर और किसान समूह आधारित मशीनरी उपयोग प्रभावी विकल्प हो सकते हैं। किसान आवश्यकता के अनुसार मशीन किराए पर लेकर अवशेष प्रबंधन कर सकते हैं।
- क्षेत्र विशेष की फसल प्रणाली के अनुसार स्ट्रॉ रीपर, बेलर, श्रेडर, मल्टचर, हैप्पी सीडर, सुपर सीडर तथा अन्य उपयुक्त यंत्रों का चयन किया जाना चाहिए।
- यहाँ केवल मशीन उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है। किसानों को मशीन के सही संचालन, समय पर उपलब्धता और आर्थिक उपयोग का प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

किसान समूह और FPO बन सकते हैं बदलाव के केंद्र- एक किसान के खेत से निकलने वाले अवशेष की मात्रा सीमित हो सकती है, लेकिन यदि गाँव या क्षेत्र के अनेक किसान मिलकर अवशेष एकत्र करते हैं तो पर्याप्त मात्रा में बायोमास उपलब्ध हो सकता है। यहाँ पर FPO, सहकारी समितियाँ और किसान समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

एक संभावित मॉडल इस प्रकार हो सकता है- किसान → अवशेष संग्रहण → बेलिंग/प्रसंस्करण → समूह/ FPO → परिवहन → उद्योग/ऊर्जा इकाई → उत्पाद एवं आय। इस प्रकार फसल अवशेष प्रबंधन को केवल पर्यावरणीय मुद्दा न मानकर ग्रामीण व्यवसाय मॉडल के रूप में विकसित किया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी: फसल अवशेषों को खेत में वापस मिलाने का एक बड़ा लाभ मृदा में जैविक पदार्थ की वापसी है। लंबे समय में जैविक पदार्थ मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधियों को प्रभावित करता है।



डॉ. राहुल सिंह यादव, डॉ. पुष्पा

डॉ. सांतना दास पशुधन उत्पादन प्रबंधन

विभाग भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय डेयरी
अनुसंधान संस्थान, करनाल, (हरियाणा)

डेयरी पशुओं में ट्रांजिशन पीरियड: अच्छी देखभाल से बढ़े दूध उत्पादन और घटे बीमारी का खतरा

भूमिका-डेयरी पशु विशेषकर गाय और भैंस में ब्याने के आसपास का समय (Transition Period) बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस समय पशु गर्भावस्था की अंतिम अवस्था से दूध उत्पादन की अवस्था में प्रवेश करता है। इसी अवधि में पशु के शरीर में ऊर्जा, कैल्शियम, प्रोटीन और अन्य पोषक तत्वों की मांग तेजी से बदलती है। सही प्रबंधन न होने पर दूध ज्वर, कीटोसिस, थनैला, गर्भाशय संक्रमण, भूख कम होना और अत्यधिक वजन कम होने जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

ट्रांजिशन पीरियड क्या है?-व्यावहारिक रूप से ट्रांजिशन पीरियड को ब्याने से लगभग 60 दिन पहले से लेकर ब्याने के 30 दिन बाद तक माना जा सकता है। इसमें सूखी अवस्था, ब्याने से पहले की अंतिम अवस्था और ब्याने के बाद की शुरुआती दुग्धावस्था शामिल होती है। परंपरागत रूप से ब्याने से लगभग 3 सप्ताह पहले और 3 सप्ताह बाद को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है।

याद रखें- ब्याने से पहले के 3 सप्ताह + ब्याने के बाद के 3 सप्ताह = सबसे संवेदनशील समय।

1. सूखा करने के बाद क्या ध्यान रखें?-दूध बंद करने के बाद पशु को केवल आराम करने वाला पशु न समझें। इसी समय अगले ब्याने और अगली दुग्धावस्था की तैयारी होती है।

- पशु को साफ, सूखी और आरामदायक जगह पर रखें।
- बहुत अधिक दाना खिलाकर पशु को मोटा न होने दें।
- शरीर की स्थिति यानी Body Condition Score (BCS) पर नजर रखें।
- पर्याप्त अच्छी गुणवत्ता का चारा उपलब्ध कराएं।
- स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी हर समय उपलब्ध रखें।
- टीकाकरण, कृमिनियंत्रण और थन स्वास्थ्य का ध्यान पशु चिकित्सक की सलाह से करें।
- बहुत लंबे या बहुत छोटे शुष्क अवधि (dry period) से बचें; सामान्यतः अगली दुग्धावस्था के लिए लगभग 6-8 सप्ताह का शुष्क अवधि उपयोगी माना जाता है।

बहुत मोटा पशु क्यों नुकसानदायक है?

ब्याने के बाद अचानक दूध उत्पादन बढ़ने पर पशु की ऊर्जा की आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है, जबकि वह उतनी मात्रा में चारा नहीं खा पाता। इससे शरीर की जमा वसा टूटने लगती है और ऋणात्मक ऊर्जा संतुलन (negative energy balance) बढ़ सकता है। इससे कीटोसिस और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का खतरा बढ़ सकता है।

2. ब्याने से 3 सप्ताह पहले विशेष सावधानी- यह समय क्लोज-अप अवधि कहलाता है और पशु को आने वाली दुग्धावस्था के लिए तैयार करने का समय है।

आहार में अचानक बदलाव न करें- ब्याने के बाद पशु को अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा वाला दुग्ध उत्पादन वाला आहार चाहिए। इसलिए दाने की मात्रा और आहार की प्रकृति में बदलाव धीरे-धीरे करना चाहिए, ताकि रूमेन (बड़ा पेट) के सूक्ष्मजीव नए आहार के अनुकूल हो सकें।

कैल्शियम का विशेष महत्व- ब्याने के समय और उसके तुरंत बाद दूध तथा खीस (colostrum) के निर्माण के लिए कैल्शियम की आवश्यकता अचानक बढ़ जाती है। यदि पशु का कैल्शियम संतुलन ठीक नहीं है, तो दूध ज्वर (Milk Fever/हाइपोकैल्सीमिया) का खतरा बढ़ सकता है। किसी भी कैल्शियम/खनिज मिश्रण या विशेष सूखी अवस्था का आहार की मात्रा, पशु की नस्ल, आहार और फार्म की परिस्थितियों के अनुसार पशु चिकित्सक/पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह से तय करें।

3. ब्याने के बाद के पहले 3 सप्ताह सबसे महत्वपूर्ण- ब्याने के बाद दूध उत्पादन तेजी से बढ़ता है, लेकिन पशु का चारा खाने की क्षमता उतनी तेजी से नहीं बढ़ती। परिणामस्वरूप पशु ऊर्जा की कमी (Negative Energy Balance) में जा सकता है। इस अवधि में चारा सेवन बढ़ाना ट्रांजिशन पीरियड का प्रमुख लक्ष्य है।

किसान क्या करें?

* **स्वादिष्ट और अच्छी गुणवत्ता का चारा दें** - पशु को ऐसा आहार दें जिसे वह आसानी से और पर्याप्त मात्रा में खाए।

* **चारा हमेशा उपलब्ध रखें** - बार-बार चारा समाप्त होने की स्थिति न आने दें।

* **दाने में अचानक वृद्धि न करें** - दूध बढ़ने के साथ दाना को धीरे-धीरे समायोजित करें।

* **पानी की कमी न होने दें** - ब्याने के बाद पानी की पर्याप्त उपलब्धता चारा सेवन और दूध उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

* **पशु को आराम दें** - भीड़, फिसलन, अत्यधिक गर्मी और अनावश्यक स्थान परिवर्तन से बचाएं।

* **प्रतिदिन पशु को देखें** - पहले दो सप्ताह में भूख, गोबर, जुगाली, चाल-ढाल, दूध और शरीर के व्यवहार में बदलाव पर विशेष नजर रखें।

4. किन बीमारियों का खतरा अधिक रहता है?

ट्रांजिशन अवधि में निम्न समस्याओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

समस्या	किसान को क्या दिखाई दे सकता है?
दूध ज्वर	कमजोरी, उदरे में परेशानी या पशु का बैठ/लेट जाना
कीटोसिस	भूख कम होना, दूध में कमी, वजन घटना
थनैला (Mastitis)	थन में सूजन/गर्मी, दूध में बदलाव
गर्भाशय संक्रमण	असामान्य या दुर्गन्धयुक्त साव, बुखार
अपरा न गिरना	ब्याने के बाद placenta बाहर न निकलना
Displaced abomasum	भूख में कमी, दूध उत्पादन में गिरावट
अत्यधिक वजन घटना	शरीर दुबला होना और उत्पादन/प्रजनन पर असर

इनमें से कई समस्याओं का जोखिम कम आहार सेवन और खराब संक्रमण कालीन प्रबंधन से बढ़ सकता है।

5. ब्याने के समय स्वच्छता रखें

* ब्याने की जगह साफ, सूखी और संक्रमण से मुक्त होनी चाहिए।

* गंदे फर्श पर ब्याने से बचाएं। * साफ बिछवन रखें।

* ब्याने में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें। * कठिन प्रसव होने पर प्रशिक्षित व्यक्ति/पशु चिकित्सक की सहायता लें।

* ब्याने के बाद पशु की स्थिति पर निगरानी रखें।

6. खीस (Colostrum) को न भूलें- ब्याने के तुरंत बाद प्राप्त खीस नवजात बछड़े के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें रोगों से बचाने वाले प्रतिरक्षी प्रोटीन सहित ऐसे घटक होते हैं जो बछड़े को प्रारंभिक संक्रमणों से बचाने में मदद करते हैं। जन्म के बाद खीस पिलाने में अनावश्यक देरी नहीं करनी चाहिए। इसलिए अच्छी संक्रमण कालीन गाय/भैंस प्रबंधन का लाभ केवल गाय/भैंस को ही नहीं, बल्कि उसके बछड़े को भी मिलता है।

प्रो. बालिक दास राय

बन्टी राय

98276-11495

88715-18885

मै. माँ उर्वरक केन्द्र



अमित राय

रसायनिक एवं
जैविक खाद बीज
एवं दवाई के विक्रेता



पता: भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)



डॉ. कृशानु वरिष्ठ शोध अध्येता, आईसीएआर-केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान केन्द्र, करनाल (132001), हरियाणा

श्वेता यादव शोध छात्रा, आईसीएआर-आईसीएआर-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (132001), हरियाणा

डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह (सहायक प्राध्यापक) ITM यूनिवर्सिटी मुरादाबाद (उ.प्र.)

डॉ. स्वर्णिमा तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ

डॉ. शची तिवारी विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ

पराली जलाने के नुकसान - पराली जलाने से पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण से आंखों में जलन से लेकर श्वसन एवं हृदय संबंधी रोगों के प्रभाव में बढ़ोतरी देखी गई है। दिल्ली में उत्पन्न धुंध की समस्या से वहां के लोगों की औसत आयु में 6 वर्ष की कमी दर्ज की गई है। इससे उत्पन्न वायु प्रदूषण का प्रभाव हमारे अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। वायु प्रदूषण के कारण दिल्ली में पर्यटकों से आमद में 25-30 त्र की कमी आई है।

1 टन फसल अवशेष जलाने से उत्सर्जित होता है-

Particulate matter -3 kg, कार्बन डाइऑक्साइड-1460 kg

कार्बन मोनोऑक्साइड-60 kg, सल्फर डाइऑक्साइड-2 kg, नाइट्रस ऑक्साइड-3.8 kg, मीथेन- 2.7 kg, राख-199 kg

- फसल अवशेष जलाने से हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है। जो हमारे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के लिए नुसानदायक होता है। दिल्ली एनसीआर में Oct-Nov माह में धुंध की समस्या पराली जलाने से संबंधित है।
- फसल अवशेष जलाने से एरोसॉल के कण निकलते हैं, जो हवा को प्रदूषित करता है।
- मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को नुकसान पहुंचाता है। मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है।
- फसल अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना पत्तियों में संचित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।
- लाभदायक मित्र कीट जल कर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण में विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पशुओं के चारे की व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है
- फसल अवशेषों को जलाने से मृदा ताप में बढ़ोतरी होती है, जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे मृदा के तापमान में 42° तक बढ़ोतरी होती है, जो मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को 2.5 सेंटीमीटर की गहराई तक विस्थापित कर देता है या मार देता है।
- फसल अवशेष जलाने पर अगल बगल के खेतों में आग लगने की संभावना एवं खड़ी फसल अथवा आबादी में अग्नि कांड होने की संभावना बनी रहती है।

फसल अवशेषों के उपयोग - फसल अवशेष को जलाने के बजाय किसान नई विकल्प अपना सकते हैं। इसके अनेक उपयोग हैं, फसल अवशेष किसानों के लिए कई प्रकार से लाभकारी है-

1 टन फसल अवशेष खेत में मिलाने से प्राप्त पोषक तत्व

फसल अवशेष प्रबंधन : पर्यावरण संरक्षण, उपयोग एवं सतत कृषि की दिशा में एक प्रभावी पहल



नाइट्रोजन - 10-15 kg, पोटाश - 30-40 kg

सल्फर - 5-7 kg, ऑर्गेनिक कार्बन - 600-800 kg

- चोंपर द्वारा फसल अवशेष को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के बाद बायो वेस्ट डी कंपोजर का छिड़काव करके तथा डिस्क प्लाऊ से गहरी जुताई करके बेहतरीन खाद में बदल सकते हैं।
- मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। पराली में पाए जाने वाले नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, सल्फर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते हैं, जिससे जिससे खेत में उर्वरकों की आवश्यकता कम पड़ती है। अतः उत्पादन लागत में कमी आती है।
- फसल अवशेष को खेत में ही छोड़ देने से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे भूमिगत जल स्तर में सुधार होता है।
- इसका उपयोग पशुओं के चारे के रूप में, बिछाईने के रूप में एवं छप्पर बनाने में किया जाता है।
- इसका उपयोग कंपोस्ट खाद बनाने में किया जाता है।
- पुआल का उपयोग सजावटी सामान बनाने में किया जाता है, जो एक अतिरिक्त आय के स्रोत के रूप में सहायक होता है।
- इससे तैयार भूसे का उपयोग मशरूम उत्पादन में किया जाता है।
- पदार्थों की पैकेजिंग में फसल अवशेष का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग कागज उद्योग, बायोमास आधारित पावर प्लांट जैव एथेनॉल उत्पादन इत्यादि में किया जाता है।

पराली प्रबंधन का रोहतास मॉडल - बिहार कृषि विश्वविद्यालय पराली प्रबंधन का यह मॉडल बिहार के रोहतास जिले में अपनाई जा रही है। इसके तहत बेलर मशीन का प्रयोग करके पराली का प्रबंधन किया जा रहा है।

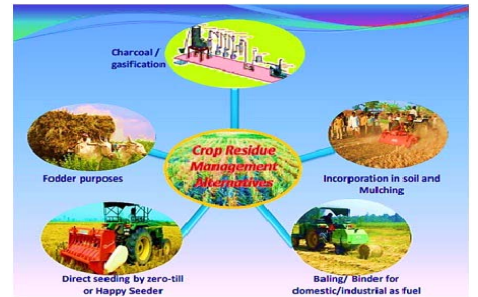
- बेलर खेतों में पड़े धान के बचे अवशेष यानी पराली का गट्टर तैयार करती है। इसका वजन 25 किलो से लेकर 40 किलो तक होता है। एक बोधा धान के खेत से लगभग 10 से 12 क्विंटल पराली निकलती है।

- 1 एकड़ क्षेत्र में लगभग 1800 रुपए राउंड बेलर मशीन चलाने का खर्च आता है एवं 13 से 16 क्विंटल पुआल इकट्ठा होता है, इसे रु. 2 प्रति किलो की दर से बेचने पर रु. 2600 से रु. 3200 तक लाभ कमाया जा सकता है।

- इकट्ठा किए गए पराली के बंडलों को पशु चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। बरसात के महीने तक अगर इसे सुरक्षित रखा जाए तो 5000 से 6000 रु. प्रति क्विंटल पशु चारा बेचा जा सकता है। इसे किसानों की आमदनी भी बढ़ेगी और पराली जलाए जाने वाले प्रदूषण से भी निजात मिलेगी।

आधुनिक मशीनों से फसल अवशेष प्रबंधन

आधुनिक मशीनें फसल की कटाई एवं अवशेषों को इकट्ठा करने का काम आसान कर देती हैं।



- **हैप्पी सीडर मशीन**-खेत में फसलों के अवशेष होने के बावजूद इससे फसलों की बुवाई सीधी लाइन में की जा सकती है।
- **सुपर एक्स्ट्रा मैनेजमेंट सिस्टम कंबाइन हार्वेस्टर** के साथ जोड़कर पराली को बारीक काटकर मिट्टी पर फैलाया जाता है।
- **बेलर**- यह फसल अवशेषों का गट्टर बनाने का कार्य करती है।
- **चोंपर, मल्टचर**-फसल अवशेषों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने का काम करती है।

भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के तहत किसानों को फसल अवशेष प्रबंधन की मशीनें किफायती दाम पर उपलब्ध करवा रही है। विभिन्न योजनाओं के तहत सरकार इन मशीनों पर 50-80% तक अनुदान दे रही है। किसान इन मशीनों से संबंधित जानकारी के लिए टोल फ्री नंबर 1800 180 2117 अथवा जिला कृषि उप सहायक या कृषि अभियंता से संपर्क कर सकते हैं।

पूसा डी कंपोजर- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) द्वारा एक ऐसा समाधान खोजा गया है, जिससे बिना खर्च के पराली को खाद के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। पूसा डी कंपोजर एक बायो एंजाइम है, जिसका छिड़काव करने पर फसल अवशेष 20 से 25 दिनों में खाद में बदल जाते हैं, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है।

पराली जलाए जाने पर जुमाने का प्रावधान- यदि कोई किसान अपने खेत में पराली जलाता है, तो राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (NGT) के अनुसार उसे 6 साल की सजा या रु. 15000 तक का जुर्माना देना पड़ सकता है।

- 2 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर -2500 रु. जुर्माना
- 2-5 एकड़ में फसल अवशेष जलाने पर -5000 रु. जुर्माना
- 5 एकड़ से अधिक में फसल अवशेष जलाने पर -15000 रु. जुर्माना



अंकुर चौधरी, राजबीर सिंह खेड़वाल

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि

विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

गेहूँ में खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार क्यों हानिकारक हैं?

खरपतवार फसल के साथ प्रकाश, नमी, पोषक तत्व एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इनके कारण फसल की वृद्धि, उपज तथा उपज की गुणवत्ता प्रभावित होती है। कुछ खरपतवार रोग एवं कीटों के आश्रय स्थल भी बनते हैं और खेत में बीज के माध्यम से तेजी से फैलते हैं।

खरपतवार की अधिक प्रतिस्पर्धा के प्रमुख कारण

- खरपतवारों के बीजों का शीघ्र अंकुरण तथा प्रारंभिक अवस्था में तेज वृद्धि।
- खरपतवारों की जड़ें अधिक गहराई तक जाकर नमी व पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं।
- कई खरपतवारों के बीज लंबे समय तक मिट्टी में जीवित रहते हैं तथा अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होते हैं।
- कुछ खरपतवारों के बीज आकार/रंग में फसल के बीज जैसे होते हैं, जिससे बीज की सफाई कठिन होती है।
- सिंचाई, वर्षा, जल-निकास, कृषि यंत्र, पशु, मनुष्य तथा बिना साफ किए फसल बीजों से खरपतवार फैलते हैं।
- लगातार एक ही खरपतवारनाशी के प्रयोग से खरपतवारों में प्रतिरोधकता विकसित होने का खतरा।

फसल को खरपतवार रहित रखने की महत्वपूर्ण अवधि

वार्षिक फसलों में खरपतवारों को बुवाई के लगभग 15-30 दिन के भीतर नियंत्रित करना आवश्यक है। यदि इस अवधि में खरपतवार नियंत्रित कर दिए जाएँ तो उपज पर उनका प्रभाव काफी कम किया जा सकता है।

फसल-विशेष समय

- गेहूँ- पहली सिंचाई लगभग 21 दिन बाद करें; सामान्यतः 30-35 दिन के भीतर खरपतवार नियंत्रण पूरा करें।

खरपतवारों से होने वाली प्रमुख हानियाँ

- * मिट्टी की नमी व पोषक तत्वों का उपयोग करके फसल की वृद्धि एवं उपज घटाते हैं।
- * अधिक खरपतवार होने पर फसल की उपज में 5-90% तक कमी हो सकती है।
- * गेहूँ की वृद्धि एवं कल्ले बनने की क्षमता में कमी।
- * दानों की संख्या एवं वजन में कमी तथा उपज में गिरावट।
- * कुछ खरपतवार फसल की गुणवत्ता घटाते हैं और बाजार मूल्य प्रभावित करते हैं।
- * खरपतवार रोग एवं कीटों के वैकल्पिक आश्रय स्थल बन सकते हैं।
- * सिंचाई नालियों में रुकावट डालकर पानी के बहाव को प्रभावित करते हैं।
- * पशुओं द्वारा खाए गए कुछ खरपतवार दूध की गुणवत्ता/स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं।

प्रमुख खरपतवार- मंडूसी/गुल्ली-डंडा, बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, जंगली जई, मटरी घास आदि। इनमें गुल्ली-डंडा (मंडूसी) गेहूँ का सबसे प्रमुख संकीर्ण पत्ती वाला खरपतवार है, जबकि बथुआ, कृष्णनील एवं हिरनखुरी प्रमुख चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार हैं।

खरपतवार प्रबंधन के उपाय

1. रोकथाम एवं स्वच्छता

- * स्वच्छ एवं प्रमाणित खरपतवार-मुक्त बीज का प्रयोग करें।
- * कृषि यंत्रों को एक खेत से दूसरे खेत में ले जाने से पहले अच्छी तरह साफ करें।
- * सिंचाई नालियों एवं मेड़ों पर ओ खरपतवारों को समय पर नष्ट करें, ताकि उनके बीज खेत में न पहुँचें।
- * पशुओं को खरपतवार-मुक्त चारा दें तथा खेत में खरपतवारों का फैलाव रोकें।
- * खेत में अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर/खाद का ही प्रयोग करें।

2. यांत्रिक/हाथ से नियंत्रण-छोटे खेतों में खरपतवारों को चून-चुनकर हाथ से

निकालना प्रभावी उपाय है। फसल बोने के बाद निराई-गुड़ाई समय पर करें। हाथ से निराई के साथ भूमि को खुला छोड़ने से बचें, ताकि नए खरपतवारों के उगने एवं बीज बनने की संभावना कम हो।

3. फसल एवं खेत प्रबंधन * फसल की शुरुआती अवस्था में खेत को खरपतवार रहित रखें। * उचित फसल घनत्व, समय पर सिंचाई तथा संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन अपनाएँ। * जहाँ संभव हो, फसल चक्र अपनाएँ; इससे एक ही प्रकार के खरपतवारों का लगातार दबाव कम किया जा सकता है।

4. रासायनिक नियंत्रण

खरपतवारनाशी	सक्रिय तत्व (ग्रा/हे)	व्यावसायिक मात्रा ग्राम प्रति एकड़	प्रयोग का समय	खरपतवार प्रकार
पेटीमेथालिन 30% ईसी	1000-1500	1300-2000	अंकुरण से पूर्व	मिश्रित खरपतवारों हेतु
प्राइमेटालफेन 85% डब्ल्यू.जी	1275	60	अंकुरण से पूर्व	संकीर्ण पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
प्राइमेटालफेन 85 डब्ल्यू.जी+पेटीमेथालिन 30 ईसी	1275 + 1000	60+1300	अंकुरण से पूर्व	मिश्रित खरपतवारों हेतु
फ्लिप्रिडिन	50	400	बुवाई के 30-35 दिन बाद	संकीर्ण पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
सल्फोसलफूरिन 75% + मैटसलफूरिन 5%	30+2	16	बुवाई के 30-35 दिन बाद	मिश्रित खरपतवारों के लिए
मेटसलफूरिन मिथाइल 20% डब्ल्यू.जी	4	8	बुवाई के 30-35 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
कार्बोथेनाज़ोन-एलिल 40 डब्ल्यू.जी	20	20	बुवाई के 30-35 दिन बाद	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों हेतु
सल्फोसलफूरिन 75% डब्ल्यू.जी	25	13	बुवाई के 30-35 दिन बाद	मिश्रित खरपतवारों हेतु
मेटेथ्युज़िन 42% + क्लोथिनाज़ोन-प्रोपेनिल 12% डब्ल्यू.जी	270	200	बुवाई के 30-35 दिन बाद	मिश्रित खरपतवारों हेतु



5. रासायनिक खरपतवार नियंत्रण में सावधानियाँ

- * खरपतवारनाशी का चयन फसल, खरपतवार की अवस्था तथा खेत की स्थिति के अनुसार करें।
 - * लेबल पर दी गई मात्रा और प्रयोग का समय ही अपनाएँ; अधिक मात्रा का प्रयोग न करें।
 - * समान प्रभाव वाले खरपतवारनाशी का बार-बार प्रयोग करने के बजाय आवश्यकतानुसार अलग-विध वाले विकल्प अपनाएँ।
 - * स्प्रे के समय उचित पानी की मात्रा, समान छिड़काव तथा फसल की अवस्था का ध्यान रखें।
 - * खरपतवारनाशी का प्रयोग करते समय सुरक्षात्मक उपकरणों का उपयोग करें।
 - * खरपतवारनाशी की व्यावसायिक मात्रा उत्पाद की सांद्रता के अनुसार निर्धारित करें और वर्तमान लेबल/अनुशंसा का पालन करें।
- खरपतवार नियंत्रण का सबसे अच्छा तरीका केवल एक उपाय पर निर्भर रहना नहीं, बल्कि रोकथाम, समय पर निराई-गुड़ाई, उचित फसल प्रबंधन और आवश्यकता के अनुसार रासायनिक नियंत्रण का समन्वित उपयोग है। खरपतवारों को बीज बनने से पहले नियंत्रित करना विशेष रूप से आवश्यक है।



डॉ. सुनील कुमार मंडल सहायक प्राध्यापक,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर- 847403 (बिहार)

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय,
पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

बिहार में मखाना की खेती देश के कुल उत्पादन का 85-90 प्रतिशत योगदान रखता है, लेकिन यह मुख्य रूप से पारंपरिक तरीकों (तालाबों एवं जलाशयों में), श्रम-गहन क्रियाओं और सीमित आधुनिकीकरण जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। सामाधान के तौर पर बीज श्रेणीकरण, आधुनिक खेत प्रणाली, मशीनीकरण और उच्च उपज क्षमता वाली किस्मों (स्वर्ण वैदेही) का उपयोग किया जा रहा है।

बिहार में मखाना खेती की प्रमुख चुनौतियां

- **पारंपरिक खेती और उच्च श्रम लागत:** मखाना उत्पादन अत्यधिक श्रम-गहन (अधिक मेहनत वाला) है। इसमें कटाई और प्रसंस्करण के लिए बहुत अधिक शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है।
- **मशीनीकरण की कमी:** पारंपरिक तरीके से कटाई और प्रसंस्करण के कारण उत्पादकता मूल्य कम रहती है।
- **छोटे दानों (बीजों) की अधिकता:** बीज की गुणवत्ता खराब होने के कारण मखाना के बीजों का आकार छोटा रह जाता है, जिससे किसानों को कम कीमत मिलती है, जबकि मेहनत बराबर लगती है।
- **स्वास्थ्य संबंधी जोखिम:** मखाना फसल की कटाई के दौरान किसान और श्रमिक लगातार पानी में काम करने के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जूझते हैं।
- **मध्यस्थों का वर्जस्व:** सीधे बाजार तक पहुँच न होने के कारण किसानों को अपनी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता है।
- **जलवायु संवेदनशीलता:** असमय वर्षा, बाढ़ या सूखे से प्रभावित होने के कारण फसल खराब होने का जोखिम रहता है।

मखाना खेती में सुधार के उपाय

- **बीज की अच्छी गुणवत्ता और उन्नत किस्में:** मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा के द्वारा विकसित उन्नत बीजों (जैसे स्वर्ण वैदेही) का उपयोग करना चाहिए, जिससे बीजों का आकार समान और बड़ा होने के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके।

आधुनिक मशीनीकरण

प्रसंस्करण (मखाना भूने और बीज निकालने वाली) आधुनिक मशीनों का उपयोग बढ़ाना चाहिए।

बिहार में मखाना खेती की चुनौतियां और सामाधान



एकीकृत खेती

मखाना की खेती के साथ मछली पालन को अपनाएँ, जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त हो सके।

आधुनिक खेत प्रणाली में मखाना की खेती

इस आधुनिक पद्धति के अंतर्गत मखाना की खेती करने से खेतों की कम गहराई (1.0-2.0 फीट) कम होने के कारण फसल की कटाई आसानी से कम समय में और न्यूनतम श्रम लागत के साथ साधारण व्यक्ति भी कर सकता है, जिससे स्वास्थ्य संबंधी जोखिम की समस्याएँ नहीं आती हैं।

सहकारी समितियां

एफपीओं या किसान सहकारी समितियां बनाकर विचौलियों को खत्म करके बेहतर

विपणन करना चाहिए, जिससे मखाना का उचित बाजार मूल्य मिल सके।

प्रशिक्षण और सरकारी सहायता

बिहार सरकार की विशेष योजनाओं (जैसे मखाना विकास योजना) के तहत मिलने वाली सब्सिडी और प्रशिक्षण का लाभ प्राप्त करना चाहिए।

गुणवत्ता का नियंत्रण

मखाना की जीआई टैग मिलने के बाद इसकी ग्रेडिंग और पैकेजिंग पर ध्यान देना चाहिए, ताकि अच्छी कीमत मिल सके। इस प्रकार मखाना क्षेत्र में इन सुधारों को अपनाने से न केवल उत्पादन बढ़ेगा, बल्कि किसानों के आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि होगी।

॥ जय श्री कामतानाथ जी ॥

9826521828
700086811

मै. शीतला खाद बीज भण्डार

हमारे यहाँ खाद, बीज एवं सब्जी के बीज, कीटनाशक दवाईयाँ उचित रेट पर मिलती है।

सुशील पचौरी
(शुक्लहारी वाले)

पता- पिछोर तिराहा, ग्वालियर-झांसी रोड, डबरा जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
Email: susheelpachoori815@gmail.com



डॉ. मो. इरफान अहमद अंसारी सह-प्राध्यापक सह वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रधान अन्वेषक, अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (फसलोपरान्त अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी), कृषि अभियंत्रण विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची-834006, झारखण्ड

इंजी. वंदना चौबे एवं डॉ. छाया

सहायक प्राध्यापक सह कनिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

परिचय- झारखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि एवं कृषि-आधारित गतिविधियाँ आजीविका का प्रमुख आधार हैं। ग्रामीण महिलाएँ कृषि कार्यों के साथ-साथ खाद्य प्रसंस्करण, खाद्य संरक्षण, घरेलू उत्पादन निर्माण तथा स्थानीय बाजारों में उनकी बिक्री जैसी गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन पारंपरिक गतिविधियों को वैज्ञानिक तकनीक, उपयुक्त मशीनरी, बेहतर पैकेजिंग तथा संगठित बाजार से जोड़कर ग्रामीण महिलाओं के लिए अतिरिक्त रोजगार एवं आय के अवसर विकसित किए जा सकते हैं। वड़ी दाल से तैयार किया जाने वाला एक पारंपरिक खाद्य उत्पाद है। इसे मुख्य रूप से उड़द, मूंग, चना तथा अन्य दालों से बनाया जाता है। दाल से तैयार होने के कारण यह ग्रामीण भोजन में प्रोटीन और ऊर्जा देने वाले खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोगी है। वड़ी की विभिन्न स्थानीय किस्मों में दालों के साथ अन्य खाद्य पदार्थों को भी मिलाया जा सकता है। सही तरीके से सुखाने एवं पैकेजिंग के बाद इसका भंडारण आसान होता है और जरूरत के अनुसार पूरे वर्ष इसका उपयोग किया जा सकता है। वड़ी का उपयोग ग्रामीण भोजन व्यवस्था में विभिन्न रूपों में किया जाता है। इसे तलकर या भूनकर आलू-वड़ी की सब्जी, लौकी, कद्दू तथा अन्य सब्जियों की शेवी, दाल अथवा मिश्रित सब्जियों में उपयोग किया जाता है। इसे कुरकुरा करके चावल तथा अन्य मुख्य भोजन के साथ सहायक खाद्य के रूप में भी परोसा जाता है। ताजी सब्जियों की उपलब्धता कम होने पर वड़ी एक उपयोगी विकल्प बन सकती है।

झारखंड में उपलब्ध दालों और अन्य कृषि उत्पादों से वड़ी तैयार कर इसे मूल्य-वर्धित खाद्य उत्पाद के रूप में बाजार में लाने की अच्छी संभावना है। यदि उत्पादन को स्वयं सहायता समूहों से जोड़ा जाए और वैज्ञानिक प्रसंस्करण के साथ कम लागत वाली वड़ी निर्माण मशीन का उपयोग किया जाए, तो पारंपरिक घरेलू काम को महिला-केन्द्रित छोटे खाद्य उद्यम में बदला जा सकता है। इससे रोजगार और आय के साथ महिलाओं की आत्मनिर्भरता बढ़ेगी तथा स्थानीय कृषि उत्पादों का मूल्य भी बढ़ेगा।

वड़ी निर्माण के लिए कच्चा माल, आवश्यक सामग्री एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया- अच्छी गुणवत्ता की वड़ी के लिए साफ और गुणवत्तापूर्ण कच्चे माल का चयन सबसे पहला कदम है। पारंपरिक वड़ी में उड़द दाल प्रमुख कच्चे माल में से एक है। इसके साथ मूंग, चना और अन्य दालों का अकेले या मिश्रण के रूप में उपयोग किया जा सकता है। स्वच्छ पानी, नमक, जीरा, हींग तथा जरूरत के अनुसार अन्य मसाले सहायक सामग्री के रूप में लिए जाते हैं। विशेष प्रकार की वड़ी के लिए लौकी, पेठा जैसी स्थानीय सब्जियाँ भी मिश्रण में शामिल की जा सकती हैं। वैज्ञानिक प्रक्रिया में सबसे पहले दाल को सफाई और श्रेणीकरण करके धूल, मिट्टी, कंकड़, भूसी तथा अन्य अशुद्धियाँ हटाई जाती हैं। इसके बाद दाल को साफ पानी से धोकर पर्याप्त समय तक भिगोया जाता है। भिगोई हुई दाल से अतिरिक्त पानी निकालकर आवश्यक मात्रा में पानी के साथ पीसा

वड़ी निर्माण इकाई से ग्रामीण महिला उद्यमिता और आय-सृजन की नई राह

जाता है, ताकि चिकना और सही गाढ़ा घोल तैयार हो। घोल ऐसा होना चाहिए कि वह मशीन में आसानी से आगे बढ़े और साँचे में सही आकार बनाए रखे। बहुत पतला घोल वड़ी का आकार बनाए रखने में परेशानी दे सकता है, जबकि बहुत गाढ़े घोल को आगे बढ़ाने के लिए अधिक बल की जरूरत पड़ सकती है। इसलिए दाल के मिश्रण और मशीन की संरचना के अनुसार उपयुक्त नमी तथा गाढ़ापन तय करना जरूरी है। साँचे से तैयार वड़ी को साफ ट्रे पर एकत्र करके सुखाया जाता है। सुखाने का मुख्य उद्देश्य अतिरिक्त नमी कम करना, सूक्ष्मजीवों की वृद्धि रोकना और भंडारण अवधि बढ़ाना है। सही सुखाने से वड़ी का रंग, बनावट, कठोरता और पकने के गुण बेहतर बने रहते हैं। पारंपरिक रूप से इसे धूप में सुखाया जाता है। यह सरल और कम लागत वाली विधि है, लेकिन मौसम, धूल, कीट और अन्य अशुद्धियों के कारण इसकी कुछ सीमाएँ हैं। इसलिए व्यावसायिक उत्पादन में सौर ड्रायर या नियंत्रित गर्म-वायु ड्रायर अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। सुखाने के दौरान तापमान, वायु वेग और समय का उचित निर्धारण जरूरी है, क्योंकि बहुत अधिक तापमान से उत्पाद की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। पर्याप्त रूप से सूखने के बाद वड़ी को ठंडा किया जाता है और फिर आकार, रंग तथा बनावट के आधार पर छँटाई और श्रेणीकरण किया जाता है। इसके बाद तौलकर पैकेजिंग, सुरक्षित भंडारण और बाजार की मांग के अनुसार बिक्री की जाती है।

वड़ी की पैकेजिंग, गुणवत्ता, ब्रांडिंग, विपणन एवं अनुपालन: सुखी वड़ी वातावरण से नमी पुनः अवशोषित कर सकती है, इसलिए उसकी गुणवत्ता, स्वच्छता और भंडारण अवधि बनाए रखने में उचित पैकेजिंग अत्यंत महत्वपूर्ण है। सुखाने के बाद वड़ी को पर्याप्त समय तक पूरी तरह ठंडा करना चाहिए, क्योंकि गर्म वड़ी को तुरंत बंद पैकेट में भरने से जलवाष्प संघनित होकर नमी बढ़ा सकती है और भंडारण अवधि घट सकती है। ठंडी वड़ी की गुणवत्ता जाँच, छँटाई, श्रेणीकरण और तौलकर टूटे, विकृत या संदूषित उत्पाद अलग कर देने चाहिए। अच्छी गुणवत्ता वाली वड़ी को खाद्य-ग्रेड, नमी-रोधी पाउच अथवा बहु-परतीय पैकेट में निर्धारित वजन के साथ पैक कर ऊष्मा द्वारा अच्छी तरह सील करना चाहिए। बाजार की आवश्यकता के अनुसार 100 ग्राम, 250 ग्राम, 500 ग्राम तथा 1 किलोग्राम के पैकेट रखे जा सकते हैं। पैकेजिंग सामग्री खाद्य-संपर्क के लिए उपयुक्त हो और नमी, धूल, कीट तथा बाहरी प्रभावों से पर्याप्त सुरक्षा दे। पैकेजिंग के बाद रंग, आकार, बनावट, नमी, वजन और अन्य निर्धारित गुणवत्ता मानकों की जाँच आवश्यक है। प्रत्येक पैकेट पर उत्पादक का नाम, सामग्री, शुद्ध वजन, बैच संख्या, उत्पादन/पैकिंग तिथि, उपयोग की अंतिम अवधि, भंडारण निर्देश तथा लागू खाद्य-सुरक्षा एवं अन्य नियामकीय जानकारी स्पष्ट रूप से अंकित की जानी चाहिए। इस प्रकार सुरक्षित पैकेजिंग, उचित नामांकन और आवश्यक अनुपालन से उत्पाद की गुणवत्ता, विश्वसनीयता एवं भंडारण क्षमता बनाए रखने में सहायता मिलती है। वड़ी को बाजारोन्मुख मूल्य-वर्धित खाद्य उत्पाद के रूप में स्थापित करने के लिए स्वयं सहायता समूह या ग्रामीण उद्यम आकर्षक एवं याद रहने वाला ब्रांड नाम, प्रतीक-चिह्न और एकरूप पैकेज डिजाइन अपना सकते हैं। ब्रांड को झारखंड की स्थानीय

संस्कृति, पारंपरिक खाद्य विरासत तथा स्थानीय दालों से जोड़ा जा सकता है। उपभोक्ता मांग के अनुसार उड़द वड़ी, मूंग वड़ी, मिश्रित दाल वड़ी तथा लौकी, पेठा या अन्य स्थानीय सामग्री से तैयार सब्जी-संवर्धित वड़ी जैसे विभिन्न उत्पाद विकसित किए जा सकते हैं। इससे उत्पाद विविधता और विभिन्न उपभोक्ता वर्गों तक पहुँच बढ़ेगी।

वड़ी निर्माण इकाई के लिए आवश्यक मशीनें: कुटीर स्तर पर वड़ी निर्माण इकाई स्थापित करने के लिए बहुत बड़ी या जटिल मशीनरी की आवश्यकता नहीं होती। प्रारंभिक स्तर पर दाल की सफाई एवं श्रेणीकरण यंत्र, भिगोने एवं धुलाई की टंकी, दाल पीसने की मशीन (वेट ग्राइंडर/पल्स ग्राइंडर), घोल मिलाने एवं फेंटने का यंत्र, आवश्यकता अनुसार मसाला ग्राइंडर, सब्जी कटर/ग्रेटर, डी-वॉटरिंग उपकरण, अर्ध-स्वचालित वड़ी बनाने की मशीन/साँचे, सौर या कैबिनेट ड्रायर, स्टेनलेस स्टील ट्रे एवं रैक, डिजिटल तौल मशीन तथा हीट/बैंड सीलर प्रमुख उपकरण हैं। पैकेजिंग एवं व्यावसायिक उत्पादन के लिए पाउच फिलिंग, लेबलिंग एवं बैच-कोडिंग उपकरण, जबकि गुणवत्ता नियंत्रण के लिए डिजिटल नमी मीटर एवं थर्मामीटर उपयोगी हैं। इसके अतिरिक्त स्टेनलेस स्टील कार्य-टेबल, छलनी, खाद्य-ग्रेड कटेनर, क्रेट, स्टोरेज रैक तथा स्वच्छता एवं सैनिटाइजिंग उपकरण आवश्यकतानुसार रखे जा सकते हैं। बहुत छोटे स्तर पर दाल की सफाई, भिगोने एवं श्रेणीकरण जैसे कार्य हाथ से किए जा सकते हैं और प्रारंभिक निवेश मुख्यतः पीसने, मिश्रण, वड़ी का आकार देने, सुखाने, तौल एवं पैकेजिंग उपकरणों पर किया जा सकता है। मशीनों एवं उपकरणों का चयन उत्पादन क्षमता, उपलब्ध स्थान, श्रम, ऊर्जा की उपलब्धता और स्थानीय बाजार की आवश्यकता के अनुसार किया जाना चाहिए। यंत्रिकरण से उत्पादन क्षमता के साथ वड़ी के आकार, वजन और गुणवत्ता में एकरूपता बढ़ती है तथा नियंत्रित घोल-आपूर्ति और निश्चित साँचों के माध्यम से हाथ से निर्माण की तुलना में अधिक समान उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है। अतः स्वयं सहायता समूहों एवं ग्रामीण महिलाओं के लिए कम पूंजी से इकाई शुरू कर उत्पादन बढ़ाने के साथ अर्ध-स्वचालित मशीनों को क्रमशः जोड़ा जा सकता है।

वड़ी निर्माण इकाई से ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार एवं बाजार विकास- वड़ी निर्माण में ग्रामीण महिलाओं की भूमिका केवल श्रमिक तक सीमित रखने के बजाय उन्हें पूरी मूल्य-श्रृंखला में उद्यमी के रूप में विकसित किया जा सकता है। वे दाल और अन्य कच्चे माल के चयन तथा खरीद से लेकर सफाई, भिगोने, पीसने, घोल तैयार करने, मशीन संचालन, वड़ी निर्माण, सुखाने, छँटाई, श्रेणीकरण, गुणवत्तानियंत्रण, पैकेजिंग, ब्रांड निर्माण और विपणन तक सक्रिय भागीदारी कर सकती हैं। स्वयं सहायता समूह सामूहिक रूप से कच्चा माल खरीदने, मशीन एवं उपकरणों में निवेश करने, कार्य-विभाजन, ब्रांड विकास और उत्पाद विपणन का दायित्व संभाल सकते हैं। इससे पारंपरिक वड़ी निर्माण को संगठित, बाजारोन्मुख सूक्ष्म उद्यम में बदलकर महिलाओं के लिए रोजगार, नियमित आय एवं उद्यमिता के अवसरों के साथ मशीन संचालन, गुणवत्ता नियंत्रण, लागत एवं मूल्य निर्धारण, व्यवसाय प्रबंधन, बाजार समझ और वित्तीय निर्णय जैसे कौशल विकसित किए जा सकते हैं।

साखरे अभिजीत

लावण्या महाराजन, हर्षित सरोहा
 जी वि वेदमूर्ति, जयकुमार सक्थिवेल
 दक्षिण क्षेत्रीय केन्द्र, भा.कृ.अ.नु.प.- राष्ट्रीय डेरी
 अनुसंधान संस्थान, बेंगलूर 560030

पशुओं में आम तौर पर प्रसूति के 6 से 8 घंटे बाद तक जेर स्वयं बाहर गिर जाता है। अगर प्रसूति के 24 घंटे बाद भी जेर बाहर नहीं गिरता है, तो उसे जेर का रुक जाना (रिटेंशन ऑफ प्लासेंटा या नई व्याख्या के अनुसार रिटेंशन ऑफ फिटल मेम्ब्रेन) ऐसा कहा जाता है।

दुग्धउत्पादक पशुओं में इसका घटना दर 7% से 15% तक हो सकता है। इसके कारण पशुओं का दुग्धउत्पादन, प्रजनन क्षमता कम हो जाती है तथा पशुओं के इलाज के लिए खर्चा करना पड़ता है। इन सभी कारणों से किसानों तथा पशुपालकों को बहुत बड़ा नुकसान सहना पड़ता है। जेर के ना गिरने से, पशुओं में गर्भाशय की सूजन, थनैला, और किटोसिस ऐसी अन्य समस्याएँ होकर दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। प्रसूति के बाद पशु को गर्मी में आने के लिए अधिक समय लगता है, ब्याने का अंतराल भी बढ़ जाता है, पशु को गांभिन होने के लिए अधिक बार रेतन करना पड़ता है और अंत में पशु की प्रजनन क्षमता कम हो जाती है।

जेर गिरने की प्रक्रिया

गर्भावस्था के दौरान भ्रूण बीजपत्र (फिटल कोटिलीडन) और गर्भाशय के मासांकुर (यूटेराइन कैरनकल) आपस में जुड़ कर अपरा (जेर) का निर्माण करते हैं जिसके माध्यम से भ्रूण को माँ के रक्त से पोषण मिलता है और भ्रूण की वृद्धि होती है। पशु के प्रसूति के बाद भ्रूण बीजपत्र और गर्भाशय के मासांकुर एकदूसरों से अलग हो जाते हैं और अपरा (जेर) बाहर गिर जाता है। कुछ समस्यात्मक स्थितियों में इस प्रक्रिया में रुकावट आती है और जेर गर्भाशय के अंदर ही रह जाता है।

कारण

- * कठिन प्रसव
- * मृत बछड़े का जन्म होना

दुग्ध उत्पादक पशुओं में जेर रुकने की समस्या : कारण, लक्षण, उपचार एवं बचाव



- * गर्भपात
- * गर्भावधि पूरा होने से पहले बछड़े का जन्म होना
- * नकारात्मक ऊर्जा संतुलन
- * गर्भाशय की मांसपेशियों का निष्कासन बल कम हो जाना
- * कैल्शियम, सेलेनियम और ई- जीवनसत्व (vitamin - E) की कमी

लक्षण

- * गर्भाशय के बाहर जेर लटका हुआ दिखाई देना
- * गर्भाशय से योनी द्वारा गन्दा स्राव होना
- * गर्भाशय के बाहर दुर्गन्ध आना
- * पशु को बुखार आना और खाना-पीना कम होना
- * दुग्ध उत्पादन कम हो जाना

उपचार

पशुओं में जेर रुकने की शिकायत हो तो 12 घंटे के अंदर नजदीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करे और उनकी सलाह के अनुसार पशुओं का इलाज करवाएं। बाजार में कई आयुर्वेदिक औषधी उपलब्ध है, (जैसे की इन्वोलॉन, यूट्रोवेट, यूट्रीवाइव) पशु के प्रसूति के बाद इनको पिलाने से जेर जल्दी बाहर गिर जाता है और गर्भाशय को मूल स्थिति में लाने के लिए मदद करता है। पशु चिकित्सक द्वारा दस्ताने (ग्लव्स) पहना हुआ हाथ गर्भाशय में डालकर धीरे-धीरे जेर निकाला जाता है। जेर निकालने के बाद गर्भाशय की सफाई के लिए एंटीबॉयटिक या एंटीसेप्टिक दवाओं का उपयोग किया जाता है। ब्याने के बाद मूली (1-2 नग) को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर खिलाने से जेर रुकने की समस्या का घटना दर कम होता है। भिण्डी को दो हिस्सों (1.5 किग्रा) में काटकर ब्याने के 4 से 5 घंटे के भीतर

पानी में गुड़ और नमक मिलाकर पिलाने से इकोबोलिक प्रभाव होता है और जेर को बाहर निकालने में मदद मिलती है। जेर रुकने पर तिल और बांस के पत्तों को खिलाने का भी किसानों के बीच व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।

अगर पशुओं में जेर रुका है, तो क्या सावधानियां बरतनी चाहिए ?

- * जेर को जोर जबरदस्ती से न खींचे, इससे बहुत ज्यादा रक्तस्राव हो सकता है
- * लटके हुए जेर को कोई भी गन्दी वस्तु ना बाँधे इससे गर्भाशय का संक्रमण हो सकता है
- * पशु के योनी के आसपास का हिस्सा साफ रखे
- * पशु को साफ जगह पर रखे

बचाव

पशुओं को ब्याने के बाद ऑक्सीटोसिन का इंजेक्शन लगवाने से जेर रुकने का घटना दर कम होता है। ब्याने से पहले पशुओं को खुराक के साथ हर रोज 50 ग्राम खनिज मिश्रण देना चाहिए। ब्याने के 3 हफ्ते पहले पशुओं को सेलेनियम और ई-जीवनसत्व (vitamin - E) का इंजेक्शन लगवाने से जेर समय पर गिर जाता है। बहुत सारे किसानों में यह गलतफहमी है की, जेर निकलने से पहले बछड़े को माँ का दूध नहीं पिलाना चाहिए, पर यह गलत है। ब्याने के बाद 1 या 2 घंटे के अंदर बछड़े को माँ का दूध पिलाना चाहिए। इससे माँ के पीयूष ग्रंथि (पिट्यूटरी ग्लैंड) से ऑक्सीटोसिन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है और यह हॉर्मोन गर्भाशय का संकुचन बढ़ा कर जेर आसानी से बाहर निकालने में मदद करता है। पशुओं के प्रथम दूध यानी खीस में एंटीबॉडीज होती है, यह एंटीबॉडीज बछड़े को रोगप्रतिरोधक क्षमता प्रदान प्रदान करती है।



✍ सुलोचना एम, महाराजन लावण्या,
✍ साखरे अभिजीत, नरेश कुमार के,
✍ जयकुमार सक्तीवेल एवं जी.वी.वेदमूर्ति
वीर्य प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला, दक्षिणा क्षेत्रीय
केन्द्र, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान-भारतीय
कृषि अनुसंधान परिषद, बेंगलुरु-560030

वैश्विक वातावरण में हो रहा बदलाव पशुओं की प्रजनन क्षमता, उत्पादन क्षमता और उनकी पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने की क्षमता इन सभी पर प्रभाव कर रहा है। पशुओं की प्रजनन क्षमता पीछले 5 दशकों से घटती जा रही है, वातावरण में हो रहा बदलाव इसका प्रमुख कारण है। भविष्य की पीढ़ी के लिए वातावरण के बदलाव को सहने योग्य गोवंश चुनने से प्रजनन क्षमता बढ़ सकती है। साल 2014 में भारत सरकार ने देशी गोवंश के विकास के लिए राष्ट्रीय गोकुल मिशन की शुरुवात की। नर और मादा गोवंश दोनों का भी संतति के उत्पादन में समान योगदान होता है। हालांकि कृतिम रेतन के व्यापक प्रयोग से, एक सांड के वीर्य से हजारों मादा पशु गाभिन हो सकते हैं। इसलिए गोवंश की प्रजनन क्षमता बढ़ाने के लिए श्रेष्ठ सांड चुनना बहुत जरूरी है।

देशी नस्ल के सांडों का महत्व- देशी नस्ल के सांडों की उष्णता सहने की क्षमता विदेशी नस्ल के सांडों से अधिक होती है।

देशी और विदेशी नस्ल के सांडों के बीच का भेद

विशेषताएं	देशी नस्ल के सांड	विदेशी नस्ल के सांड
वीर्य की मात्रा	48 - 52 मिली	66 - 68 मिली
शुक्राणु की संख्या (ज्म/106)	14238 - 15477	11909 - 12022

विदेशी नस्ल के सांडों के मुकाबले देशी नस्ल के सांडों के अंडकोश का घेरा छोटा और लम्बाई में अधिक होता है।

वीर्य संकलन हेतु देशी नस्ल के सांड चुनने के मापदंड- प्रजनन मौसम से पहले या उसके दौरान सांड का अच्छे मूल्यांकन करने में असफल होने से बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान हो सकता है।

प्रजनन स्वास्थ्य मूल्यांकन- एक सांड की विशिष्ट प्रजनन ऋतु में खुली, स्वस्थ और नियमित रूप से मदचक्र में आई हुई गायां तथा कठडीओ को उचित संख्या में गाभिन करवाने की संभावना का मूल्यांकन करने की एक समान पद्धति है।

इसमें निम्नलिखित चार घटक होते हैं-

1. **शरीरिक परीक्षण-** इसमें सांड की शरीरिक विशेषताएं जैसे की चाल, संरचनात्मक सुदृढ़ता तथा प्रजनन मार्ग का आंतरिक और बाह्य विकास इनका मूल्यांकन होता है।

2. **अंडकोश का घेरा-** इसमें वृषण का आकार, आरोग्य तथा सांड की वीर्य उत्पादन करने की क्षमता इनका मूल्यांकन होता है।

3. **शुक्राणु की गतिशीलता-** सांड के वीर्य में कम से कम 30% शुक्राणुओं को आगे की ओर बढ़ने की गतिशीलता होनी चाहिए।

4. **शुक्राणु का आकार-** सांड के वीर्य में से कम से कम 70% शुक्राणुओं का आकार सामान्य होना चाहिए।

देशी नस्ल के सांडों से वीर्य संकलन

प्रजनन हेतु उपयोग किए जाने वाले सांडों की हर साल निम्नलिखित बीमारियों की जांच करवानी चाहिए-

1. **ब्रूसीलोसिस-** इसकी वजह से पशुओं में गर्भपात हो सकता है।

2. **क्षय रोग** (इससे मृत्यु-दर बढ़ता है, दूध और मांस उत्पादन घटता है, प्रजनन क्षमता कम होती है।

3. **बोवाइन वायरल डायरिया** (गर्भपात, बांझपन, भ्रूण मृत्यु इत्यादि की वजह से पशुओं का प्रजनन कार्य कम होता है और पशुओं को जल्दी ही फार्म से निकालना पड़ता है।

वीर्य संकलन की साधारण तरीके

1. कृत्रिम योनी द्वारा 2. विद्युत उत्तेजना से 3) मलाशय की दिवार से डक्टस डेफेरेंस के एम्बुला की मालिश करके इन सभी तरीकों में से कृत्रिम योनी द्वारा वीर्य संकलन करना ही अधिक योग्य है।

कृत्रिम योनी द्वारा वीर्य संकलन

वीर्य संकलन क्षेत्र की स्वच्छता और संकलन के समय बरतनी जाने वाली सावधानियां- * सांड और वीर्य संकलन स्थान स्वच्छ और धूल तथा कीचड़ से मुक्त होना चाहिए * संकलन स्थान पर सांडों की या नए लोगों की भीड़ न हो * वीर्य संकलन करने वाले व्यक्ति ने रक्षात्मक कपड़े और गमबूट पहनने चाहिए * डमी पशु का पिछला हिस्सा साफ होना चाहिए * एक हफ्ते में दो बार वीर्य संकलन कर सकते हैं और एक दिन में दो से अधिक बार वीर्य संकलन नहीं करना चाहिए जिस जगह पर वीर्य संकलन किया जाता है उस जगह को एंटीसेप्टिक सोलुशन से साफ करना चाहिए। जिस जगह पर सांड मार्जिंग करते हैं, उस जगह की फर्श स्वच्छ हो और फिसलाउ ना हो।

सांड की तैयारी- वीर्य संकलन के दिन, सुबह सांड को स्वच्छ धोना चाहिए और वीर्य संकलन से पहले खाना नहीं खिलाना चाहिए, खाने से सांड की संभोग इच्छा कम हो जाती है। सांडों को अच्छे से सुखाकर संकलन क्षेत्र के पास ही बांधना चाहिए। सांडों को 'बुल एग्रन' पहनाकर बांधना चाहिए और शिश्न के मुख पर खुली त्वचा (प्रीयूस) सलाइन से धोनी चाहिए। तैयारी की पहली अवस्था में सांडों को वीर्य संकलन क्षेत्र में कुछ चक्कर लगवाने चाहिए और दूसरे सांडों को सूंघने तथा उनके ऊपर कूदने देना चाहिए। सांडों को एक-दूसरे के ऊपर मार्जिंग करते हुए देखने देना चाहिए इससे सांड उत्तेजित होते हैं। डमी की आगे-पीछे होने वाली हरकत सांड को उत्तेजित करती है। (लिंग का प्रीयूस से बाहर आना सांड की सम्भोग तैयारी सूचित करता है)

कृत्रिम योनी की तैयारी- वाटर जैकेट में गरम पानी भर कर कृत्रिम योनी को तैयार किया जाता है ताकि उसका अंतिम तापमान 42° से 50° से. तक हो तथा वाटर जैकेट का बचा हुआ आधा हिस्सा हवा से भरा जाता है और संचयन नलिका जोड़ी जाती है। कृत्रिम योनी तैयार करने के बाद उसको अंदर से 3 से 5 इंच तक चिकनापन देने वाला जेल लगाया जाता है।

वीर्य संकलन करने वाली व्यक्ति ने प्रीयूस को पकड़ कर लिंग को कृत्रिम योनी के अंदर निदेशित करना चाहिए। कृत्रिम योनी कभी भी लिंग के ऊपर रखनी नहीं चाहिए।

वीर्य संकलन- डमी को ट्रेविस के अंदर नियंत्रित करना

चाहिए और सांड को 2 से 3 बार छोटी मार्जिंग देकर डमी की तरफ छोड़ना चाहिए। दाएं हाथ से काम करने वाली व्यक्ति दाएं हाथ में कृत्रिम योनी पकड़ कर दाईं ओर से सांड के समीप जा सकती है। जब सांड माउंट करता है और जोर (थ्रस्ट) लगाने के लिए तैयार होता है तब वीर्य संकलन करने वाली व्यक्ति अपने बाएं हाथ से प्रीयूस को पकड़कर लिंग को कृत्रिम योनी के अंदर निदेशित करती है। कृत्रिम योनी लिंग को दिशा में 45° के कोण में पकड़ी जाती है।

इस सभी प्रक्रिया के दौरान अंडकोश को स्पर्श नहीं करना चाहिए इसकी वजह से सांड सम्भोग बंद कर सकता है।

वीर्य संकलन के बाद संकलन नलिका कृत्रिम योनी से अलग कर के उसे साफ ढक्कन के साथ ढककर 37° से. तापमान का पानी भरे हुए बीकर में रखते हैं। संकलन नलिका पर सांड की पूरी जानकारी लिखी जाती है।

सांड के ताजे वीर्य के गुणधर्म

* मात्रा - 4 से 6 मिली/ संकलन

* रंग- सफेद से क्रीम

* गठन (टेक्सचर)- दूधिया, दूध के साथ मलाई जैसा, क्रीमी

* गंध- गाय के दूध जैसा

* पी. एच. - 6.2 से 6.8

वीर्य का सफेद के अलावा अगर अन्य कोई और रंग हो तो उसकी वजह नीचे दिए गए कारणों में से कोई हो सकती है-

* **गुलाबी या लाल-** यह खून की उपस्थिति दर्शाता है

* **हरा-** मवाद (पस) की उपस्थिति दर्शाता है

* **पीला** - मूत्र की उपस्थिति दर्शाता है

* **पानीदार सफेद** - शुक्राणु की कम मात्रा दर्शाता है

दूसरी बार वीर्य संकलन के दौरान सूक्ष्मजीवों का भार चार गुना बढ़ जाता है, इसलिए दूसरी बार वही कृत्रिम योनी से वीर्य संकलन नहीं करना चाहिए।

वीर्य संकलन के लिए लागू कुछ शर्तें- वीर्य संकलन करने वाली व्यक्ति ने प्रोत्साहनपर आवाज से सांड को मार्जिंग के लिए बढ़ावा देना चाहिए। सांड की पीठ पर मालिश करनी चाहिए और उसके पिछले पैरों के बीच रगड़ना चाहिए। वीर्य संकलन करने वाले व्यक्ति को सांड के लैंगिक व्यवहार का पता होना चाहिए इससे वीर्य संकलन बढ़ता है दू सांड को डमी के पास छोड़ने से वीर्य संकलन तक कम से कम 20 से 30 मिनट का समय पर्याप्त है।

वीर्य संकलन यह एक सफल उद्यमिता (व्यवसाय) हो सकती है- हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र जिले के सुनरियन नामक गांव के कर्मवीर फार्म का युवराज नामक सांड एक बार वीर्य संकलन से 4 से 6 मिली वीर्य देता था। उसे पतला करके उससे 500 से 600 डोज बनते थे। युवराज के मालिक को एक बार वीर्य संकलन से लगभग 1,50,000 रुपये मिलते थे। अगर एक महीने की कमाई की गिनती की जाये तो यह लगभग 24,00,000 रुपये इतनी होगी। अगर दुग्धउत्पादन जैसा वीर्य संकलन का भी व्यवसाय किया जाए, तो किसानों को पर्याप्त लाभ होगा।



✶ **सृष्टि शर्मा, प्रतिभा सिंह, अनुज कटोच**
पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी
महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं
वनिकी विश्वविद्यालय, सोलन, (हिमाचल प्रदेश)

सारांश-सब्जी की फसलों को बहुत कम मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्वों (माइक्रोन्यूट्रिएंट्स) की जरूरत होती है, फिर भी ये प्रकाश संश्लेषण, एंजाइम की गतिविधि, प्रजनन विकास, फल बनने और फसल की कुल गुणवत्ता में अहम भूमिका निभाते हैं। जिंक (Zn), आयरन (Fe), बोरॉन (B), मैंगनीज (Mn), कॉपर (Cu) और मोलिब्डेनम (Mo) जैसे पोषक तत्व सही मात्रा में होने पर सब्जी की पैदावार पर बहुत असर डाल सकते हैं। इनकी कमी से खराब विकास, क्लोरोसिस (पत्तियों का पीला पड़ना), फूलों और फलों में असामान्यताएं, कम पैदावार और पोषण की खराब गुणवत्ता जैसी समस्याएं हो सकती हैं। हाल के शोध में सूक्ष्म पोषक तत्वों के सटीक प्रबंधन और एग्रोनॉमिक बायोफोर्टिफिकेशन पर ज्यादा ध्यान दिया गया है, जिससे फसल के प्रदर्शन और खाने योग्य पौधों के हिस्सों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा, दोनों में सुधार हो सकता है। इसलिए, सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन आधुनिक सब्जी उत्पादन का एक जरूरी हिस्सा होना चाहिए।

परिचय-सब्जियां स्वस्थ आहार का एक बहुत जरूरी हिस्सा हैं क्योंकि इनसे विटामिन, मिनरल, एंटीऑक्सीडेंट, फाइबर और दूसरे बायोएक्टिव कंपाउंड मिलते हैं। हालांकि, सब्जियों की अच्छी पैदावार और क्वालिटी पाने के लिए सिर्फ नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम ही काफी नहीं हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों (माइक्रोन्यूट्रिएंट्स) की जरूरत भले ही बहुत कम मात्रा में होती है, लेकिन पौधों की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए ये बहुत जरूरी हैं। आयरन, जिंक, मैंगनीज, कॉपर, बोरॉन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन और निकेल पौधों में खास शारीरिक और जैव-रासायनिक काम करते हैं। इनकी कमी से फसल की पैदावार कम हो सकती है, भले ही मुख्य पोषक तत्व सही मात्रा में दिए जा रहे हों। सब्जियों की सघन खेती, लगातार फसल उगाने, असंतुलित खाद के इस्तेमाल और मिट्टी में पोषक तत्वों के भंडार कम होने की वजह से सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व बढ़ गया है। इसलिए, सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रबंधन सिर्फ पैदावार का ही नहीं, बल्कि उपज की क्वालिटी और पोषण सुरक्षा का भी मामला है।

माइक्रोन्यूट्रिएंट्स क्यों जरूरी हैं?

माइक्रोन्यूट्रिएंट्स कई जरूरी शारीरिक प्रक्रियाओं में हिस्सा लेते हैं-

जिंक (Zn)- एंजाइम की गतिविधि, प्रोटीन बनाने, विकास को नियंत्रित करने और झिल्ली (मेम्ब्रेन) के काम करने के लिए जरूरी है।

आयरन (Fe)- क्लोरोफिल बनाने, इलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट और प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) की गतिविधि के लिए जरूरी है।

बोरॉन (B)-कोशिका-भित्ति (सेल-वॉल) के विकास, परागकणों के अंकुरण, फल लगने और प्रजनन संबंधी विकास हेतु जरूरी है।

मैंगनीज (Mn)- प्रकाश संश्लेषण और कई एंजाइमों को सक्रिय करने में शामिल होता है।

कॉपर (Cu)- प्रकाश संश्लेषण में इलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट और अलग-अलग एंजाइम सिस्टम के लिए जरूरी है।

मोलिब्डेनम (Mo)- नाइट्रोजन मेटाबॉलिज्म, खासकर नाइट्रेट रिडक्शन के लिए जरूरी है।

सब्जी उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्व: छोटे तत्व, बड़ा असर

मोलिब्डेनम और अन्य माइक्रोन्यूट्रिएंट्स- हालांकि इनकी जरूरत बहुत कम मात्रा में होती है, लेकिन इनकी कमी से फसल के विकास और पैदावार पर काफी असर पड़ सकता है।

सब्जी वाली फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी- मिट्टी में इनकी कम उपलब्धता, मिट्टी का अनुपयुक्त pH, मुख्य पोषक तत्वों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल, कम ऑर्गेनिक मैटर या

चलता है कि खास माइक्रोन्यूट्रिएंट (सूक्ष्म पोषक तत्व) मैनेजमेंट से पैदावार और क्वालिटी, दोनों को कैसे बेहतर बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, ICAR-इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ वेजिटेबल रिसर्च, वाराणसी ने फलियों वाली सब्जियों हेतु 'काशी सूक्ष्म-शक्ति प्लस' नाम का एक लिक्विड मल्टी-माइक्रोन्यूट्रिएंट फॉर्मूला बनाया है। इसमें Zn, Fe, Mn, Cu, B और Mo के साथ-साथ पौधों की बढ़त को रेगुलेट करने वाले तत्व भी शामिल हैं। खेतों में किए गए टेस्ट से पता चला है कि मटर की पैदावार में लगभग 13.39% और फ्रेंच बीन की पैदावार में 12.37% की बढ़ोतरी हुई है। साथ ही, खाने योग्य फलियों में कई माइक्रोन्यूट्रिएंट्स और क्वालिटी पैरामीटर्स में भी सुधार देखा गया है। इसी तरह, ICAR-IIVR ने कुकुरबिट (कद्दू-वर्गीय) और फलियों वाली सब्जियों के लिए खास माइक्रोन्यूट्रिएंट फॉर्मूले तैयार किए हैं। इससे यह बात सामने आती है कि 'एक ही फॉर्मूला सबके लिए' वाली सोच के बजाय, फसल के हिसाब से न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट कितना जरूरी होता जा रहा है। नई रिसर्च में माइक्रोन्यूट्रिएंट्स पहुंचाने के लिए नैनो-आधारित तरीकों पर भी काम हो रहा है। नैनो-बायोफोर्टिफिकेशन से न्यूट्रिएंट के इस्तेमाल की क्षमता और पौधों के खाने योग्य हिस्सों में न्यूट्रिएंट जमा होने की प्रक्रिया बेहतर हो सकती है। हालांकि, लागत, पर्यावरण की सुरक्षा, नियम-कानून और लंबे समय तक खेत में इसके असर से जुड़े सवालों पर अभी भी सावधानी से विचार करने की जरूरत है।

किसानों के लिए व्यावहारिक तरीका

माइक्रोन्यूट्रिएंट (सूक्ष्म पोषक तत्वों) का सही प्रबंधन इन सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए-

* जहाँ भी संभव हो, माइक्रोन्यूट्रिएंट फर्टिलाइजर (खाद) डालने से पहले मिट्टी की जाँच करवाएँ। * सिर्फ एक पोषक तत्व पर निर्भर रहने के बजाय, NPK और माइक्रोन्यूट्रिएंट का संतुलित कार्यक्रम अपनाएँ। * फसल और मिट्टी के हिसाब से बने माइक्रोन्यूट्रिएंट फॉर्मूलेशन का इस्तेमाल करें। * जरूरत पड़ने पर पत्तियों पर स्प्रे (फोलियर स्प्रे) करें, खासकर तब जब कमी को तेजी से ठीक करना हो। * मिट्टी की सेहत और पोषक तत्वों की उपलब्धता को बेहतर बनाने के लिए जैविक खाद और कम्पोस्ट का इस्तेमाल करें। * बिना सोचे-समझे इनका इस्तेमाल करने से बचें, क्योंकि माइक्रोन्यूट्रिएंट की कमी और जहरीलेपन (टॉक्सिसिटी) के बीच बहुत कम अंतर होता है। * जहाँ सब्जियों की पोषण क्षमता बढ़ाना मकसद हो, वहाँ एग्रोनॉमिक बायोफोर्टिफिकेशन पर विचार करें।

निष्कर्ष-माइक्रोन्यूट्रिएंट की जरूरत किलोग्राम के बजाय ग्राम में हो सकती है, लेकिन सब्जियों के उत्पादन पर इनका असर बहुत ज्यादा होता है। Zn, Fe, B, Mn, Cu और Mo का सही प्रबंधन पौधों की बढ़त, प्रजनन विकास, पैदावार और पोषण की गुणवत्ता को बेहतर बना सकता है। माइक्रोन्यूट्रिएंट प्रबंधन का भविष्य मिट्टी और फसल के हिसाब से सलाह, सही मात्रा में इस्तेमाल और एग्रोनॉमिक बायोफोर्टिफिकेशन में है। इन तरीकों को संतुलित खाद के इस्तेमाल के साथ मिलाकर ऐसी सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं जो न सिर्फ ज्यादा पैदावार देंगी, बल्कि ज्यादा पोष्टिक भी होंगी और बढ़ती आबादी की जरूरतों के लिए बेहतर होंगी।



पोषक तत्वों का ठीक से अवशोषण न हो पाना सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का कारण बन सकता है। कमी के लक्षण पोषक तत्व और फसल के हिसाब से अलग-अलग होते हैं। आयरन और मैंगनीज की कमी से आमतौर पर क्लोरोसिस (पत्तियों का पीला पड़ना) होता है, जबकि जिंक की कमी से विकास रुक सकता है और पत्तियाँ छोटी रह सकती हैं। बोरॉन की कमी प्रजनन विकास, फल लगने और फल की गुणवत्ता पर असर डाल सकती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि कमी के लक्षणों की पहचान सिर्फ देखकर नहीं करनी चाहिए। मिट्टी और पौधे के ऊतकों (टिशू) की जांच पोषक तत्वों के प्रबंधन के लिए ज्यादा भरोसेमंद आधार दे सकती है। सही पहचान जरूरी है क्योंकि सूक्ष्म पोषक तत्वों का बहुत ज्यादा इस्तेमाल जहरीलापन पैदा कर सकता है और दूसरे पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा डाल सकता है।

माइक्रोन्यूट्रिएंट मैनेजमेंट से बायोफोर्टिफिकेशन तक- एक उभरता हुआ तरीका है एग्रोनॉमिक बायोफोर्टिफिकेशन, जिसमें मिट्टी में डालकर, पत्तियों पर स्प्रे करके, बीजों का उपचार करके या दूसरे तरीकों से जरूरी माइक्रोन्यूट्रिएंट्स दिए जाते हैं, ताकि खाने योग्य पौधों के हिस्सों में इनकी मात्रा बढ़ाई जा सके। हाल की समीक्षाओं में एग्रोनॉमिक बायोफोर्टिफिकेशन को सब्जियों की पोषण गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए एक आशाजनक रणनीति के तौर पर पहचाना गया है। यह तरीका खास तौर पर जिंक और आयरन के लिए अहम है, जो पौधों और इंसानी पोषण, दोनों के लिए जरूरी हैं। हाल की रिसर्च में सब्जी वाली फसलों में सेलेनियम और अयोडीन की मात्रा बढ़ाने पर भी काम हुआ है। हालांकि, मकसद सिर्फ माइक्रोन्यूट्रिएंट फर्टिलाइजर की मात्रा बढ़ाना नहीं, बल्कि संतुलित और वैज्ञानिक तरीके से इनका इस्तेमाल करना होना चाहिए।

सब्जी उत्पादन में हाल की तरक्की- हाल की तरक्की से पता



अंकिता (पीएच.डी.)

डॉ. संतोष कुमारी (वरिष्ठ वैज्ञानिक)

अंजलि कुमारी (पीएच.डी.)

तनुज कुमार (पीएच.डी.)

अभिषेक नेगी (पीएच.डी.) वाई एस

परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
नौणी, सोलन (हिमाचल प्रदेश)

शहरी क्षेत्रों में वर्टिकल फार्मिंग द्वारा सब्जी उत्पादन

वर्टिकल फार्मिंग शहरी सब्जी उत्पादन में एक अधिक टिकाऊ और स्थान-कुशल विकल्प प्रदान करके पारंपरिक कृषि में परिवर्तन ला रही है। जैसे-जैसे शहरों का विस्तार हो रहा है और कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है, यह नवीन प्रणाली नियंत्रित परिस्थितियों में कई स्तरों पर खेती करके लेट्यूस, पालक और चेरी टमाटर जैसी ताजी सब्जियों का वर्षभर उत्पादन संभव बनाती है। हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एलईडी प्रकाश जैसी उन्नत तकनीकें जल की खपत कम करते हुए तथा विषैले कीटनाशकों की आवश्यकता को समाप्त करते हुए फसल की वृद्धि के लिए बेहतर परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। केल और माइक्रोग्रीन्स जैसी पत्तेदार सब्जियाँ वर्टिकल प्रणालियों में अच्छी तरह विकसित होती हैं और पौष्टिक भोजन की निरंतर आपूर्ति प्रदान करती हैं। वर्टिकल फार्म खाद्य सुरक्षा को बढ़ाते हुए परिवहन लागत और कार्बन फुटप्रिंट को कम करते हैं, जिससे वे भविष्य के शहरी परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण घटक बन जाते हैं।

वर्टिकल फार्मिंग क्यों महत्वपूर्ण है?

* भूमि की कमी का समाधान ढ़ बढ़ते शहरीकरण के साथ कृषि भूमि कम होती जा रही है। वर्टिकल और शहरी खेती अप्रयुक्त भवनों, छतों तथा इनडोर स्थानों का उपयोग करके खाद्य उत्पादन को कुशलतापूर्वक संभव बनाती है।

* जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता- पारंपरिक कृषि मौसम की परिस्थितियों पर अत्यधिक निर्भर होती है, जबकि वर्टिकल फार्मिंग में नियंत्रित वातावरण फसलों को सूखा, बाढ़ और तापमान में उतार-चढ़ाव जैसी जलवायु संबंधी चुनौतियों से बचाता है।

* शहरों में खाद्य सुरक्षा- उपभोक्ताओं के निकट खाद्य उत्पादन करने से शहरी और वर्टिकल खेती ग्रामीण खेतों पर निर्भरता कम करती है तथा ताजी उपज की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करती है।

* संसाधनों का कुशल उपयोग- इन विधियों में कम भूमि, जल और ऊर्जा का उपयोग होता है, जिससे कृषि के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है।

* खाद्य परिवहन लागत में कमी- शहरों में खाद्य उत्पादन करने से लंबी दूरी तक परिवहन की आवश्यकता कम होती है, जिससे परिवहन लागत और कार्बन उत्सर्जन दोनों में कमी आती है।

वर्टिकल फार्मिंग प्रणालियों में फसल चयन और गुणवत्ता का अनुकूलन- वर्टिकल फार्मिंग प्रणालियाँ नियंत्रित वातावरण में विभिन्न सब्जियों की खेती को संभव बनाकर शहरी कृषि में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही हैं। उपयुक्त फसलों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें ऐसी प्रजातियाँ पर ध्यान दिया जाता है जिनमें सघन वृद्धि, उथली जड़ प्रणाली और उच्च हार्वेस्ट इंडेक्स हो, क्योंकि ये गुण संसाधनों के कुशल उपयोग और अधिकतम उपज सुनिश्चित करते हैं। लेट्यूस, पालक, केल और स्विस् चार्ड जैसी पत्तेदार सब्जियाँ अपने तीव्र वृद्धि चक्र और कम स्थान की

आवश्यकता के कारण वर्टिकल फार्मिंग प्रणालियों के लिए उपयुक्त फसलें हैं। ये फसलें कई स्तरों पर व्यवस्थित संरचनाओं में अच्छी तरह विकसित होती हैं, जिससे ऊर्ध्वाधर स्थान का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। मूली, गाजर और चुकंदर जैसी जड़ वाली सब्जियाँ, जो सामान्यतः मिट्टी में उगाई जाती हैं, जड़ों के विकास के लिए उपयुक्त डिजाइन वाले कटेनरों में वर्टिकल प्रणालियों के अनुकूल भी हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, अनिश्चित वृद्धि वाले टमाटर, खीरा, पोल बोन्स, मटर तथा कुछ स्कैश किस्मों जैसी आरोही सब्जियों की ट्रेलिस या अन्य सहारा संरचनाओं की सहायता से प्रभावी ढंग से ऊर्ध्वाधर खेती की जा सकती है।

इन सब्जियों का वर्टिकल फार्मिंग के प्रति अनुकूलन उनकी वृद्धि की प्रकृति और पर्यावरणीय आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। पत्तेदार सब्जियाँ अपनी उथली जड़ों और शीघ्र परिरक्ता के कारण विशेष रूप से उपयुक्त हैं। जड़ वाली सब्जियों को अपेक्षाकृत गहरे कटेनरों की आवश्यकता होती है, लेकिन नियंत्रित परिस्थितियाँ उनके समान विकास को बढ़ावा देती हैं। जड़ी-बूटियाँ अपने छोटे आकार और निरंतर कटाई की क्षमता के कारण स्थान-कुशल खेती के लिए आदर्श हैं। आरोही सब्जियाँ स्वाभाविक रूप से ऊर्ध्वाधर संरचनाओं के अनुरूप होती हैं, जिससे स्थान का कुशल उपयोग और आसान कटाई संभव होती है।

वर्टिकल फार्मिंग के प्रकार- हाइड्रोपोनिक्स- "हाइड्रोपोनिक्स" वह विधि है जिसमें मिट्टी के बिना पौधों को उगाया जाता है। हाइड्रोपोनिक्स प्रणालियों में पौधों की जड़ें ऐसे तरल उर्वरक घोल में डूबी रहती हैं, जिसमें प्रमुख एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के पोषक तत्व शामिल होते हैं। जड़ों को सहारा देने के लिए मिट्टी के विकल्प के रूप में निष्क्रिय माध्यमों का भी उपयोग किया जाता है। इनमें रॉकवूल, क्ले पेलेट्स, रेत, बुरादा, परलाइट, वर्मीकुलाइट, नारियल की जटा और बजरी शामिल हैं। यह विधि पारंपरिक मिट्टी आधारित खेती की तुलना में बेहतर पर्यावरणीय परिस्थितियाँ एवं कीटनाशकों की कम आवश्यकता तथा जल और पोषक तत्वों के स्तर पर अधिक सटीक नियंत्रण जैसे कई लाभ प्रदान करती है।

एरोपोनिक्स- इसमें पौधों को वायु कक्षों में पोषक तत्वों से भरपूर तरल घोल के संपर्क में रखा जाता है। इसमें जल के उपयोग में 90% तक कमी हो सकती है और वृद्धि माध्यम को बदलने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए एरोपोनिक्स सबसे पर्यावरण-अनुकूल मृदा-रहित खेती विधियों में से एक है। यह सीमित जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। एरोपोनिक्स का एक प्रमुख लाभ बेहतर वातन है, जिससे पौधे का तना और जड़ तंत्र वायु से पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त कर पाते हैं और जड़ वृद्धि को बढ़ावा मिलता है। वृद्धि माध्यम को बदलने की आवश्यकता समाप्त होने के कारण एरोपोनिक्स एक अत्यधिक जल-कुशल तकनीक है। एरोपोनिक्स प्रणालियों को ऊर्ध्वाधर रूप से भी स्थापित किया जा सकता है, जिससे ऊर्जा की खपत को और कम किया जा सकता है।

एक्वापोनिक्स- एक्वापोनिक्स शब्द एक्वाकल्चर और हाइड्रोपोनिक्स शब्दों से मिलकर बना है। प्रकृति की नकल करने वाली बंद-चक्र प्रणाली में जलीय जीवों और स्थलीय पौधों की खेती को एक साथ जोड़कर एक्वापोनिक्स, हाइड्रोपोनिक्स का उन्नत रूप है। एक ठोस पदार्थ हटाने वाली इकाई मछली टैंकों से निकलने वाले पोषक तत्वों से भरपूर अपशिष्ट को छानकर जैव-फिल्टर तक

भेजती है, जहाँ विषैले अमोनिया को पोषक तत्वों से भरपूर नाइट्रेट में परिवर्तित किया जाता है। एक्वापोनिक्स में मछलियों और पौधों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए जल की गुणवत्ता, तापमान तथा अन्य कारकों की नियमित निगरानी और प्रबंधन किया जाता है। इसके कई लाभ हैं, जैसे अधिक टिकाऊ वातावरण, स्थान का कुशल उपयोग और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता में कमी।

वर्टिकल प्रणालियाँ- वर्टिकल प्रणालियों में कुछ पौधे जमीन पर होते हैं, जबकि अन्य पौधों को ऊर्ध्वाधर पंक्तियों में व्यवस्थित किया जाता है। ऊपर से उर्वरक घोल का छिड़काव करने के बाद यह सबस्ट्रेट से भरी थैली के माध्यम से नीचे की ओर टपकता है। निकासी का पानी नीचे एकत्रित रहता है।

वर्टिकल टावर- टावर गार्डन, जिसे अक्सर विंडो फार्म कहा जाता है, एक ऊर्ध्वाधर हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली है, जिसमें बोतल कैस्केड, हाइड्रोपोनिक्स दीवार और ए-फ्रेम प्रणाली शामिल होती हैं। इसका उपयोग ब्रोकोली, पालक, केल, स्विस् चार्ड, लेट्यूस और विभिन्न जड़ी-बूटियों सहित अनेक फसलों की खेती के लिए किया जा सकता है।

शहरी सब्जी उत्पादन के लिए वर्टिकल फार्मिंग के लाभ

* भूमि उपयोग की अत्यधिक उच्च दक्षता * सीमित कृषि भूमि वाले क्षेत्रों में उत्पादन * वर्षभर उत्पादन * जल का कुशल उपयोग * जल एवं पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण * नियंत्रित उत्पादन वातावरण * मौसमी मौसम पर निर्भरता में कमी * उपभोक्ताओं के निकट ताजी सब्जियों की उपलब्धता * परिवहन दूरी में संभावित कमी * छतों, भवनों तथा अप्रयुक्त शहरी स्थानों के उपयोग की संभावना

सीमाएँ- इनडोर और वर्टिकल फार्मिंग की प्रमुख चुनौतियों में से एक उच्च प्रारंभिक लागत है, क्योंकि एलईडी लाइट, सेंसर और जलवायु नियंत्रण प्रणालियाँ जैसे उपकरण महंगे होते हैं। इसके लिए कुशल श्रम की भी आवश्यकता होती है, क्योंकि इन उन्नत प्रणालियों के संचालन के लिए उचित तकनीकी ज्ञान जरूरी है। इसके अतिरिक्त, इनडोर फार्म प्रकाश, शीतलन और स्वचालन प्रणालियों को चलाने के लिए बिजली पर काफी निर्भर होते हैं। तकनीक पर निर्भरता भी एक सीमा है, क्योंकि बिजली कटौती या उपकरणों में खराबी जैसी किसी भी प्रणालीगत विफलता से पौधों की वृद्धि और उत्पादकता शीघ्र प्रभावित हो सकती है।

निष्कर्ष- वर्टिकल फार्मिंग शहरों की खाद्य सुरक्षा संबंधी समस्याओं, विशेष रूप से लगातार बढ़ती शहरी आबादी के संदर्भ में, एक हरित समाधान प्रस्तुत करती है। हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स जैसी मृदा-रहित खेती पद्धतियों का उपयोग करके वर्टिकल फार्म जलवायु-नियंत्रित वातावरण में पूरे वर्ष फसलों का उत्पादन करने में सक्षम होते हैं। यह न केवल जल की बचत करता है और कीटनाशकों के उपयोग को कम करता है, बल्कि खाद्य उत्पादन को उपभोक्ताओं के निकट स्थापित करके परिवहन से होने वाले उत्सर्जन को भी कम करता है। भारत में कम लागत वाली वर्टिकल फार्म तकनीकों को अपनाने से कम कृषि योग्य भूमि वाले क्षेत्रों, जैसे शहरी झुग्गी क्षेत्रों और खाद्य-वंचित क्षेत्रों, को ताजी उपज और स्थानीय रोजगार उपलब्ध कराने में काफी सहायता मिल सकती है। हालाँकि, उच्च स्थापना लागत और अधिक बिजली की आवश्यकता जैसी समस्याएँ मौजूद हैं। कम लागत वाले उपायों और नीतिगत सहयोग के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान करना शहरों में वर्टिकल फार्मिंग के व्यापक उपयोग के लिए महत्वपूर्ण है।



एकता एवं रिकू मनोविज्ञान विभाग
एफ. सी. कॉलेज, हिसार, (हरियाणा)

डिजिटल युग में बढ़ता मानसिक तनाव और उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव

प्रस्तावना

वर्तमान युग को डिजिटल युग कहा जाता है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल बैंकिंग, वर्क फ्रॉम होम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों ने मानव जीवन को अत्यंत सुविधाजनक और तेज बना दिया है। आज व्यक्ति कुछ ही सेकंड में देश-दुनिया की जानकारी प्राप्त कर सकता है तथा दूर बैठे लोगों से संपर्क कर सकता है। डिजिटल तकनीक ने शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, व्यापार और मनोरंजन के क्षेत्र में अनेक सकारात्मक परिवर्तन किए हैं।

हालाँकि, डिजिटल तकनीक के अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग ने नई मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी जन्म दिया है। लगातार मोबाइल देखना, सोशल मीडिया पर सक्रिय रहना, ऑनलाइन सूचनाओं की अधिकता, साइबर बुलिंग, डिजिटल तुलना, ऑनलाइन कार्य का दबाव तथा हर समय उपलब्ध रहने की अपेक्षा व्यक्ति में मानसिक तनाव को बढ़ा सकती है। विशेष रूप से युवा वर्ग डिजिटल वातावरण से अधिक प्रभावित हो रहा है।

मानसिक तनाव एक ऐसी मनोवैज्ञानिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति स्वयं को अत्यधिक दबाव, चिंता या चुनौती की स्थिति में अनुभव करता है। सीमित मात्रा में तनाव व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकता है, लेकिन लंबे समय तक बना रहने वाला अत्यधिक तनाव शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों को प्रभावित कर सकता है। इसलिए डिजिटल युग में तनाव के कारणों और उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझना आवश्यक है।

मानसिक तनाव का अर्थ

तनाव वह मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक प्रतिक्रिया है जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति किसी परिस्थिति या मांग को अपनी उपलब्ध क्षमताओं से अधिक या चुनौतीपूर्ण अनुभव करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तनाव केवल बाहरी परिस्थिति पर निर्भर नहीं करता, बल्कि व्यक्ति उस परिस्थिति को किस प्रकार समझता और उसका मूल्यांकन करता है, यह भी महत्वपूर्ण है। एक ही परिस्थिति अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग स्तर का तनाव उत्पन्न कर सकती है।

डिजिटल युग में मानसिक तनाव बढ़ने के प्रमुख कारण

1. सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग

फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, स्नैपचैट और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म व्यक्ति के दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। लगातार सोशल मीडिया पर दूसरों की उपलब्धियों, यात्राओं, जीवनशैली और सफलताओं को देखकर व्यक्ति अपने जीवन की तुलना दूसरों से करने लगता है। इस प्रकार की तुलना से हीन भावना, असंतोष, चिंता और आत्मसम्मान में कमी उत्पन्न हो सकती है। सोशल मीडिया पर लाइक, कमेंट और फॉलोअर्स की संख्या भी कुछ व्यक्तियों के लिए आत्म-मूल्य का आधार बन

सकती है।

2. सूचना की अधिकता

डिजिटल माध्यमों से व्यक्ति को बहुत बड़ी मात्रा में सूचनाएँ लगातार प्राप्त होती रहती हैं। समाचार, संदेश, ई-मेल, वीडियो, विज्ञापन और सोशल मीडिया अपडेट व्यक्ति के ध्यान को बार-बार



प्रभावित करते हैं। सूचनाओं की इस अधिकता को सूचना की अधिकता (Information Overload) कहा जाता है। इससे निर्णय लेने में कठिनाई, मानसिक थकान, ध्यान में कमी और तनाव उत्पन्न हो सकता है।

3. 24x7 समय ऑनलाइन रहने का दबाव

डिजिटल तकनीक ने कार्य और व्यक्तिगत जीवन के बीच की सीमा को कम कर दिया है। मोबाइल फोन के कारण व्यक्ति कार्यालय या पढ़ाई के समय के बाद भी संदेशों और ई-मेल से जुड़ा रह सकता है। लगातार उपलब्ध रहने की अपेक्षा व्यक्ति को मानसिक रूप से आराम करने का पर्याप्त अवसर नहीं देती। परिणामस्वरूप मानसिक थकान और तनाव बढ़ सकता है।

4. ऑनलाइन शिक्षा और कार्य का दबाव

ऑनलाइन शिक्षा ने सीखने के नए अवसर प्रदान किए हैं, लेकिन लंबे समय तक स्क्रीन के सामने रहना, ऑनलाइन असाइनमेंट, परीक्षा, समय-सीमा और तकनीकी समस्याएँ विद्यार्थियों में तनाव पैदा कर सकती हैं। इसी प्रकार डिजिटल कार्यस्थल में लगातार ऑनलाइन मीटिंग, ई-मेल और कार्य-संदेश व्यक्ति पर अतिरिक्त मानसिक दबाव डाल सकते हैं।

5. डिजिटल तुलना

सोशल मीडिया पर लोग प्रायः अपने जीवन के सकारात्मक पक्ष को अधिक प्रदर्शित करते हैं। इसे देखकर व्यक्ति दूसरों के जीवन को वास्तविकता से अधिक सफल या सुखद समझ सकता है।

इससे सामाजिक तुलना बढ़ती है और व्यक्ति अपने रूप, शिक्षा, करियर, आर्थिक स्थिति या सामाजिक जीवन से असंतुष्ट महसूस कर सकता है।

6. साइबर बुलिंग और ऑनलाइन उत्पीड़न

साइबर बुलिंग डिजिटल माध्यमों से किसी व्यक्ति को परेशान करना, अपमानित करना या धमकाना है। विशेष रूप से किशोर और युवा इससे प्रभावित हो सकते हैं। साइबर बुलिंग से चिंता, भय, सामाजिक अलगाव, आत्मसम्मान में कमी और भावनात्मक परेशानी उत्पन्न हो सकती है।

7. डिजिटल लत

जब व्यक्ति डिजिटल उपकरणों या इंटरनेट के उपयोग पर पर्याप्त नियंत्रण नहीं रख पाता और उसके कारण पढ़ाई, काम, नींद या सामाजिक संबंध प्रभावित होने लगते हैं, तो यह डिजिटल लत का संकेत हो सकता है। बार-बार मोबाइल चेक करना, बिना आवश्यकता इंटरनेट चलाना और ऑफलाइन होने पर बेचैनी महसूस करना तनाव तथा व्यवहार संबंधी समस्याओं से जुड़ सकता है।

मानसिक तनाव के मनोवैज्ञानिक प्रभाव

डिजिटल युग में लगातार तनाव व्यक्ति के संज्ञात्मक, भावनात्मक, व्यवहारात्मक और सामाजिक जीवन को प्रभावित कर सकता है।

1 चिंता और बेचैनी

अत्यधिक डिजिटल उत्तेजना और लगातार सूचनाओं के संपर्क में रहने से व्यक्ति को लगातार चिंतित या बेचैन महसूस हो सकता है। व्यक्ति बार-बार फोन देखने, संदेशों की प्रतीक्षा करने या किसी नकारात्मक सूचना के बारे में सोचने लग सकता है। लंबे समय तक रहने वाली चिंता दैनिक कार्यों और एकाग्रता को प्रभावित कर सकती है।

2 ध्यान और एकाग्रता में कमी

मोबाइल नोटिफिकेशन, सोशल मीडिया और बार-बार बदलती डिजिटल सामग्री व्यक्ति के ध्यान को लगातार एक गतिविधि से दूसरी गतिविधि की ओर ले जाती है। इससे लंबे समय तक किसी कार्य पर ध्यान केंद्रित करना कठिन हो सकता है। विद्यार्थियों के लिए यह समस्या विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि अध्ययन के लिए निरंतर ध्यान आवश्यक होता है।

3 स्मृति और निर्णय लेने की क्षमता पर प्रभाव

मानसिक तनाव व्यक्ति की कार्यशील स्मृति और सूचना को व्यवस्थित करने की क्षमता को प्रभावित कर सकता है। अत्यधिक



तनाव की स्थिति में व्यक्ति को पढ़ी हुई सामग्री याद रखने या सही निर्णय लेने में कठिनाई हो सकती है।

4 चिड़चिड़ापन और भावनात्मक अस्थिरता

लगातार तनाव के कारण व्यक्ति छोटी-छोटी बातों पर परेशान या चिड़चिड़ा हो सकता है। भावनाओं को नियंत्रित करना कठिन हो सकता है और व्यक्ति परिवार या मित्रों के साथ अनावश्यक विवाद कर सकता है।

5 आत्मसम्मान में कमी

सोशल मीडिया पर दूसरों से लगातार तुलना करने के कारण व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, उपलब्धियों या जीवन को कमतर समझ सकता है। यदि व्यक्ति को लगातार यह महसूस हो कि वह दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार सफल नहीं है, तो उसका आत्म-सम्मान प्रभावित हो सकता है।

6 अकेलापन और सामाजिक अलगाव

डिजिटल माध्यम लोगों को जोड़ने में सहायक हैं, लेकिन अत्यधिक ऑनलाइन संपर्क वास्तविक सामाजिक संबंधों का विकल्प नहीं बन सकता। व्यक्ति के ऑनलाइन मित्रों की संख्या अधिक होने के बावजूद वह वास्तविक जीवन में अकेलापन महसूस कर सकता है।

7 नींद में बाधा

रात में लंबे समय तक मोबाइल या अन्य स्क्रीन का उपयोग नींद की दिनचर्या को प्रभावित कर सकता है। देर रात तक ऑनलाइन रहना सोने का समय कम कर सकता है और मानसिक उत्तेजना को बढ़ा सकता है। नींद की कमी से अगले दिन थकान, चिड़चिड़ापन, ध्यान में कमी और कार्यक्षमता में गिरावट हो सकती है।

8 अवसादात्मक भावनाएँ

लंबे समय तक तनाव, सामाजिक तुलना, अकेलापन और नकारात्मक ऑनलाइन अनुभव व्यक्ति में उदासी, निराशा और रुचि में कमी जैसी भावनाओं से जुड़े हो सकते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि डिजिटल तकनीक का उपयोग अपने-आप में अवसाद का एकमात्र कारण नहीं है। मानसिक स्वास्थ्य पर अनेक जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारकों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है।

9 कुछ छूट जाने का भय (FOMO-Fear of Missing Out)

इसका अर्थ है यह डर कि कहीं व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण सामाजिक गतिविधि, घटना या अवसर से पीछे न रह जाए। सोशल मीडिया पर दूसरों की गतिविधियाँ लगातार देखने से व्यक्ति को लग सकता है कि अन्य लोग उससे अधिक आनंद ले रहे हैं या अधिक सफल हो रहे हैं। इससे चिंता और असंतोष बढ़ सकता है।

10 डिजिटल थकान

लगातार वीडियो कॉल, ऑनलाइन मीटिंग, पढ़ाई, स्क्रीन टाइम और सूचना के संपर्क में रहने से व्यक्ति को मानसिक थकान महसूस हो सकती है। इसे सामान्य रूप से डिजिटल थकान कहा जाता है। इसके लक्षणों में मानसिक थकान, ध्यान

में कमी, चिड़चिड़ापन और कार्य करने की इच्छा में कमी शामिल हो सकती है।

विद्यार्थियों पर डिजिटल तनाव का प्रभाव

विद्यार्थियों का जीवन डिजिटल तकनीक से गहराई से जुड़ा हुआ है। ऑनलाइन कक्षाएँ, डिजिटल नोट्स, सोशल मीडिया, ऑनलाइन परीक्षा और मनोरंजन सभी उनके दैनिक



जीवन का हिस्सा बन गए हैं। अत्यधिक डिजिटल उपयोग के कारण विद्यार्थियों में अध्ययन के दौरान ध्यान भटकना, समय प्रबंधन की समस्या, परीक्षा संबंधी चिंता, नींद में कमी और शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया पर साधियों की उपलब्धियों को देखकर विद्यार्थी अपने प्रदर्शन की तुलना दूसरों से कर सकते हैं। इससे शैक्षणिक दबाव और आत्म-संदेह बढ़ सकता है।

परिवार और सामाजिक संबंधों पर प्रभाव

मानसिक तनाव का प्रभाव केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता। अत्यधिक डिजिटल उपयोग से परिवार के सदस्यों के बीच प्रत्यक्ष संवाद कम हो सकता है। उदाहरण के लिए, परिवार के सभी सदस्य एक ही कमरे में होते हुए भी अपने-अपने मोबाइल में व्यस्त रह सकते हैं। इससे व्यक्तियों के बीच संचार (interpersonal communication) कम हो सकता है और भावनात्मक दूरी बढ़ सकती है। तनावग्रस्त व्यक्ति दूसरों के प्रति अधिक चिड़चिड़ा हो सकता है, जिसके कारण पारिवारिक और सामाजिक संबंध प्रभावित हो सकते हैं।

डिजिटल तनाव को कम करने के उपाय

1. डिजिटल डिटॉक्स

समय-समय पर डिजिटल उपकरणों से दूरी बनाना उपयोगी हो सकता है। व्यक्ति कुछ निश्चित समय को स्क्रीन-मुक्त समय के रूप में निर्धारित कर सकता है।

2. समय प्रबंधन

मोबाइल और सोशल मीडिया के लिए निश्चित समय निर्धारित करना चाहिए। पढ़ाई या कार्य करते समय अनावश्यक नोटिफिकेशन को बंद करना एकाग्रता बढ़ाने में मदद कर सकता है।

3. नींद की स्वस्थ आदतें

सोने से पहले स्क्रीन का उपयोग कम करना और सोने-जागने की नियमित दिनचर्या बनाए रखना मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हो सकता है।

4. वास्तविक सामाजिक संबंध

परिवार और मित्रों के साथ प्रत्यक्ष बातचीत, सामूहिक गतिविधियाँ, खेल और सामाजिक कार्यक्रम मानसिक तनाव को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

5. शारीरिक गतिविधि

नियमित व्यायाम, योग, पैदल चलना और अन्य शारीरिक गतिविधियाँ तनाव प्रबंधन में सहायक हो सकती हैं।

डिजिटल तकनीक के सकारात्मक मनोवैज्ञानिक पक्ष

डिजिटल तकनीक को केवल तनाव का कारण मानना उचित नहीं है। इसका सकारात्मक उपयोग मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी हो सकता है। इंटरनेट के माध्यम से व्यक्ति शैक्षणिक सामग्री, मानसिक स्वास्थ्य संबंधी विश्वसनीय जानकारी, ऑनलाइन परामर्श सेवाएँ और सामाजिक समर्थन प्राप्त कर सकता है। दूर रहने वाले परिवार और मित्रों से संपर्क बनाए रखने में भी डिजिटल माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए समस्या तकनीक के अस्तित्व में नहीं, बल्कि उसके अत्यधिक, अनियंत्रित या असंतुलित उपयोग में अधिक होती है।

निष्कर्ष

डिजिटल युग ने मानव जीवन को सुविधाजनक, तेज और प्रस्पर जुड़ा हुआ बनाया है। इसके साथ ही डिजिटल तकनीक के अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग से मानसिक तनाव की नई परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। सोशल मीडिया की तुलना, सूचना की अधिकता, साइबर बुलिंग, ऑनलाइन कार्य का दबाव, डिजिटल लत और लगातार उपलब्ध रहने की अपेक्षा व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है। मानसिक तनाव के परिणामस्वरूप चिंता, चिड़चिड़ापन, ध्यान एवं एकाग्रता में कमी, नींद की समस्या, आत्मसम्मान में कमी, अकेलापन और भावनात्मक अस्थिरता जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। अतः आधुनिक समाज के लिए आवश्यक है कि डिजिटल तकनीक का उपयोग संतुलित, जागरूक और उद्देश्यपूर्ण तरीके से किया जाए। डिजिटल साक्षरता के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता को भी बढ़ावा देना आवश्यक है। व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि तकनीक हमारे जीवन को नियंत्रित करने के बजाय हमारे जीवन को बेहतर बनाने का माध्यम होनी चाहिए। इस प्रकार, डिजिटल युग में स्वस्थ मानसिक जीवन के लिए तकनीक के साथ संतुलित जीवन सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।



मध्य भारत कृषक भारती

श्री गणेशाय नमः



किसान कृषि सेवा केंद्र

श्री सौलविया सेठ



Gmail

Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com



7692967419



9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अरवंगांधा, अकरकरा, कलौजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौप, सर्पंगांधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फूलों के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलों के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल वेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते हैं।

उन्नत किस्म के नसीरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टांकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मन्दासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110



कृषि दर्शन
खेत-खलिहान का राजा



श्रेशर 35HP हापर मॉडल



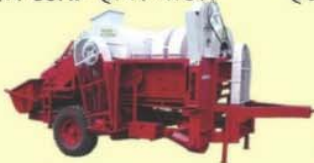
हडम्बा कटर श्रेशर



ऑटोफीडिंग श्रेशर



मक्का श्रेशर



मिनी कम्बाईन श्रेशर



रेज बेड सिड ड्रिल



स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल



मोटर लिफ्ट



सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)

फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

अक्टूबर-2026

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती



अक्टूबर-2026



India
Farm-Tech
AN EXHIBITION ON
FARMING TECHNOLOGY

14 - 15 - 16
FEBRUARY 2027

Organizer
Radeecal communications
Colossal Communications
ICAR(CIAE) GROUND
NABI BAGH, BERASIA ROAD
BHOPAL
MADHYA PRADESH

Empowering the Future of Agriculture

International Exhibition On
**Agriculture,
Dairy & Horticulture
Technology**

**BOOK YOUR
STALL NOW !**



Supported by



M: +91 99740 29797 , +91 75677 02025

agri@farmtechindia.in | www.farmtechindia.in

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना, ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर (मोबा. 9425101132, 0751-4070802)